गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, राजस्थान से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक
Impact Factor : 4.553

ISSN : 2321-8037
नवम्बर-दिसम्बर 2023
Vol. 11, Issue 11-12

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

संपादक :
डॉ. रेखा सोनी

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed International Refereed Journal

वर्ष : 11 अंक : 11–12 (1) नवम्बर–दिसम्बर : 2023 आईएसएसएन : 2321–8037

संस्थापक सम्पादिका :

स्मृति शेष डॉ. विश्वकीर्ति

संरक्षक :

हरविन्द्र कमल, पटियाला

मार्गदर्शन :

डॉ. राजेन्द्र गोदारा

श्रीगंगानगर, राजस्थान।

इन्जीनियर सृष्टि चौधरी

लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्रेष्ठ चौधरी

सीनियर मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

प्रधान सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

सचिव, गीनादेवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)

सम्पादक :

डॉ. रेखा सोनी

शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर – 335001 (राज.)

सम्पादकीय कार्यालय :

6–एच 30, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर, राजस्थान – 335001

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय,
भिवानी (हरियाणा)

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर
(राजस्थान)

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय,
हिसार।

प्रो. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्‌गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
तोशाम (हरियाणा)

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर
(राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुकेश चंद
राजकीय महाविद्यालय, बाडी,
धौलपुर, राजस्थान।

डॉ. पवन ठाकुर
बरेली (उत्तर प्रदेश)

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

कानूनी सलाहकार : डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट, भिवानी
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट, पटियाला।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed International Refereed Journal

(Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	6-6
2.	पर्यावरणीय संवेदना और हिंदी साहित्य	डॉ. सूर्यकांत शिंदे	7-12
3.	**Examining the Transformative Impact of Media-Driven WASH Campaigns on Schoolgirls' Empowerment: A Primary Survey in Rural Etah**	**Dr. Rajni Yadav, Ghanshyam Singh Yadav**	**13-30**
4.	**A HISTORICAL REVIEW OF EARLY INDIAN ENGLISH WRITINGS IN PROSE**	**Prof. Naresh Kumar Yadav**	**31-37**
5.	लोकतंत्र बनाम अधिनायकवाद	डॉ. वीना पाहूजा	38-39
6.	समकालीन स्त्री कथाकार मृणाल पाण्डे	आर. पुष्पलता	40-42
7.	राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा	सहदेव कुमार	43-47
8.	गणित और साहित्य इंटरेक्शन : एक विहंगम दृश्य	डॉ. अबुल बसर, शाइस्ता	48-50
9.	'श्रीमद्वाल्मीकि रामायण' में वर्णित माता सीता जी का आदर्श चरित्र	डॉ. कमलेश कुमार थापक 'योगेश स्वरूप ब्रह्मचारी'	51-53
10.	भारत के लिए "रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन" विषय का महत्व एवं जरूरत	डॉ. सुभाष चन्द्र मौर्य	**54-59**
11.	**A Study on the Socio-Economic Impacts of Pneumonia in India**	**Dr. Vinod Girder, Dr. Yograj Goswami**	**60-63**
12.	वर्ग हित और सामाजिक न्याय	चेतन लाल रेगर	64-69
13.	मंजुल भगत कृत 'अनारो' उपन्यास में आर्थिक यथार्थ	ए. माधवराव	70-73
14.	समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री जीवन की त्रासदी	पी. राधा	74-77
15.	अर्थ केंद्रित होते पारस्परिक रिश्तों की त्रासद दास्तान ('दौड़' के विशेष संदर्भ में)	कीर्ति देवी	78-81
16.	भारत की संस्कृति, रीति-रिवाज और भारतीय परंपराएँ	**Dr. Sajitha J, Dr. S.Swarnalatha**	**82-85**
17.	चंद्रकांत देवताले की कविताओं का भाषिक चिंतन	पूजा यादव, डॉ० मुकेश कुमार	86-91
18.	श्रीमद्भगवद्गीता की अचिन्त्यभेदाभेदवादी टीकाओं में कर्मयोग	डॉ. अंजना शर्मा, रीना कुमारी	92-97

19.	गणेश गनी की कविताओं में पहाड़ी परिवेश	राधा देवी	98–105
20.	समकालीन चुनौतियाँ और बसंत त्रिपाठी की कहानियों का रचनात्मक सरोकार	डॉ. राजेश राव	106–110
21.	आज के समाज में 'चकाचौंध' का सामाजिक और आर्थिक यथार्थ	संदीप कुमार	111–115
22.	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र के उपन्यास लेखन में बिम्बात्मक शैली का प्रभावी चित्रण	विनोद कुमार गुप्ता, डॉ० आदित्य कुमार गुप्त	116–120
23.	कबीर का जीवन दर्शन	डॉ दुर्गेश कुमार शर्मा	121–127
24.	महाभारत और पर्यावरण संरक्षण : एक अनुशीलन	डॉ. पूजा शर्मा	128–131
25.	भारतीय साहित्य और महिला सशक्तिकरण	डॉ. गीता राजवंश	132–135
26.	महात्मा गाँधी और ग्रामीण अर्थतंत्र	केशव कुमार बर्नवाल	136–139
27.	नमिता सिंह के कथासाहित्य में मीडिया और राजनीति की भूमिका	फूला देवी	140–146
28.	**Teachers' Perspective On Inclusive Education**	**Dr Anurag Mishra**	**147-150**
29.	हेनरी लुईस विवियन डिरोजियो के विचारों का शैक्षिक प्रभाव	सरिता, अपर्णा वत्स	151–159
30.	हिंदी सिनेमा में हरियाणवी बोलियों का प्रयोग : एक मात्रात्मक अंतर्वस्तु विश्लेषण	विकास बेरवाल, डॉ. सुनयना	160–165
31.	योगिता यादव के कथा साहित्य में चित्रित समाज में पारिवारिक संबंध	प्रोमिला, राजेन्द्र सिंह	166–169
32.	भारत में नगरीयकरण की दशा एवं दिशा	डॉ. रजनी वरूण	170–176

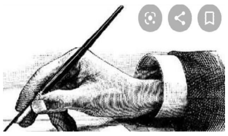

सम्पादक की कलम से..

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित संगम मासिक पत्रिका का नवम्बर–दिसम्बर 2023 का संयुक्त अंक आप सभी विद्वतजन को समर्पित करते हुए हर्ष की अनुमति हो रही है। आप सभी के लेखनीय सहयोग से पत्रिका दिन–प्रतिदिन उन्नति की ओर अग्रसर है। यह आप सभी की मेहनत और सहयोग का ही परिणाम है कि शोध के क्षेत्र में पत्रिका का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जा रहा है। प्रस्तुत अंक में पर्यावरणीय संवेदना, लोकतंत्र, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, समकालीन महिला साहित्यकारों, श्रीमद् वाल्मीकि रामायण, श्रीमदभागवत गीता, कबीर जीवन दर्शन, कालिदास के नाटक में सौन्दर्य बोध, जनजातीय, प्रवासी, स्वतंत्रता आंदोलन में हरियाणा का योगदान, मृत्युभोज, स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अध्यात्म पर उच्च कोटि के शोधालेखों का चयन समिति ने कर प्रकाशित किया है। जिस प्रकार मानव जीवन और पर्यायवरण एक दूसरे के पर्यायवाची है उसी प्रकार से साहित्य, साहित्कार, समाज शोधार्थी और प्राध्यापक एक–दूसरे के पर्यायवाची है। साहित्यकार सृजन करता रहे, पाठक पढ़ता रहे तो लेखन कुछ हद तक सार्थक सिद्ध होता है। अगर शोधार्थी किसी योग्य प्राध्याप के सानिध्य में साहित्यकार द्वारा सृजित साहित्य की विभिन्न दृष्टियों से आलोचना कर किसी निर्णय पर पहुंचता है तो साहित्यकार का सृजन और भी जनउपयोगी सिद्ध होता है। साहित्यकार किस मनोभाव से सृजन कर रहा है समाज को अपने लेखन से क्या दे रहा है उस पर निर्णय किया जा सकता है। इसलिए शोधार्थियों को सदैव स्वाध्यायशील रहते हुए विभिन्न लेखकों की पुस्तकों का पठन–पाठन करते रहना चाहिए।

भारत देश शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणीय रहा है। इसी कारण इसे विश्वगुरू भी कहा जाता है। देश की आजादी के बाद डॉ.. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में 1948 में विश्वविद्यालय आयोग का गटन किया गया, डॉ. लक्ष्मण स्वामी महालीयर की अध्यक्षता में वर्ष 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया गया, डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन 1964 में शिक्षा संबंधी समस्याओं का अध्ययन एवं समाधान करने के लिए किया गया था। आगे चलकर वर्ष 1968, 1986, 1979 में शिक्षा सम्बन्धी नीतियां घोषित की गईं। जिसके आधार पर सम्पूर्ण भारतवर्ष में स्कूली एवं विश्वविद्यालीय शिक्षा प्रदान की जाती रही है। वर्तमान में नई शिक्षा नीति 2020 भारत सरकार द्वारा घोषित की गई जिससे आगामी स्कूली एवं विश्वविद्यालीय शिक्षा प्रदान की जायेंगी। बहुत से राज्यों, विश्वविद्यालयों ने इसे अपनाकर अपने–अपने पाठ्यक्रमों का निर्माण कर शिक्षा प्रारम्भ कर दी है। वह दिन दूर नहीं जब भारत देश पुनः शिक्षा के क्षेत्र में पुनः विश्वगुरू कहलायेगा।

भारत देश तीज–त्यौहारों का देश है। इस देश में बारहमास त्यौहार चलते रहते हैं जो हमारी संस्कृति, परम्पराएं, रीति–रिवाजों को समृद्ध करते हैं। जिससे हम उर्जावान होकर राष्ट्र के नवनिर्माण में सहभागी बनते हैं। यह परम्पराएं इसी प्रकार से चलती रहे जिससे हमारी परम्पराएं जीवित रहती है और परम्पराओं से प्रेरित होकर हमारी भावी संतानें राष्ट्र निर्माण करती रहें। जिससे वह अपना जीवन सफल बनाकर समाज का नव निर्माण करते हुए अपना जीवन यापन सफलता पूर्वक कर सकें।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 7-12

पर्यावरणीय संवेदना और हिंदी साहित्य

डॉ. सूर्यकांत शिंदे
हिंदी विभागाध्यक्ष, लोकमान्य महाविद्यालय, सोनखेड, जिला नांदेड।

प्रस्तावना :–

वर्तमान दौर में संपूर्ण विश्व अगर किसी समस्या से सबसे अधिक झुज रहा है तो वह है पर्यावरण का असंतुलन। इस समस्या को दूर करने के लिए हर देश प्रयत्नशील है। भारत भी इस समस्या से अछूता नहीं है। पिछले कई वर्षों से भारत में भी लगातार जल, वायु और मृदा की स्वच्छता में गिरावट देखी जा रही है। लगभग विश्व के सभी देशों के सामने 'ग्लोबल वार्मिंग' की समस्या खड़ी है। आज 'भूमंडलीकरण और उदारीकरण' के नाम पर जो विकास का तांडव फैलाया जा रहा है। वह विनाश का कारण बन रहा है। लगातार आधुनिकीकरण, नगरीकरण, और औद्योगीकरण ने पर्यावरण असंतुलन को सबसे ज्यादा बढ़ाया है। औद्योगीकरण, नगरीकरण के साथ–साथ विशालकाय मिल, फैक्टरी,कारखाने भी स्थापित हुए। जिसके परिणाम स्वरूप कृषि में विज्ञान का प्रवेश हुआ। इन सबने मिलकर प्राकृतिक पर्यावरण को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। अर्थात इन्सानों की भोगवादी प्रवृत्ति ने ही विश्व को इस संकट के करीब लाकर खड़ा कर दिया है।

मानव जीवन और पर्यावरण एक दूसरे के पर्यायवाची है। वैसे देखा जाए तो हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्यकारों ने पर्यावरण को विशिष्ट स्थान दिया है। एक अर्थ में पर्यावरण संवेदना की समृद्ध परंपरा हमारे साहित्य में रही है। प्रसिद्ध कवि रूपेश कनौजिया की पंक्तियां है...

प्रकृति तो हमेशा ही मेरी मां जैसी है,
गुलाबी सुबह से माथा चूम कर हँसते हुए उठाती है।
गर्म दोपहर में उर्जा भर के दिन खुशहाल बनाती है,
रात की चादर में सितारे जडकर मीठी नींद सुलाती है,
प्रकृति तो हमेशा ही मेरी सुंदर मां जैसी है।

पर्यावरण के संदर्भ में हमारा संवेदनहीन होते जाना ही पर्यावरण के संकट को जन्म दे रहा है। आज हमारा लगाव न तो नदियों से है, न पशु पक्षियों से है,न हवाओं से क्योकि अब हमारे अंदर ही पशुओं ने जन्म लिया है। ऐसी परिस्थिती में एक साहित्यकार का कर्तव्य बनता है कि हम प्रकृति से जुडे रहें। इसका अर्थ यह नहीं कि सर्दियों की रेशमी धूप में पिकनिक मनाना या किसी हिल स्टेशन पर जाकर किसी रिसोर्ट में रह आना भी प्रकृति से जुड़ना नहीं है। बल्कि उसके संवर्धन के लिए प्रयास की अपेक्षा है।

आजकल अखबारों में बेहद चिंता के साथ यह खबर आ रही है कि 'गौरैया' लगभग नष्ट होने जा रही

है। एक समय यही गौरैया हमारे घरों के छतों पर, मुंडेरों पर, घरों के झरोखों में, खिड़कियों पर उसका अधिकार होता था। हम उसे मिट्टी के बरतन में पीने के लिए पानी रखते थे। लेकिन दुर्भाग्यवश आज उसका अस्तित्व ही संकट में आ गया है। अब हमने तो गौरैया को अपनी संवेदना से ही निकाल दिया है। ऐसी हालात में साहित्यकारों की अहम भूमिका होती है। दुर्भाग्यवश साहित्यकारों का ध्यान पर्यावरण से कटता जा रहा है। लेकिन एक तरफ भारत का किसान पढे–लिखे आदमी से कही ज्यादा ज्ञानी था। भले ही वह अशिक्षित था। किसान की इसी स्वभाविकता और मासूमियत पर प्रेमचंद फिदा हुये थे। हम सब जानते हैं प्रदुषण इस समय धरती की सबसे बड़ी समस्या है। कई सारे जीव–जंतुओं की प्रजातियां खत्म हो गई है। धरती को खोद–खोद कर खोखला कर दिया है। पहाड़ों के पत्थर, सीसा, कोयला, ताँबा सब कुछ मनुष्य हजम कर रहा है–तो हमारे सामने सबसे बडा प्रश्न है कि यह धरती–यह पृथ्वी कितने वर्षों तक बच पायेगी? इस पर गंभीरता से साहित्यकार को विचार करने की आवश्यकता है।

अनादि काल से प्रकृति और मनुष्य कविता का प्रिय और मुख्य विषय रहे हैं। भारतीय साहित्य और दर्शन संपूर्ण रूप से पर्यावरण पर केंद्रित रहा है। मानव का प्रथम कर्तव्य होता है कि वह प्रकृति की रक्षा करें। प्रत्येक युग में साहित्यकारों ने अपने साहित्य में प्रकृति का गुणगान किया है। महाकवि तुलसीदास जी के रामचरितमानस में प्रकृति के साथ–साथ गंगा और सरयू नदी के माध्यम से पर्यावरण का चिंतन मिलता है। कविवर रहीम ने भी पानी के माध्यम से जीवन के तत्व का ज्ञान कराया है–

"रहीमन पानी राखिए, बिन पानी सब सुन!
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चुन!!"

यह पंक्ति वर्तमान संदर्भ में अधिक चरितार्थ और उपयुक्त है। जंगल काटने के कारण वन संपदा का दोहन तो हुआ ही है। जिससे जल और शुद्ध वायु पर भी गहरा प्रभाव पडा है। प्रकृति की छटा का सुंदर रूप मैथिलीशरण गुप्त जी ने साकेत, पंचवटी, सिद्धराज, यशोधरा आदि रचनाओं में किया है। रात्रिकालीन बेला की प्राकृतिक छटा का बड़ा ही मनोहारी वर्णन इन पंक्तियों में मिलता है–

"चारू चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है अवनी और अंबरतल में"

छायावादी कवि महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकात त्रिपाठी निराला ने भी अपनी कविताओं में प्रकृति के रूपों का अनोखा वर्णन किया है। छायावदी कवियों की दृष्टि अपेक्षतया अधिक संवेदशील थी। इन कवियों ने निर्जिव प्रकृति में प्राण–प्रतिष्ठा करके प्रेम और सौंदर्य के भव्य धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में–"पंत की कोमल कल्पनाओं ने प्रकृति के लहराते हुए अंचल को सुकुमार भावनाओं से भर दिया है, महादेवी की विरह–व्यथा पूर्ण पुकार ने क्षितिज तक फैली हुई रम्य वन–स्थली के कण–कण को प्रतिध्वनित कर दिया है और निरला को ओजपूर्ण 'बादलराग' ने प्रकृति के प्रतीकों द्वारा जन–जन की नई चेतना का उद्‌घाटन किया है।"

सुमित्रानंदन पंत प्रकृति की सुंदरता में इतने मुग्ध हो जाते हैं कि उन्हे अपनी प्रेयसी का प्यार भी तुच्छ लगने लगता है–

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,

बाले, तेरे बाल–जाल में,कैसे उलझा दूँ लोचन।"

इस प्रकार कवि विशेष के हाथों पड कर प्रकृति का रूप अथवा पक्ष विशेष ही उद्घाटित होता है। पंत को प्रकृति का सुकुमार कवि इसलिए कहा जाता है। क्योंकि इन्होने प्रकृति के भीतर केवल माधुर्य और सौंदर्य के ही दर्शन किये है।

प्रकृति के प्रति निराला की दृष्टि स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से सूक्ष्मत्तर होती गई हैं। 'जुही की कली' निराला की सबसे पहली और उनकी श्रेष्ठतम रचनाओं में से एक है। इस कविता में कवि ने जुही की कली और मलयानिल के माध्यम से श्रृंगार और सौंदर्य का एक अत्यंत रूपहला चित्र प्रस्तुत किया है। कवि ने इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है :–

नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लडी जैसे हिंडोल
इस पर भी जागी नहीं
चुक क्षमा माँगी नहीं
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूंदे रही......

उत्तर आधुनिक युग में भूमंडलीकरण व औद्योगिक क्रांति और मुनाफे पर आधारित उपभोक्तावादी संस्कृति ने जिस तेजी के साथ प्रकृति का विनाश किया है वह पूर्ववर्ती कवियों ने सोचा भी नहीं होगा। आज मानव पूरी तरह से बाजारवादी ताकतों की गिरफ्त में है। ऐसी परिस्थितियों में समकालीन कवि अपनी सशक्त रचनाओं के माध्यम से अपने इस कर्तव्य से भली–भाँति परिचित है। इसलिए समकालीन कविता बाजारवादी–उपभोक्तावादी संस्कृति का मुखर विरोध करती है। समकालीन कवि वीरेन डंगवाल की 'बच्चा और गौरैया' कविता पर्यावरणीय संवेदना को मुखरित करती है–

"इस तरह बदहवास
मत टकराओ गौरैया
खिड़की की कांच से
शीशे से
तुम्हारी चोंच टूट जाएगी
और नाखून उलट जाएंगे।"

गौरैया जिसका हमारे पर्यावरण में विशेष स्थान रहा है। आज बड़े–बड़े महानगरों में तो वह पूर्णतः लुप्त हो चुकी है। वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति ने गाँवों का शहरीकरण बड़ी तेजी के से किया है। शहरों के लिए प्रकृति एकदम अजनबी सी हो गयी है।

इसी संदर्भ में समकालीन कवि स्वर्गीय मंगेश डबराल की कविता अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपनी कविता 'यहां थी वह नदी' में लिखते हैं–

"हमें याद है
यहां थी वह नदी इसी रेत में
जहां हमारे चेहरे हिलते थे

यहां थी वह नाव इंतजार करती हुई
अब वहां कुछ नहीं है।
सिर्फ रात को जब लोग नींद में होते हैं।
कभी–कभी एक आवाज सुनाई देती है रेत सी।"

एक नदी के सूख कर रेत हो जाने की त्रासदी को कवि ने मार्मिक तरीके से व्यक्त किया है।

हिंदी के वरिष्ठ कवि ज्ञानेंद्रपति ने भी अपनी अनेक कविताओं में पर्यावरण प्रदूषण के बढते आतंक का चित्रण किया है। उनकी 'नदी और साबुन' जो 'गंगातट', काव्य संग्रह की एक महत्वपूर्ण कविता है। नदियों को प्रदुषित होता देख ज्ञानेंद्रपति ने इस कविता में नदी को लेकर चिंता जताई है। वे इस कविता में नदी को पूछते हुए कहते हैं–

"नदी
तू इतनी दुबली क्यों हैं?
और मैली कुचली...
मरी हुई इच्छाओं की तरह
मछलियाँ क्यों उतराई हैं?
तुम्हारे दुर्दिन के दुर्जल में,
किसने तुम्हारा नीर हरा,
कलकल में कलुष भरा।
बाधों के जुठारने से तो
कभी दुषित नहीं हुआ तुम्हारा जल...
आह! लेकिन.......।"

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि ने अपनी पर्यावरणीय संवेदना को व्यक्त किया है। कवि के अनुसार आज नदियों की स्वच्छता एवं पवित्रता नष्ट हो गयी है। पहले वह स्वच्छ हुआ करती थी। अब वह मैली कुचैली एवं क्षीण हो गई है। इसलिए कवि सवाल करता है,किसने नदी के पवित्र जल को मलिन किया है। इसी प्रकार अपनी दूसरी कविता 'पोलिथिन की थैलियाँ' में कवि ने पोलिथिन से उत्पन्न भयावह त्रासदी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। इस समस्या का चित्रण करते हुए कवि कहता है–

करोड़ों या अरबों, कितनी हो सकती हैं
पोलिथिन की थैलियाँ, कितनी नदियों का दम घुट सकता है।
इन थैलियों में....पोलिथिन पोलिथिन, तंग हूँ मैं इस पोलिथिन से...।

जिस प्रकार समकालीन कवियों ने अपने साहित्य के माध्यम से पर्यावरणीय संवेदना प्रकट की है उसी प्रकार आदिवासी हिंदी रचनाकारों ने भी पर्यावरण के प्रति गहरा लगाव व्यक्त किया है। वास्तव में प्रकृति आदिवासी जीवन और संस्कृति का मूलाधार है। आदिवासी जन प्रारंभ से ही प्रकृति प्रेमी रहें है। यह प्रकृति प्रेम उनकी कविताओं में सहज रूप में दिखाई पड़ता है। जंगल की कटाई के कारण उनके प्राकृतिक भोजन नष्ट हो गये हैं। तथाकथित सभ्य समाज ने उनसे उनका सुखी जीवन बड़ी बेरहमी से छीनने का प्रयास किया है।

आदिवासियों की प्राकृतिक संपदा सरकार, औद्योगिक घराना, दलालों, भूमाफियों, कारपोरेट सेक्टर आदि के लिए लूट की चीज बनकर रह गया है। आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल अपनी कविता में कहती हैं –

"क्या तुमने कभी सुना है
सपनों में चमकती कुल्हाड़ियों के भय से
पेड़ों की चीत्कार?
सुना है कभी..
रात के सन्नाटे मे अँधेरे से मुँह ढाँप
किस कदर रोती हैं नदियाँ?"

निर्मला पुतुल ने अपनी कविता में जंगलों की अवैध कटाई, जल के स्त्रोत सुख जाने की गहरी चिंता प्रकट की है। जल, जमीन, जंगल उनके अस्तित्व का अभिन्न हिस्सा है। इसलिए तो उन्हे पेडों की चित्कार सुनाई दे रही है। इसलिए वह विकास के ठेकेदारों से सवाल पूछती है कि आपको क्यों नहीं सुनाई देता पेड़ों का दर्द।

कवि हरिराम मीणा ने पर्यावरण को नष्ट करने वाले सभ्य समाज को स्पष्ट शब्दों में चेतावनी देते है और उसके खिलाफ आदिवासियों को सचेत करते हुए लिखते हैं–

" देखो तुम्हारे पेड़ गिर रहे हैं!
समुद्र मैला हो रहा है
तटों पर प्लास्टिक की थैलियाँ बिखर रही हैं।
मछलियाँ दूर चली गई
अक्टोपस छुप गए–
और तुम चुप हो?"

वास्तव में आदिवासी कविता का स्वर मूलतः प्रतिरोधी है। जल, जमीन और जंगल से जुड़ी संवेदना समकालीन आदिवासी कविता का केंद्रीय स्वर है। पर्यावरण के प्रति वह आश्वस्त है इसलिए प्रकृति को बचाने की गुहार लगा रहा है।

इस प्रकार वर्तमान समय मे अन्य महत्वपूर्ण विमर्शों के साथ–साथ पर्यावरण विमर्श भी महत्वपूर्ण बन गया है। पर्यावरण मनुष्य के न सिर्फ जीवन में बल्कि शरीर के भीतर–बाहर भी समाहित है। इसलिए आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के रचनाकारों ने इस पर गंभीरता से हमारा ध्यान आकर्षित किया है। पर्यावरण अर्थात हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएँ हैं, शक्तियाँ हैं और जो हमारे जीवन को प्रभावित करती है, वे सभी पर्यावरण के अंग है। जल, जंगल, जमीन, हवा, प्रकाश, अंधकार, वन्य जीव–जंतु, खनिज पदार्थ आदि हमारे पर्यावरण के अभिन्न अंग है। आज उसी पर संकट मंडरा रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि हम मशीनीकरण और आधुनिकता की दौड से बाहर निकल कर प्रकृति की ओर पुनः प्रस्थान करें। हिंदी के लगभग सभी साहित्यकारों ने विविध विधाओं के माध्यम से पर्यावरणीय संवेदना को हमारे सम्मुख रखा है। अगर हमें एक बेहतर समाज चाहिए तो पर्यावरण संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

आज मानव अपने भोग एवं सुख की प्राप्ति के लिए प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहा है। इसका

खामियाजा हमें तो भुगतना पड़ेगा ही, हमारी भावी पीढी इससे और ज्यादा नुकसान झेलेगी आज असमय बारिस, बाढ, भूकंप, यह केवल प्राकृतिक घटना न होकर संपूर्ण मानव जाति के लिए बहुत बड़ी चेतावनी है।

संदर्भ सूची :-

१. समकालीन कविता में पर्यावरणीय संवेदना, डॉ. शर्मा मीना।

२. महाकवि निरला और उनका राग—विराग, डॉ. शर्मा कृष्णदेव।

३. पर्यवरणीय चेतना एवं जागरूगता, पांडेय रीतिका।

४. सेतु—नवम्बर, २०१८ (द्वैभाषिक मासिक)

५. हिंदी साहित्य में पर्यावरण चेतना, डॉ. प्रेमकुमारी सिंह।

ई.मेल— uryakantshinde03@gmail.com

Mob. 8208691286

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 13-30

Examining the Transformative Impact of Media-Driven WASH Campaigns on Schoolgirls' Empowerment: A Primary Survey in Rural Etah

Dr. Rajni Yadav,
Assistant Professor, Sharda School of Media,
Film and Entertainment (SSMFE),Sharda University, Greater Noida, U.P.
Ghanshyam Singh Yadav
Research Scholar, Department of Geography,
Delhi School of Economics, University of Delhi, Delhi.

Abstract :

This research delves into the intricate dynamics of media-driven Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) campaigns and their influence on the empowerment of schoolgirls in the unique context of Rural Etah. Employing a meticulously designed primary survey with a diverse sample, the study seeks to unravel nuanced aspects of awareness, behavioral changes, and perceived impacts, offering substantive insights for the enhancement of WASH advocacy in schools.

Introduction :

The current global water, sanitation, and hygiene (WASH) landscape underscores significant challenges and disparities. A staggering 2.2 billion people still lack access to safely managed drinking water, with 115 million relying on surface water (WHO/UNICEF, 2023). Similarly, 3.5 billion people lack safely managed sanitation, including 419 million practicing open defecation (WHO/UNICEF, 2023) . Tragically, unsafe WASH conditions contribute to the daily deaths of approximately 1,000 children under the age of 5 (WHO, 2023). Basic hygiene services elude 2 billion individuals, and achieving Sustainable Development Goal 6 by 2030 requires substantial increases in global rates of progress for drinking water, sanitation, and hygiene (UN-Water, 2023).

Despite progress, 3 billion people are projected to lack safe toilets, 2 billion without safe drinking water, and 1.4 billion without basic hygiene services by 2030 (WHO/UNICEF, 2023). Even schools, vital spaces for development, face challenges, with nearly half lacking handwashing facilities

(WHO/UNICEF, 2020). The essential need for approximately 50 liters of water per person per day is highlighted (WHO, 2017) , while 207 million people endure over 30 minutes per round trip to collect water (WHO/UNICEF, 2019). Alarmingly, 2 billion people use water sources contaminated with faeces globally (WHO, 2019).

In the distinctive context of the Rural Etah majorly focusing on Mahrera Block, where the prevailing conditions of Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) directly intertwine with the empowerment of schoolgirls, the imperative for robust advocacy strategies becomes particularly evident. This region grapples with challenges that extend beyond mere infrastructure deficits; it delves into the intricate nexus between hygiene, sanitation, and the educational advancement of female students.

Water, Sanitation, and Hygiene, collectively known as WASH, are fundamental components that underpin not only health but also education and social progress. The stark reality is that in this specific region, inadequate WASH facilities in schools disproportionately affect female students. The lack of proper sanitation facilities, access to clean water, and hygiene education poses significant hurdles, often leading to absenteeism and dropout rates among school girls.

Recognizing the urgency of addressing this multifaceted issue, effective advocacy emerges as a crucial tool. Media campaigns stand out as a promising avenue for creating widespread awareness and influencing positive behavioral changes. Leveraging various media platforms, such as television, radio, and social media, allows for the dissemination of targeted messages that highlight the profound impact of improved WASH conditions on the well-being, dignity, and educational outcomes of female students.

An effective media campaign could involve storytelling that humanizes the struggles faced by schoolgirls due to inadequate WASH conditions. It could showcase success stories where communities or schools have implemented transformative changes, emphasizing the positive outcomes of prioritizing WASH. Moreover, such campaigns can engage local influencers, educators, and community leaders to amplify the message, fostering a sense of collective responsibility and encouraging sustainable changes.

In conclusion, within the unique dynamics of this specific region, where WASH conditions intricately link with the empowerment of schoolgirls, media campaigns serve as a powerful catalyst for advocacy. By strategically utilizing various media channels, these campaigns can raise awareness, reshape behaviors, and contribute significantly to the overall well-being and educational advancement of female students in the region.

Research Objectives :

1. **Awareness Levels :** Scrutinizing the extent of awareness among schoolgirls regarding WASH issues through diverse media campaigns.
2. **Behavioral Changes :** Investigating the tangible behavioral changes catalyzed by media initiatives and their implications for daily hygiene practices.
3. **Perceived Impacts :** Delving into the subjective experiences of schoolgirls to gauge the perceived impact of media-driven WASH campaigns on their lives.
4. **Correlation Analysis :** Examining the interplay between improved WASH facilities, media campaigns, and educational outcomes.
5. **Challenges and Opportunities :** Identifying challenges faced and opportunities present in leveraging media for effective WASH advocacy.

Methodology :

Participants :- A comprehensive and diverse sample comprising 125 schoolgirls from various grades was meticulously selected to ensure a broad representation across age groups and educational levels. This strategic approach aimed to capture a holistic view of the experiences and perspectives of schoolgirls, acknowledging the potential variations in media consumption, awareness levels, and behavioral patterns across different stages of their education

Questionnaire Design :- The crux of the study rested on a carefully crafted Likert-scale questionnaire, which served as the primary instrument for data collection. This questionnaire was designed with precision to delve into the subtle intricacies of the schoolgirls' experiences. It encompassed a spectrum of inquiries focusing on media consumption habits, levels of awareness regarding water, sanitation, and hygiene issues, observed behavioral shifts, and the perceived impact of media campaigns on their attitudes and practices. The Likert scale, with its graded response options, provided a nuanced framework to gather detailed and quantifiable insights.

Data Collection :-

The ethical dimensions of the research were prioritized throughout the data collection process. Prior to participation, informed consent was obtained from each schoolgirl, ensuring a transparent and respectful engagement. The survey administration followed rigorous protocols, maintaining a commitment to the privacy and confidentiality of the participants. Furthermore, data anonymization procedures were implemented diligently to safeguard the identities of the schoolgirls, reinforcing the ethical integrity of the study.

The foundation of the research's analytical robustness was laid through meticulous data collection practices. The anonymized dataset, characterized by its diversity and ethical handling,

provided a solid basis for subsequent in-depth analysis. This methodological rigor enhances the credibility of the findings and ensures that the study's outcomes accurately reflect the experiences and perceptions of the schoolgirls within the rural Etah.

Results and Discussion :

Age Distribution :

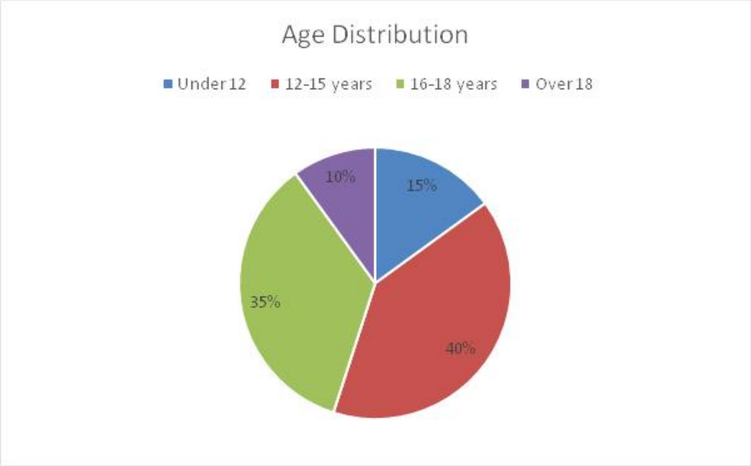

In scrutinizing the demographic characteristics of the participant cohort, a discerning lens is cast upon the age distribution, revealing a nuanced panorama of generational representation. The stratification illuminates a mosaic where 65% of the respondents fall within the developmental crucible of ages 12 to 18. This demographic delineation imparts a sophisticated layering to the study's findings, unraveling the intricate nuances that underscore the variegated impact of media campaigns on schoolgirls traversing disparate developmental milestones. This stratified representation venerates the principle that age is not a monolithic determinant; rather, it signifies a spectrum of experiential trajectories, thereby endowing the study with a heightened sensitivity to the divergent needs and contextual disparities among schoolgirls at different phases of their formative journey.

Equally pivotal within the demographic ambit is the exploration of grade/class distribution. This dimension, albeit presented as a placeholder, anticipates a granular analysis awaiting elucidation in subsequent iterations of this discourse. The discrete examination of academic strata is poised to yield revelations concerning the correlation between scholastic progression and receptivity to media influence, thereby augmenting the scholarly depth of this inquiry.

Media Access Distribution :

A cornerstone in understanding the efficacy of media campaigns resides in the meticulous scrutiny of

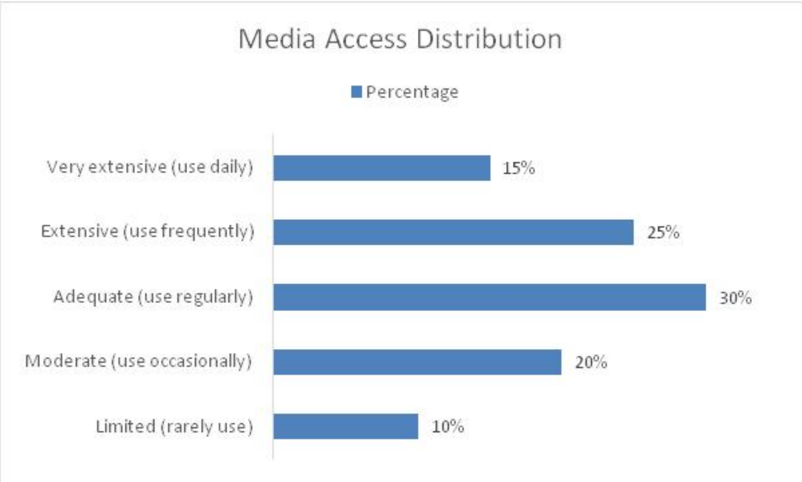

participants' media access distribution. The taxonomy of media engagement, encompassing the spectrum from limited utilization to a daily immersion, engenders a discernment of the intricate tapestry characterizing their media consumption habits.

Notably, a fractional cohort, constituting 10%, denotes limited engagement, signifying sporadic interfacing with media platforms. Contrarily, a substantial proportion, registering at 30%, attests to an adequate engagement level, indicative of a recurrent integration into the media landscape. The intermediary tiers, ranging from moderate to extensive usage, further delineate the multifaceted dimensions of media habits. This distribution acutely underscores the imperative for future campaigns to be adaptive and polymorphic, cognizant ofthe heterogeneous proclivities in media consumption. In essence, this examination illuminates the polyphonic symphony of media engagement, offering a strategic compass to navigate the diverse channels requisite for a comprehensive and effective outreach that resonates with the nuanced media proclivities of the study cohort.

Awareness Levels :

Awareness Levels of WASH Issues through Media Campaigns :

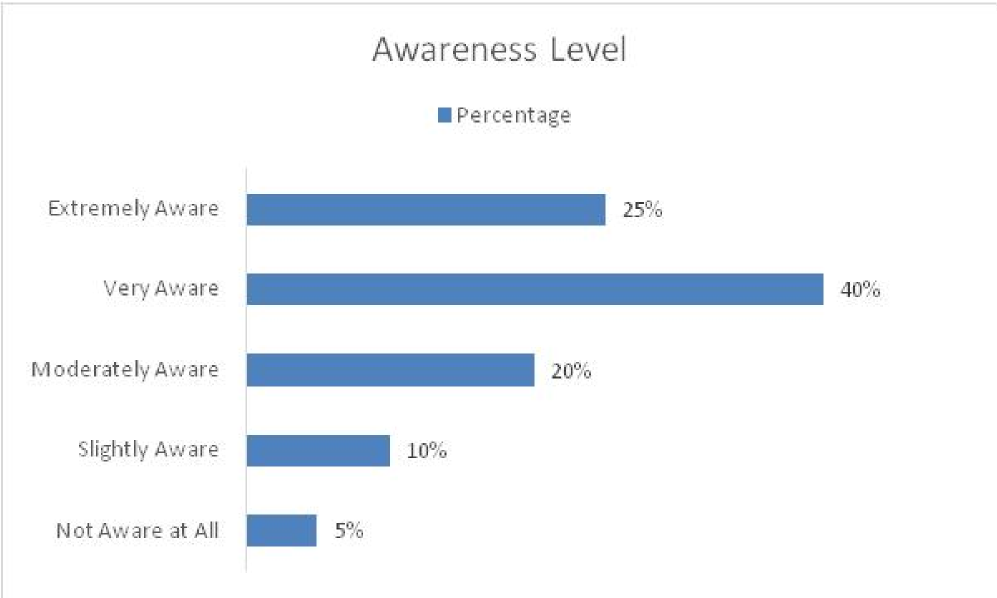

Within the purview of the study's intricate exploration is an exhaustive analysis of awareness levels, particularly pertaining to Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) issues disseminated through media campaigns. The graded response, ranging from a state of complete non-awareness to an extreme awareness, constructs a nuanced narrative of the impact wielded by media interventions on the cognitive landscape of the schoolgirl participants.

A fractional segment, constituting 5%, admits to being entirely non-aware of WASH issues through media campaigns. This nascent awareness, while minimal, serves as a vantage point for the evaluative trajectory of future campaigns, spotlighting the need for heightened visibility and reach.

The ensuing categories, ascending from slight to extreme awareness, collectively comprise 95% of the respondent cohort. The apical stratum, with 25% of participants professing an extreme awareness, signifies the apex of the cognitive spectrum, suggesting a palpable success in the transmission of WASH-related knowledge through media endeavors.

Empowered Advocacy : The Triumph of Informed Perspectives :-

The prevalence of high awareness levels, accounting for 65% of the participants, emerges as a compelling testament to the triumph of media campaigns in engendering an enlightened cohort of schoolgirls. This elevated cognizance positions them not merely as passive recipients but as dynamic advocates for their own well-being. In their elevated state of awareness, these schoolgirls metamorphose into catalysts for community engagement, contributing substantively to the creation of a more informed and responsive societal milieu.

High awareness levels (65%) indicate the success of media campaigns in disseminating information about WASH issues. This informed perspective among schoolgirls positions them as empowered advocates for their own well-being, contributing to a more informed and engaged community.

Preferred Media Sources for WASH Information :

Preferred Media Sources : Crafting a Polyphonic Symphony of Information Dissemination

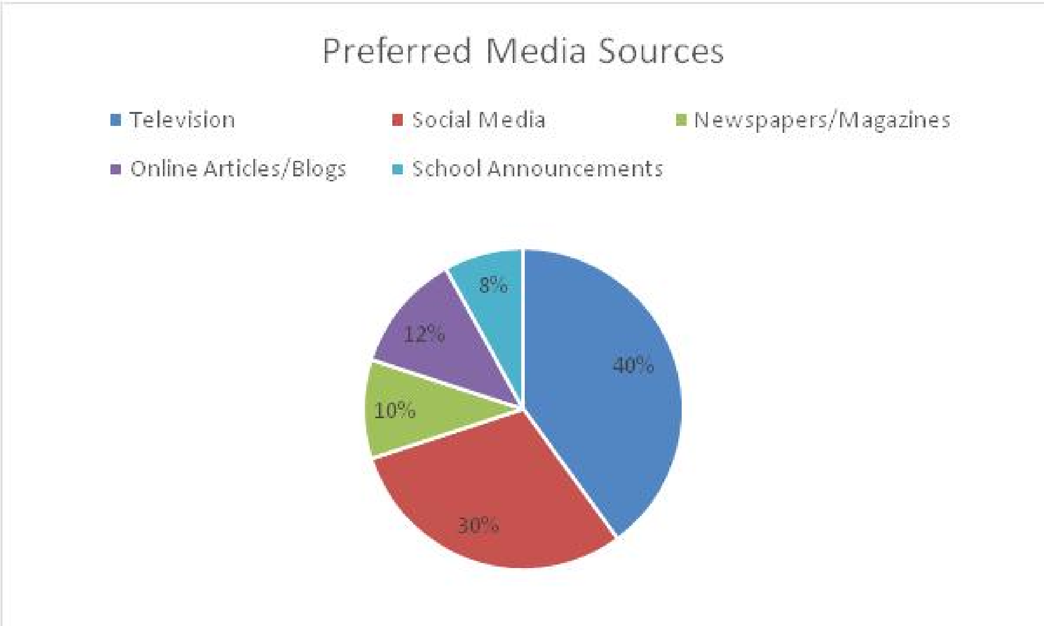

The subsequent facet of the analysis navigates the labyrinth of media preferences among the participant cohort, unraveling the diverse tapestry of favored conduits for WASH-related information. Television, ensconced at 40%, emerges as a predominant channel, followed closely by social media (30%) and online platforms (12%). This eclectic distribution underscores the imperative for a multi-

pronged approach in future campaigns, eschewing a monolithic reliance on a singular medium.

The media source preferences, emblematic of a heterogeneous landscape, advocate for the strategic tailoring of campaigns to align with these varied proclivities. The multi-channel paradigm, encompassing traditional platforms such as television and emergent digital domains like social media and online platforms, becomes pivotal. Crafting campaigns that resonate with this polyphonic symphony of media preferences ensures not only a wider reach but also a harmonious synchronicity with the eclectic media consumption habits ingrained in the study's diverse audience. This granular dissection, therefore, beckons towards an era of media advocacy characterized by adaptability and resonance with the nuanced tastes of the informed constituents.

Behavioral Changes:

Positive Behavioral Changes as a Result of Media Campaigns:

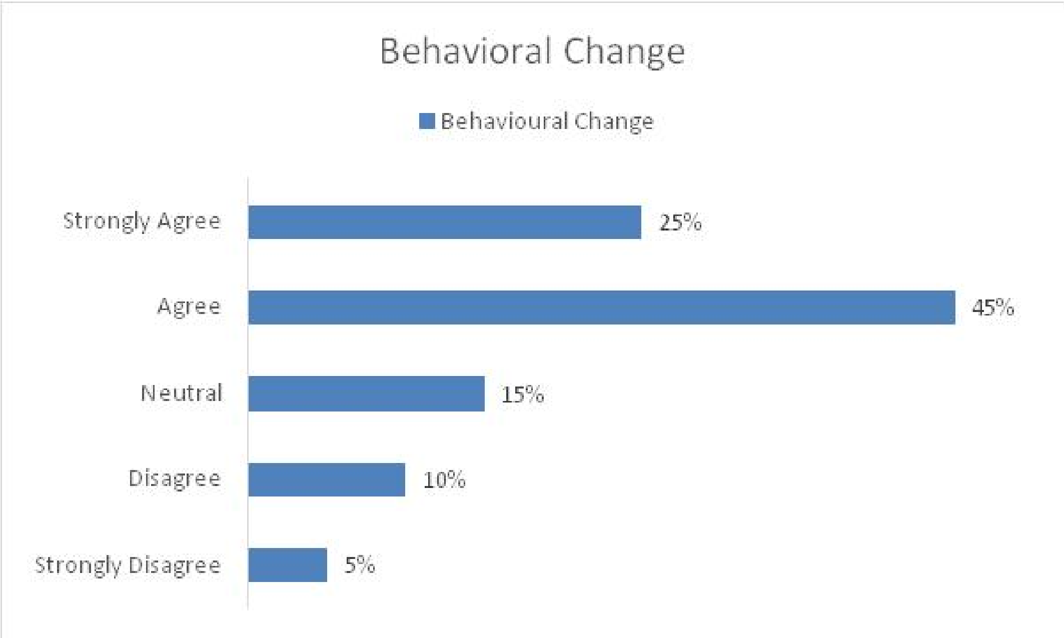

Behavioral Changes Analysis: Unveiling the Transformative Tapestry

The inquiry into behavioral changes catalyzed by media campaigns represents a pivotal juncture in understanding the depth of impact that information dissemination can achieve within the target demographic of schoolgirls. The Likert-scale responses, ranging from strong disagreement to strong agreement, unveil a nuanced narrative of perceptible shifts in daily routines and practices.

A marginal 5% articulate a strong disagreement with the notion that media campaigns have induced positive behavioral changes. This minimal dissent, while existing on the periphery, beckons an exploration into the underlying factors contributing to a divergence in perceived impact.

Conversely, a substantial 70%, encompassing both agree and strongly agree categories, constitutes the prevailing sentiment among participants. This overwhelming concurrence serves as a

resounding testament to the potency of media campaigns in not only cultivating awareness but effecting substantive transformations in the behavioral landscape of schoolgirls. The agreement proportions, with 45% acknowledging and 25% strongly affirming positive behavioral changes, collectively endorse the notion that media campaigns have transcended the realm of rhetoric, permeating into the tangible fabric of daily routines.

A Triumphant Paradigm: Tangible Shifts Beyond Awareness :-

The preponderance of agreement underscores the triumph of media campaigns in ushering tangible shifts in the daily practices of schoolgirls. This transcendence beyond mere awareness heralds a paradigm where information dissemination is not confined to cognitive realms but seamlessly integrates into behavioral dynamics. The resonating impact is manifest in improved hygiene practices and an overarching enhancement in the well-being of the participants.

This metamorphosis, from awareness to action, signals a paradigm shift in the efficacy of media campaigns. It heralds an era where advocacy transcends the rhetoric of information delivery, permeating into the realm of pragmatic application. In this context, media campaigns are not mere purveyors of knowledge but catalysts for societal change, sculpting the behavioral landscape of schoolgirls in a manner that begets not only informed choices but tangible improvements in their overall quality of life.

As the empirical contours of this analysis unfold, the resounding agreement with positive behavioral changes posits media campaigns as dynamic agents of transformation within the lives of schoolgirls. The implications extend beyond the immediate sphere of awareness, painting a broader canvas where information becomes a catalyst for substantive and enduring change.

Descriptions of Positive Changes in Daily Routine :

Qualitative Exploration of Positive Changes in Daily Routine : Unveiling the Texture of Transformation

In transcending the quantitative confines, an exploration into the open-ended responses emerges as an instrumental foray into the qualitative dimensions of behavioral changes instigated by media campaigns. These responses serve as an invaluable repository of nuanced insights, casting a discerning light on the texture and intricacies of the transformative tapestry woven within the daily routines of the schoolgirls.

Among the discernible themes, a recurrent motif is the adoption of regular handwashing practices. Respondents articulate a conscientious embrace of this fundamental hygiene ritual, attesting to the permeation of media-driven awareness into the practical domain of personal health maintenance. This resonance between media advocacy and tangible shifts in behavior exemplifies the catalytic role played by campaigns in instigating micro-level transformations that reverberate across the broader

canvas of communal well-being.

Another salient thread woven into the qualitative fabric is the enhancement of sanitation habits. Participants delineate a heightened consciousness toward maintaining clean and hygienic surroundings, indicative of an evolved sensitivity nurtured through exposure to media campaigns. This elevation in sanitation consciousness not only contributes to individual well-being but radiates outward, fostering a collective ethos of hygiene within the community.

Furthermore, the qualitative responses unveil an augmented awareness of personal hygiene, manifesting in diverse forms such as conscientious dietary choices and the adoption of overall health-conscious practices. This holistic embrace of health-centric behaviors signifies a paradigm shift wherein media campaigns serve as catalysts not merely for isolated behavioral modifications but for the cultivation of a comprehensive culture of health within the lives of schoolgirls.

Perceived Impacts :

Perceived Impact of Media-Driven WASH Campaigns :

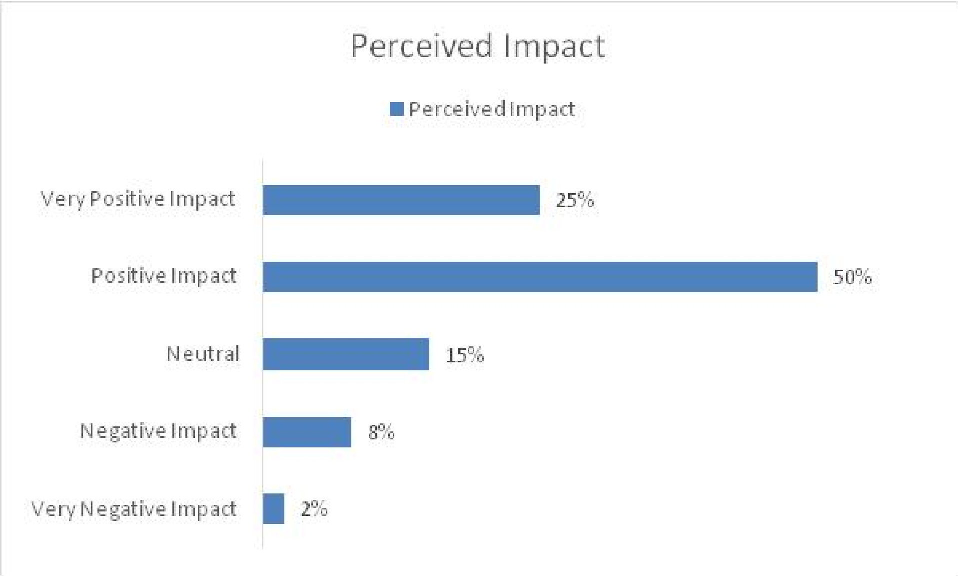

Within the evaluative spectrum of perceived impacts stemming from media-driven Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) campaigns, the Likert-scale responses, spanning from very negative to very positive, delineate a comprehensive narrative. A fractional 2% express a very negative impact, and 8% articulate a negative impact. This marginal disapproval, however, is dwarfed by the substantial 75% majority, encompassing both positive and very positive impacts. This resounding affirmation crystallizes into a poignant endorsement of media campaigns as conduits for the perceived well-being of schoolgirls.

The dominance of positive impacts signifies not merely a transient shift in perceptions but concretizes into a tangible enhancement in the daily lives of schoolgirls. This narrative of positivity

resonates as a testament to the transformative potential of media campaigns, transcending the conceptual realm to manifest palpably in the lived experiences of the study cohort. This prevailing sentiment encapsulates a pivotal paradigm shift—a trajectory towards a healthier and more empowered community, emblematic of the enduring impact etched by media-driven WASH campaigns.

Suggestions for Improving WASH Conditions: A Landscape of Actionable Insights :-

The open-ended responses, akin to an intellectual tapestry, unravel a plethora of qualitative insights encapsulating participants' suggestions for refining and advancing Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) conditions. These suggestions, emerging as a distillation of collective wisdom, traverse a diverse spectrum encompassing infrastructural enhancements and community engagement initiatives.

The call for infrastructural improvements resonates prominently within the qualitative fabric. Participants articulate a yearning for upgraded facilities—be it enhanced water access points, improved sanitation infrastructure, or fortified hygiene education programs. This collective voice converges upon a vision where infrastructural augmentations become linchpins for fostering improved WASH conditions, paving the way for a transformative impact on the well-being of schoolgirls.

Simultaneously, the resonance of community engagement initiatives echoes resoundingly. Suggestions spotlight the imperative of involving local communities in WASH initiatives, fostering a collaborative ethos that transcends the confines of infrastructure. This community-centric perspective aligns seamlessly with the ethos of sustainable development, envisioning a landscape where collective efforts germinate into lasting improvements in WASH conditions.

Correlation Analysis :

Belief in Improved WASH Facilities Enhancing Educational Outcomes :

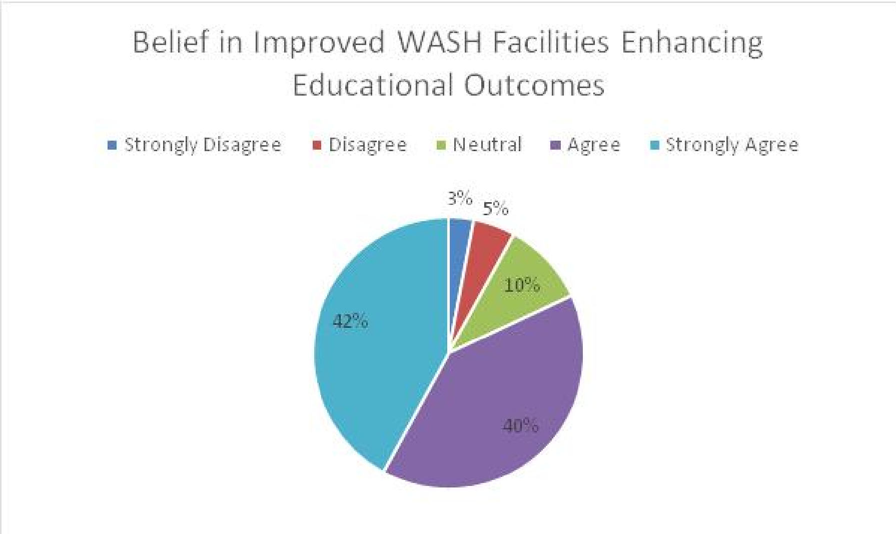

The intersection of belief systems and correlation analysis unravels a profound understanding

of the interdependence between improved WASH facilities and educational outcomes. A resounding 82% strongly agree or agree with the belief that enhanced WASH facilities positively influence educational experiences. This robust consensus underscores the intrinsic correlation between infrastructure and education, hinting at a transformative potential where targeted investments in WASH facilities can usher in holistic improvements in the educational journey of schoolgirls.

This alignment of belief systems serves as a clarion call for strategic interventions that transcend silos, envisioning a future where WASH enhancements become integral facets of a comprehensive educational landscape. This synergy between infrastructure and education propels the scholarly discourse towards a paradigm where improvements in one domain catalyze transformative impacts across the broader spectrum of communal well-being and empowerment.

Predominantly positive impacts (75%) affirm the alignment of media campaigns with the perceived well-being of schoolgirls. This not only reflects a positive shift in perceptions but also indicates a tangible enhancement in the daily lives of schoolgirls, contributing to a healthier and more empowered community.

Strong agreement (82%) with the belief that improved WASH facilities enhance educational outcomes reinforces the interconnectedness of infrastructure and education. This underscores the potential for holistic improvements in educational experiences through targeted investments in WASH facilities.

Perception of Media Campaigns Influencing Behavioral Changes :-

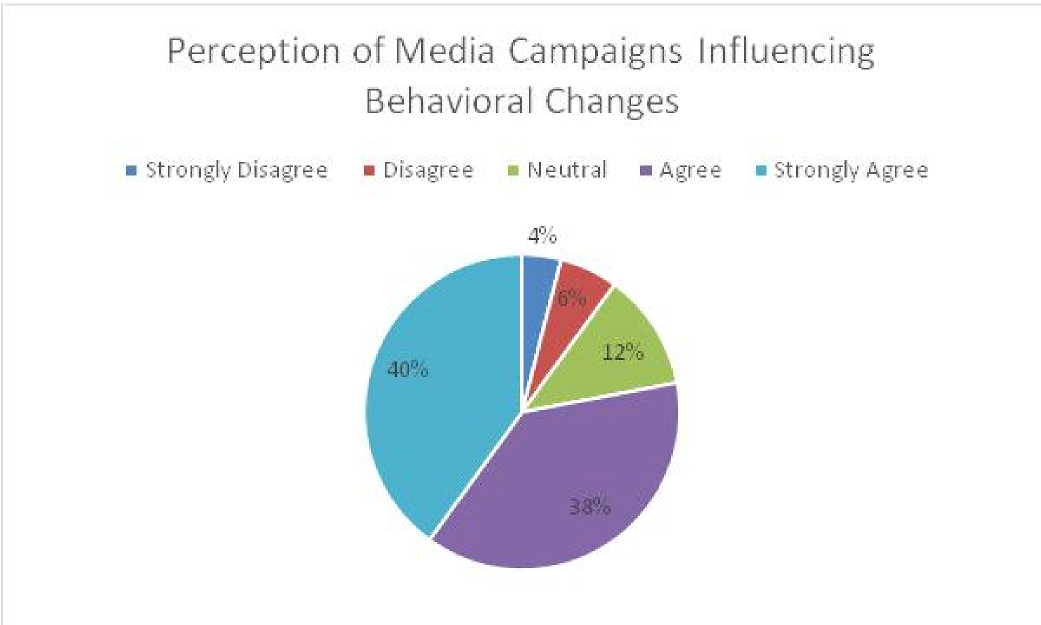

Within the perceptual spectrum regarding the influence of media campaigns on behavioral changes, the Likert-scale responses, ranging from strongly disagree to strongly agree, furnish a

comprehensive panorama. A mere 10% express disagreement, comprised of 4% strongly disagreeing and 6% disagreeing. Contrarily, a substantial 78%, encapsulating both agree and strongly agree categories, signals a prevailing sentiment endorsing the transformative role of media in shaping attitudes and behaviors.

This dominance of high agreement, embodied in the formidable 40% strongly agreeing and 38% agreeing, elucidates a resounding consensus affirming the catalyzing influence of media campaigns. The alignment with positive perceptions reverberates as a testament to the profound potential of media as a powerful tool for instigating positive societal shifts.

The Catalytic Role of Media: A Reinforcement of Positive Perceptions :-

The concordance with the perception that media campaigns wield influence over positive behavioral changes positions media as a dynamic agent of societal transformation. This alignment reverberates as a reinforcement of positive perceptions, substantiating the contention that media is not merely an information disseminator but a potent catalyst that permeates the cognitive and behavioral realms of its audience.

In essence, this perceptual consensus serves as a clarion call for a recalibration of societal narratives, acknowledging the pivotal role played by media in sculpting attitudes and behaviors. As media campaigns become heralds of behavioral change, the contours of societal dynamics undergo a metamorphosis, envisioning a future where positive shifts are not only envisaged but actively nurtured through the transformative influence of media.

High agreement (78%) with the perception that media campaigns influence positive behavioral changes signifies the catalyzing role of media in shaping attitudes and behaviors. This alignment with positive perceptions reinforces the potential of media as a powerful tool for instigating positive societal shifts.

Media Effectiveness :

Effectiveness of Media Campaigns in Communicating WASH Information :

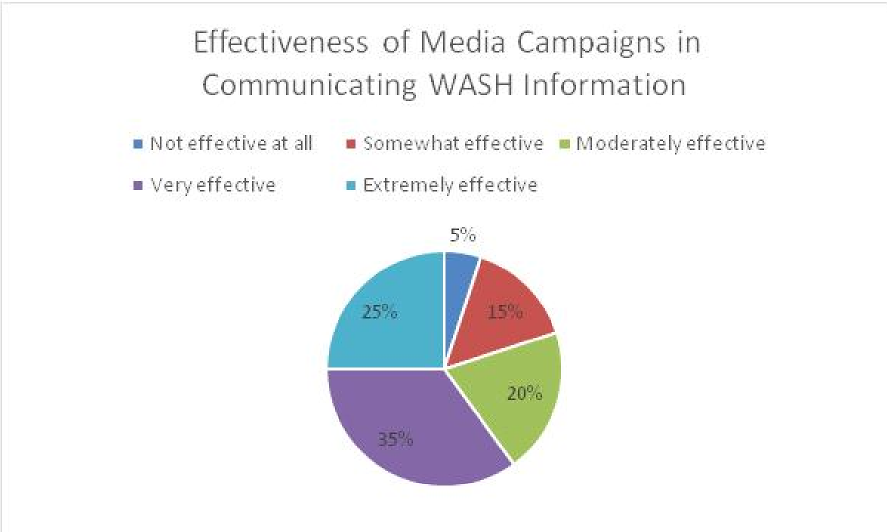

The assessment of media campaign effectiveness in communicating Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) information unfolds through a nuanced prism of varied effectiveness levels. The Likert-scale responses, ranging from not effective at all to extremely effective, paint a rich tapestry of the diverse impacts engendered by media campaigns.

A modest 5% express a perception of complete ineffectiveness, contrasting with a substantial 60%, encapsulating both very effective (35%) and extremely effective (25%) categories. This spectrum of effectiveness levels underscores the nuanced nature of media impact, acknowledging that the efficacy of campaigns is a gradient rather than a binary. It becomes evident that a one-size-fits-all approach may not suffice, necessitating a tailored strategy to maximize impact across the diverse landscape of audience perceptions.

Refining Strategies: A Call for Nuanced Tailoring :-

The prevalence of very effective and extremely effective perceptions (60%) positions media campaigns as potent conduits for WASH information dissemination. However, the presence of more moderate effectiveness perceptions calls for a nuanced exploration of strategies. Understanding this spectrum is pivotal for refining future initiatives, ensuring that campaigns are meticulously crafted to not only communicate information effectively but also resonate with the audience's diverse sensibilities.

This multi-dimensional understanding of effectiveness levels serves as a strategic compass, guiding the iterative evolution of media campaigns towards a landscape where impact is not only maximized but also attuned to the nuanced reception of the target audience.

Participation in Media-Related Activities:

Participation in School Activities Related to WASH Media Campaigns:

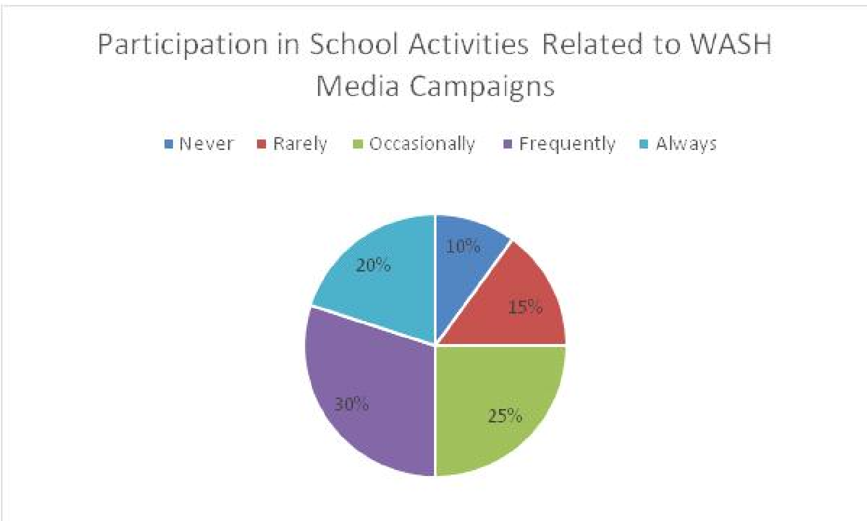

The evaluation of participation in school activities related to WASH media campaigns unveils

a balanced distribution across a spectrum of engagement frequencies. Responses spanning from never to always encapsulate the varied degrees of participation, elucidating a landscape of moderate to high engagement levels.

A noteworthy 30% indicate a frequent participation frequency, juxtaposed with 20% asserting an unwavering commitment, participating always. This engagement spectrum affirms schools as vital platforms for media-related activities, emerging as the nexus where WASH awareness is not merely imparted but actively embraced by the student cohort.

Schools as Catalysts for Engagement: A Convergence of Initiatives :-

The participatory landscape within schools suggests an active receptivity to initiatives promoting WASH awareness. This dynamic engagement underscores the potential of educational institutions as more than conduits of information; they are active catalysts in the cultivation of a community that embraces and internalizes the principles advocated by WASH media campaigns.

In conclusion, the participation frequencies within schools signal not only a receptivity to media-related activities but also position educational institutions as pivotal players in the orchestration of impactful campaigns. This synthesis of media effectiveness and school engagement converges into a paradigm where strategic initiatives, tailored to the nuanced landscape of impact, unfold within the dynamic crucible of educational environments.

Media Content Preferences : Most Engaging and Informative Media Content for WASH Awareness:

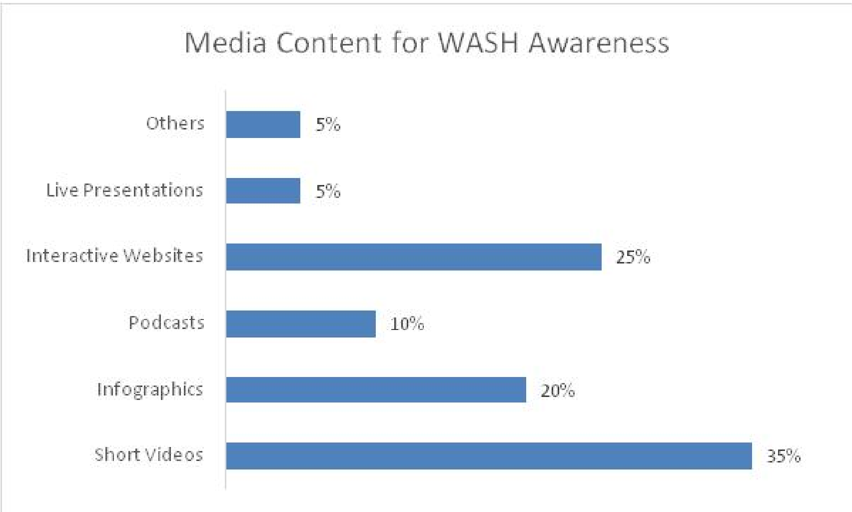

The evaluation of media content preferences for Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) awareness offers a window into the diverse landscape of audience engagement. The Likert-scale responses, spanning from short videos to live presentations, delineate a multifaceted spectrum of preferences.

A commanding 35% express a preference for short videos, emblematic of the dominance of

visually engaging content in capturing audience attention. Concurrently, 25% advocate for interactive websites, underscoring a proclivity for dynamic and participatory formats. These preferences, resonating within the realms of visual and interactive engagement, illuminate strategic pathways for tailoring future campaigns.

The prevalence of short videos and interactive formats as preferred mediums (35% and 25%, respectively) accentuates the significance of visual engagement and interactivity in capturing and retaining audience attention. This nuanced understanding of preferences becomes pivotal for refining future campaigns, ensuring that content aligns seamlessly with the receptiveness and preferences of the target audience.

In essence, the landscape of media content preferences becomes a canvas for strategic tailoring. As campaigns evolve, a judicious integration of visually captivating elements and interactive platforms emerges as a transformative approach, maximizing the resonance of WASH awareness initiatives with the diverse sensibilities of the study cohort.

Suggestions for Improvement: Guiding the Evolution of Campaigns :-

The open-ended responses soliciting recommendations for improving the effectiveness of media campaigns serve as a compass for the continuous evolution of initiatives. Participants, in offering practical insights, become stakeholders in the iterative refinement of campaigns, ensuring alignment with the evolving needs and expectations of the target audience.

The richness of these recommendations spans diverse dimensions—from enhancing visual elements in content to fostering community engagement initiatives. Practical insights such as incorporating local narratives, leveraging community leaders, and employing relatable spokespersons underscore a collective yearning for campaigns that are not only informative but culturally resonant.

Empowering Evolution : A Call for Cultural Relevance and Community Engagement : These recommendations constitute a roadmap for the future, advocating for campaigns that transcend the boundaries of information dissemination to become integral components of the cultural and community fabric. The call for relatable content and community involvement reinforces the transformative potential of media campaigns, not merely as purveyors of knowledge but as dynamic catalysts that weave seamlessly into the tapestry of community life.

Conclusion : Transformative Potential Unveiled :

In synthesis, the amalgamation of findings offers a profound understanding of the transformative potential of media-driven Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) campaigns in the context of this region. The positive impacts on awareness, behavioral changes, and the perceived well-being of schoolgirls underscore the pivotal role played by media as a catalyst for positive societal change.

This synthesis positions media not merely as a conduit of information but as a dynamic force contributing to the empowerment of schoolgirls. The strategic insights into content preferences and recommendations for improvement become beacons guiding the trajectory of future campaigns, ensuring a continuous alignment with the evolving landscape of audience needs and expectations. As the campaign narrative unfolds, it becomes a testament to the dynamic interplay between media and societal transformation, with enduring implications for the holistic well-being and empowerment of schoolgirls.

The amalgamation of findings underscores the transformative potential of media-driven WASH campaigns, shedding light on the positive impacts on awareness, behavioral changes, and the perceived well-being of schoolgirls. This synthesis positions media not only as a conduit of information but as a catalyst for positive societal change, with far-reaching implications for the empowerment of schoolgirls.

Recommendations: A Strategic Imperative for Dynamic WASH Advocacy :-

The survey outcomes crystallize into a compelling advocacy for heightened investment in diversified media initiatives to fortify Water, Sanitation, and Hygiene (WASH) advocacy within school environments. This strategic imperative arises from a nuanced understanding of the survey findings, emphasizing the need for tailored campaigns that address specific challenges while capitalizing on identified opportunities.

Diversified Media Initiatives : The call for increased investment echoes the imperative of diversifying media initiatives. This encompasses a strategic expansion beyond conventional channels, embracing a mix of visual, interactive, and culturally resonant content. Short videos and interactive platforms, identified as preferences, should be harnessed judiciously to amplify the impact of WASH advocacy.

Tailoring Campaigns to Specific Challenges : The survey illuminates varied challenges, from differing levels of media access to nuanced preferences in content consumption. Tailoring campaigns to address these challenges ensures a more effective and inclusive reach. For instance, initiatives can be tailored to accommodate varying media access levels, ensuring that the message permeates even into segments with limited engagement.

Building on Identified Opportunities : The survey identifies opportunities, such as the positive impact on awareness and behavioral changes. Building on these successes becomes pivotal in crafting future campaigns. Leveraging the efficacy of short videos and interactive formats, as indicated by the survey, can be foundational in fortifying positive impacts and furthering the momentum toward behavioral transformations.

Dynamic, Adaptive, and Responsive Approaches : The evolving needs of the community necessitate an approach that is dynamic, adaptive, and responsive. Initiatives should be designed with the flexibility to pivot in response to emerging challenges and opportunities. This responsiveness ensures that campaigns remain relevant and impactful in the ever-changing landscape of WASH advocacy.

Community-Centric Campaigns : The qualitative insights emphasize the importance of community engagement. Future campaigns should adopt a community-centric approach, integrating local narratives, community leaders, and relatable spokespersons. This not only enhances cultural resonance but also fosters a sense of ownership and empowerment within the community.

Continuous Monitoring and Evaluation : To gauge the effectiveness of initiatives, a robust system of continuous monitoring and evaluation should be instituted. This involves feedback loops, impact assessments, and iterative refinements based on real-time data. Such a system ensures that campaigns remain on course and are refined in response to evolving dynamics.

In conclusion, the recommendations advocate for a holistic and strategic approach to WASH advocacy in schools. By investing in diversified media initiatives, tailoring campaigns to specific challenges, and building on identified opportunities, the advocacy landscape can be fortified for lasting impact. This approach, coupled with a commitment to dynamic and community-centric initiatives, positions WASH advocacy not only as a conduit for information but as a catalyst for transformative change within school communities.

Bibliography :-

1 Adams J, Bartram J, Chartier Y, Sims J (2009) Water, sanitation and hygiene standards for schools in low-cost settings. World Health Organization

2. Agol D, Harvey P, Maíllo J (2017) Sanitation and water supply in schools and girls' educational progression in Zambia. Journal of Water, Sanitation Hygiene for Development 8(1):53–61

3. Antwi-Agyei P, Mwakitalima A, Seleman A, Tenu F, Kuiwite T, Kiberiti S, Roma E (2017) Water, sanitation and hygiene (WASH) in schools: results from a process evaluation of the National Sanitation Campaign in Tanzania. Journal of Water, Sanitation Hygiene for Development 7(1):140–150

4. Freeman MC, Greene LE, Dreibelbis R, Saboori S, Muga R, Brumback B, Rheingans R (2012) Assessing the impact of a school-based water treatment, hygiene and sanitation programme on pupil absence in Nyanza Province, Kenya: a cluster-randomized trial. Trop Med Int Health 17(3):380–391

5. Garn JV, Trinies V, Toubkiss J, Freeman MC (2017) The role of adherence on the impact of a school-based water, sanitation, and hygiene intervention in Mali. Am J Trop Med Hyg 96(4):984–993

6. Karon AJ, Cronin AA, Cronk R, Hendrawan R (2017) Improving water, sanitation, and hygiene in schools

in Indonesia: a cross-sectional assessment on sustaining infrastructural and behavioral interventions. Int J Hyg Environ Health 220(3):539–550.

WHO/UNICEF :

1. New report on wash in households (2023) UN. Available at: https://www.unwater.org/news/who/unicef-new-report-wash-households#:~:text=Water%3A%20In%202022%2C%202.2%20billion,million%20who%20practised%20open%20defecation.
2. Water, sanitation and hygiene (WASH)UNICEF. Available at: https://www.unicef.org/wash.
3. World Health Organization. (n.d.). 2 in 5 schools around the world lacked basic handwashing facilities prior to covid-19 pandemic - UNICEF, who. World Health Organization. https://www.who.int/news/item/13-08-2020-2-in-5-schools-around-the-world-lacked-basic-handwashing-facilities-prior-to-covid-19-pandemic-unicef-who
4. United Nations. (n.d.). Water and sanitation | department of economic and social affairs. United Nations. https://sdgs.un.org/topics/water-and-sanitation
5. United Nations. (n.d.-b). Water. United Nations. https://www.un.org/en/global-issues/water.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 31-37

A HISTORICAL REVIEW OF EARLY INDIAN ENGLISH WRITINGS IN PROSE

Prof. Naresh Kumar Yadav
GOVT. COLLEGE, NARNAUL, HARYANA.

The inclination to establish a distinct identity has been a noteworthy characteristic of English prose in India since its inception. Despite the government's stated objectives, this trend has persisted both prior to and following independence. The British colonial administration introduced English with the primary aim of producing subservient clerks and sycophants, but it also engendered individuals who were social reformers, independent thinkers, political leaders, and others. Through their writings and speeches, English in India began to assume an Indian identity.

Lord Macaulay was of the opinion that implementation of the English language in India to be imperative for the advancement of British prestige, as well as for the perpetuation of the British Empire. In his view, the paramount accomplishment of the British people did not solely lie in governing humanity, but rather in instructing it. He perceived the essence of all philosophy to be rooted in the dignity of mankind, and the beckoning of history to be found in the unity of races.

Macaulay was a distinguished man of letters who adhered to a unique religious philosophy. This philosophy centered on the promotion of a deep appreciation for humanity through the power of language. In his advocacy for Indian education, Macaulay was not only championing the cause of education but also that of human enlightenment. His efforts in this regard were akin to those of a devout religionist, driven by a fervent zeal to transform Indian society. This is evident in his renowned "Minute on Education," which reflects his unwavering commitment and the formidable challenges he faced in shaping the future of our nation. Despite the prevailing societal norms and the formidable opposition from the Orientalists, Macaulay remained steadfast in his mission to bring about a positive change in Indian society.

It is widely acknowledged by those familiar with historical accounts that our understanding of the world was limited and our perspective outdated. Our knowledge was restricted to the study of Shastras, and our way of life was dictated by religious rituals. The only guidance we had was from the legendary heroes of our past. Macaulay's assertion that India lacked a history, science, and astronomy

is not entirely unfounded, although his sweeping and biased statement that all Sanskrit and Arabic knowledge was false is not entirely accurate. In comparison to the significant advancements made by Europe in science and history during that time, India was centuries behind. The introduction of a new education system allowed Indian culture to retain its roots while also incorporating Western ideas, which was necessary for its survival.

Following the attainment of independence, the national government, driven by political fervor, ceased to provide support for the English language, intending to restrict its usage to specific functional domains. It was anticipated that within fifteen years, Hindi, the national language of India, would entirely supplant English. In accordance with this expectation, the Constitution was amended to include provisions to this effect.

Once again, the English language has defied the intentions of the government. Despite facing opposition, it has continued to flourish steadily and quietly, constantly adapting to become a much richer and fuller medium of expression for the modern Indian sensibility than any other native Indian language. Presently, over 10,000 books of various genres, including creative and general, are published annually in India in the English language. This number surpasses the total number of publications in all Indian languages combined. The number of novelists, poets, essayists, and journalists writing in English in India has increased significantly, owing to the fact that Indians are writing in English without undue inhibitions.

The tradition of Indo-English prose can be easily traced, beginning with the works of Rammohun Roy. The majority of his prose was written during a time when Romantic prose was fashionable in England. However, Rammohun Roy's prose is largely devoid of the artificialities commonly found in English Romantic prose. While there is a certain degree of rhetoric present, it is of a type that is inherent in Sanskrit and the living Indian languages. The same can be said of the prose of other notable Indian writers in English who followed in Rammohun Roy's footsteps, including Keshub Chunder Sen, Govind Ranade, Bankim Chandra Chatterji, Dwarakanath Tagore, Gopal Krishna Gokhale, Vivekananda, and others. Their prose was written with the intention of awakening the Indian people from their centuries-old stupor, and as a result, it developed its own unique flavor. Similar to Victorian prose in England, the Indian prose of the late 19th century may appear heavy-handed on the surface, with an abundance of exclamation marks and interrogatives, but it is deeply infused with a resurgent Indian consciousness and rich allusions to the nation's mythical lore.

In the 20th century, as the movement for independence gained momentum, the English prose authored by Indian national leaders, social reformers, religious figures, creative writers, and journalists began to exhibit a greater degree of Indianness. These writers, including Mahatma Gandhi, Jawaharlal Nehru, Rabindranath Tagore, Aurobindo, S. Radhakrishnan, C. Rajagopalachari, Mulk Raj Anand, and

others, developed a more fluid and less cumbersome prose style that incorporated words and idioms from spoken Indian languages. Many of these words subsequently found their way into Standard English dictionaries.

Jawaharlal Nehru's literary works, namely his Autobiography and The Discovery of India, demonstrate his exceptional mastery of the English language. His extensive and profound knowledge of English literature, coupled with his familiarity with the intellectual and literary movements in Europe, as well as his deep-rooted inspiration from Indian and Asian traditions, have resulted in Nehru's writing being characterized by a natural and effortless style, as well as a sensitive and suggestive tone. Nehru's writing is a reflection of his persona, as it reveals his cultural background, his intellectual prowess, and his human nature. Whether in writing or speaking, Nehru's works are a testament to his admirable and endearing character.

Dr. Radhakrishnan is a distinguished master of prose, whose monumental two-volume History of Indian Philosophy has set a benchmark for philosophical writing in English. His exposition is brilliant, and he presents rival systems of philosophy with judiciousness, while his arguments are persuasive. Radhakrishnan has succeeded in endowing Indian philosophy with the quality of a vital and living tradition. In his later works, particularly in An Idealist View of Life, the constructive philosopher is more prominent, and his prose style is always adequate, colorful, rich, and eloquent, interspersed with carefully selected quotations from the literatures of both the West and the East, which have been instrumental in carrying his message forward.

The distinct identity of English prose in this nation is discernible solely in the literary works of individuals who may be classified as non-academic and creative writers, or those who were social and religious reformers. This phenomenon is a natural consequence of English education, which instilled in them a consciousness of India's past grandeur and current predicament, thereby inspiring them to strive towards the restoration of its lost glory. These writers did not emulate the English prose of their counterparts in England, but rather employed the language as a tool to achieve their objectives, given that English was the sole language comprehensible to all educated Indians across various regions of the country.

Of paramount importance is the fact that all of these prose writers possess a profound knowledge of their respective Indian languages, which has greatly enriched their prose writings. However, Jawaharlal Nehru, in contrast, had an insufficient understanding of any Indian language and thus adhered closely to the rhythm and idiom of the educated Englishman's English. This observation holds true for other notable writers who emerged after India gained independence, including R.K. Narayan, Raja Rao, Bhabani Bhattacharya, Nayantara Sahgal, and Kamala Markandaya.

It is worth noting that individuals such as K.A. Abbas and Kushwant Singh possess a proficient

understanding of Urdu and Punjabi. It is a common observation that individuals who possess a deep familiarity with their native language and literature have played a pivotal role in shaping the development of English prose in India. Their contributions have been significant.

Indian literature in the English language possesses a distinctive feature, namely, its legitimacy as a form of literature is persistently and contentiously challenged. The pertinent inquiry ought not to be whether an Indian literature in English can exist, but rather, what extent of literary prospects are afforded to a writer who employs English as their medium. Regarding the novelists, B. Rajan opines.

"When we consider the possibilities open to the writer in English, we have to admit that literature in India has not fully risen to those possibilities. Few literatures do, and in a hostile climate there is a natural reluctance to take the larger risk. Even if the risk were taken, the conjunction of man and moment is not something which good intentions can legislate.... Indian writers have not yet developed the stamina to pursue their characters and themes over the long distances that the novel demands, nor acquired techniques to paint on large canvases".[1]

B.Rajan has posited that Indian writing can be characterized as a cautiously limited success rather than a noble failure. Conversely, Anita Desai has expressed her belief that the Indian literary scene in English is a barren wasteland.[2] She attributes the dearth of creative writers in English to the fact that Indians, as a people, do not possess a strong literary inclination. According to Desai, Indians do not lead their lives in accordance with literary values and traditions. She contends that Indians are a vocal people, and that the qualities necessary for critical analysis and self-reflection are not inherent to Indian nature. Desai asserts that Indians are essentially extroverted, and are more inclined towards adulation or denunciation than pure, disinterested, detached criticism. While India has a place for epics, Desai believes that novels do not have a significant presence in Indian literature. She argues that epics were not considered works of literature, but rather were part of the oral tradition. Furthermore, Desai notes that “even now, epics are not widely read and are primarily the domain of scholars preserve”.[3]

Numerous individuals have expressed such perspectives intermittently. It is imperative that we pose the following question: How much longer will we, as writers or poets, continue to apologize for writing in English? The notion that it is an "alien language", that it is "imprudent and futile" to utilize it as a creative medium, and that doing so is to burden oneself with a handicap, has become tediously repetitive. Indians who write in English are frequently accused of lacking Indian sensibilities or failing to remain true to their traditions.

However, a definitive definition of what truly constitutes "Indian" remains elusive. The assertion made by Yeats, that "Nobody can write music and style in language not learnt in childhood and ever since the language of his thought," has been frequently cited to support the notion that English is an

insufficient creative tool for Indian writers. Yet, we must not disregard the reality that for many Indian writers who employ English, it is a language that was acquired during their formative years and one in which their cognitive processes occur naturally. It is imperative that critiques of Indian literature cease to fixate on this issue. As H.M. Williams observes :

"Nehru wrote brilliantly of Indian history and of his owns discovery of it, and composed speeches and letters which will always find a place in any anthology of English oratory and political commentary. From the stand point of literature, none of the statesmen authors can compare with Nirad Chaudhuri's autobiographical studies and his forays into sociology and national psychology in The Continent of Circe, one of the most amusing and original books about Hindu life, culture, and character, written in a rich, powerful style, reminiscent of some of the great Victorian prose writers".[4]

The various challenges faced by critics in the realm of Indian literature are diverse and complex. The conspicuous lack of serious critical engagement with Indian writing over the years has only been sporadically alleviated by occasional, fleeting interest in haphazardly compiled anthologies. One contributing factor to this phenomenon is the absence of a shared literary tradition or common ground among Indian writers, who frequently possess independent and disparate voices. Furthermore, established writers are often labeled as propagandists by emerging writers, while the latter are dismissed as ungrounded upstarts by critics. As such, the field of criticism in Indian writing has yet to mature.

To achieve the complete objective, it is insufficient to merely eliminate critical indifference. What is required in contemporary Indian literature is a discerning critique that eschews vacuous praise and impetuous rejection, and instead offers an impartial and transparent assessment of a literary piece, without any concessions or excuses for the language in which it is expressed.

In essence, the identity of prose is contingent upon the novelty of ideas. In the case of pre-Independence English prose in India, its identity was shaped by a pervasive preoccupation with the revitalization and modernization of ancient Indian culture. Conversely, the identity of post-1947 Indian prose is predicated upon the generation of original ideas and thoughts across various disciplines, as well as the attainment of excellence in both general and creative writing. Encouragingly, Indo-English prose, whether within or outside academic institutions, is characterized by a remarkable diversity of genres, each imbued with a distinct national identity.

Renowned authors have imbued their English with idioms, phrases, modulations, tone, and even the vocabulary of their native languages. This process has been reciprocal, as the development of English in India has similarly influenced native Indian languages. The outcome is a mutual enrichment and a pleasing variety in Indian English prose style. Mulk Raj Anand's prose is replete with Punjabi elements, while R.K. Narayan's unmistakably contains certain elements of Tamil. Bhabani

Bhattacharya's prose is steeped in Bengali sensibility and idioms. Similarly, Bharati Mukherjee's distinctly Bengali-flavored prose distinguishes her from Kamala Markandeya, whose prose pulsates with the rhythm of modern Tamil. Through the prose of these and other fiction writers, Indian English demonstrates its capacity to address the complex modern Indian experiences that extend beyond a particular region and relate to national, international, and fundamental existential problems. Indian writing, even if only post-1947 is considered, is a rich and diverse affair. Some writers have successfully overcome the challenge of language and achieved a unique style, such as Raja Rao, Ved Mehta, and Nirad Chaudhuri. However, there is also the reality of an uncreative and inefficient use of the English language by the majority of our academicians. Our academics are still preoccupied with linguistic perfection, akin to a 19th-century 'babu' worrying about the cut of his British-tailored suit. If we write as we think and feel, the English language can still be wielded as an effective tool to convey the nuances of the culture of the modern Indian, who is struggling to reconcile his ancient Indian heritage with the new knowledge of the West.

Nirad C. Chaudhuri is widely regarded by his admirers as one of the most prominent Indo-English writers. While the English have acknowledged his greatness, his achievements remain under a cloud in our country. Chaudhuri has been described as India's most provocative and controversial writer, a description that still holds true today. Despite his advanced age of 85, he remains as irrepressible as ever, as evidenced by his recent articles. Chaudhuri once stated that supporting him is more patriotic than championing E.M. Forster. Unfortunately, it has become fashionable to label him an "Anglophile," and some Indian writers have dismissed his works as mere "wordy exercises," "preposterous theses," or "pathetically sterile efforts." Chaudhuri writes :

"To call me pro-British has become such a stale jibe that I have ceased even to be amused by it. In fact, instead of harming me the bad reputation has helped me in my profession of writer. White-skinned scribblers have two methods to make Anglicised Indians read their books: first, by praising India and next by criticising it. Both work, because the one feeds their megalomania and the other their persecution mania. In contrast, mere Natives like me have only one way if they want to secure a wide readership among these people. These Indians do not value praise of Indian life and civilisation from their fellow countrymen, for that is only a shared feeling, devoid of extra authority. So, the native must criticise and acquire the reputation of being anti-Indian".[5]

"On the whole, I should be reconciled to my ill-fame" says Chaudhuri.[6]

Renowned figures such as Aldous Huxley, Arnold Toynbee, Christopher Isherwood, T.S. Eliot, Henry Thoreau, and Arthur Schopenhauer have been able to recognize the greatness of India. It is therefore perplexing that an Indian like Nirad Chaudhuri is unable to find any greatness in his own country, as asserted by his critics. However, upon closer examination of Chaudhuri's writings and

observations, it becomes evident that he possesses a deeper understanding and appreciation of Indian culture than many of us.

Nirad Chaudhuri's insights into India's social and historical issues are deemed genuine, as he does not rely on second-hand sources in his literary works. Consequently, his perspectives possess a captivating quality that resonates with readers. Chaudhuri astutely identifies several inadequacies in our familial, societal, and political spheres, which stem from his profound sense of responsibility towards his nation and its populace.

The intellectuals of contemporary India are subject to two significant limitations. Firstly, they exhibit a lack of commitment, and secondly, they lack vision. Their commitment is not directed towards ideas or professional standards, but rather towards their own self-interest, their position in the hierarchy, and professional advancement insofar as it serves these overriding considerations. In simpler terms, the average intellectual is more concerned with maintaining their position in the upper middle class than with the attitudes and values that accompany a commitment to knowledge and its dissemination. Given this situation, it is not surprising that there is a near-complete absence of vision. Indian intellectuals are more preoccupied with the present than with the future, as the present exerts a sharp impact on them that they are unable to ignore.

In recent years, there have been several endeavors to establish centers of intellectual excellence within the country. However, these attempts have not yielded significant success. Regrettably, the pursuit of excellence has become intertwined with the pressure to advance in one's professional career. Consequently, individuals who should prioritize professional standards often compromise them, especially when their personal interests are at stake. In such circumstances, it takes exceptional courage to uphold one's principles. This is where Nirad Chaudhuri distinguishes himself from contemporary Indian intellectuals, as evidenced by his writings.

References :

1. B. Rajan, “India”, in Bruce King(ed), Literature of the World In English, Routledge & Kegan Paul, London, P. 81.
2. Anita Desai, “Pretty Flower In a Wasteland” New Delhi, Nov. 24-Dec. 7, 1980.
3. Ibid.
4. H. M. Williams, Indo-Anglian Literature – A Survey, Orient Longman Ltd., New Delhi, 1976, p. 10.
5. Nirad C. Chaudhuri, “My Way of Being Pro-British”,
6. Ibid.

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक पृष्ठ : 38-39

लोकतंत्र बनाम अधिनायकवाद

डॉ. वीना पाहूजा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, जी.एस.जी.डी. कॉलेज, 25 बीबी, पदमपुर, जिला श्रीगंगानगर (राज.)

भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में कुछ ऐसे अवसर सामने आये, जब यह सवाल गंभीर चुनौती बन कर खड़ा हुआ है कि क्या भविष्य में लोकतंत्र अपनी मूल अवधारणाओं एवं संविधान प्रदत्त व्यवस्थाओं के साथ हमारे देश में कायम रह पाएगा या किसी न किसी प्रकार की तानाशाही हमारे ऊपर थोप दी जाएगी? भारतीय लोकतंत्र की बुनियाद व्यस्क मताधिकार पर आधारित है। यह व्यवस्था मात्र राजनीतिक ही नहीं, नैतिक – आध्यात्मिक मूल्य भी है। अपने देश में यह भावना तो रही है कि हर मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान है या ईश्वर का ही अंश है, लेकिन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से बनाई गई व्यवस्थाओं एवं व्यवहार में कहीं कभी ऐसा हो रहा हो, इसका प्रमाण इतिहास में नहीं मिलता। इसका प्रारंभ तो वर्तमान भारतीय संविधान की बुनियाद पर आधारित उस लोकतांत्रिक व्यवस्था से ही होता है, जिसकी उद्घोषणा 'हम भारत के लोग' से होती है।

15 अगस्त, 1947 को भारत के लोग राजशाही, सामंतशाही और साम्राज्यशाही की व्यवस्था में सैकड़ों वर्षों तक रहने–सहने के बाद एक नए युग में प्रविष्ट हुए थे – 'लोकतंत्र' के एक नए व्यापक आयाम में दाखिल होने के संकल्प के साथ। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में लड़ी गई आजादी की लड़ाई में आम लोगों की व्यापक एवं शक्तिशाली भागीदारी के कारण ही गुलामी की व्यवस्थाओं से निकलकर सीधे लोकतंत्र की व्यवस्था में सहज स्वीकृति के साथ दाखिल होना संभव हुआ था, जो इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी, लेकिन इस लोकतंत्र के 'लोक' को अर्थात 'मतदाता' को जागृत, चेतन, संगठित और आत्मविश्वास से भरपूर बनाने की कोशिश उतनी नहीं हो पाई, जितनी होनी चाहिए थी। गांधी जी ने 29 जनवरी, 1948 को अखिल भारतीय कांग्रेस के लिए जो मसोदा तैयार किया था, जिसे उनका आखिरी वसीयतनामा भी कहा जाता है और जिसमें उन्होंने कांग्रेस को 'लोकसेवक संघ' में परिवर्तित करके लोकतंत्र की बुनियाद बनाने व उसे मजबूत करने की जिम्मेदारी सौंपनी चाही थी, उसे व्यवहार में लाने की कोई योजना उनके मार्गदर्शन में नहीं बन पाई, क्योंकि दूसरे ही दिन 30 जनवरी, 1948 को उनकी हत्या कर दी गई।

यद्यपि राज्यसत्ता से अलग सामाजिक स्तर पर चलाए गए समाजवादी, साम्यवादी एवं सर्वोदयी आन्दोलनों ने, जो सामाजिक समस्याओं पर ही आधारित थे, समाज में गतिशीलता बनाए रखी और राज्यशक्ति को समय–समय पर चुनौती भी देती रही, लेकिन हमें यह स्वीकारना पड़ेगा कि धीरे–धीरे भारतीय लोकतंत्र का 'लोक' अत्यधिक राज्याश्रित होते हुए कमजोर पड़ता गया एवं राज्यशक्ति अत्यधिक मजबूत होती गई। 'लोकतंत्र' का

'लोक' अपने 'वोट' की ताकत से 'राजतंत्र' को नियंत्रित करने की क्षमता अर्जित नहीं कर पाया।

यहां इतिहास के विस्तार में जाना संभव नहीं, लेकिन 'राजसत्ता' के अत्यधिक केंद्रित हो जाने और 'राज्याश्रय' के अवसर तलाशते फिरते 'लोक' की कमजोरी का ही एक चरमबिंदु तब आया, जब 'इंदिरा इज इंडिया' के नारे बुलंद होने लगे तथा नौबत आपातकाल रूपी तानाशाही तक आ पहुंची। यह कमजोर होते 'हम' और निरंतर मजबूत होते हुए 'मैं' का ही परिणाम था। कुछ समय तो ऐसा लगा कि अब हम पुनः 'लोकतंत्र' की व्यवस्था में नहीं लौट पाएंगे, लेकिन जैसे ही मौका मिला, 'तानाशाही' को चुनौती देती प्रचंड लोकशक्ति को प्रकट होते हमने देखा और 1977 में मतदाताओं ने राजकर्त्ताओं को एक जबरदस्त पाठ पढ़ाया कि खबरदार, फिर भविष्य में ऐसी गुस्ताखी मत करना! वर्ष 1977 के चुनाव परिणामों का यह एक स्पष्ट संदेश था कि भविष्य का कोई भी प्रधानमंत्री देश में तानाशाही थोपने की कोशिश करने से पहले हजार बार सोचने को मजबूर होगा, लेकिन हमारी कमजोरी यह है कि 'मतदाता' की नियंत्रक शक्ति हम अपने लोकतंत्र को सही पटरी पर टिकाए रखने की दृष्टि से, उस अनुभव के बाद भी, विकसित नहीं कर पाए। इतना ही नहीं, आज हम पुनः इस स्थिति में हैं कि हमारा 'हम' सिकुड़ते–सिकुड़ते इतना छोटा हो गया है कि हमें अपने उद्धार के लिए किसी चमत्कारी 'मैं' के जयकारे लगाने और उससे संतुष्ट होने की ओर धकेला जा रहा है। आधुनिक इतिहास ही नहीं, हमारे पौराणिक आख्यान भी यही सीख देते हैं कि 'सत्ता' की गद्दी पर विराजमान 'मैं' जब स्वयं को इतना विराट और अहंकार से उन्मुक्त कर लेता है तथा मनमानी पर उतारू होने लगता है, तो उसका विनाश निश्चित हो जाता है।

पिछले पांच साल के अनुभवों से हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि भारतीय लोकतंत्र आज पुनः संकट के दौर से गुजर रहा है। संविधान की बुनियाद को इस दौर में अत्यधिक कमजोर किया गया है, संवैधानिक संस्थानों को निरर्थक सिद्ध करने की कोशिशें हुई हैं, शिक्षण संस्थाओं, संचार माध्यमों, न्यायालयों तक को कमजोर करने की कोशिशें हुई हैं। राज्य की शक्तियां एक–दो व्यक्तियों के नियंत्रण में सिमटती गई हैं। लोकतंत्र में चुनाव एक अति आवश्यक प्रक्रिया होती है, लेकिन यदि इसमें लोक और सत्ता में से किसी एक को चुनना हो, तो हम क्या करेंगे। एक तरफ लोकतंत्र को मजबूत करने का आदर्श है, तो दूसरी तरफ लालच, भय और चापलूसी हमें सत्ता की ओर धकेलती है। वर्ष 2019 का चुनाव एक बार फिर लोकतंत्र और अधिनायकवाद के बीच का चुनाव साबित होने जा रहा है। भारत का लोकतंत्र और लोक इतिहास की कसौटी पर है।

वर्ष 1977 के चुनाव में स्व. लोकनायक जयप्रकाश ने कहा था, 'भारत की आम जनता जीवन के ऊंचे मूल्यों से प्रेरित होती है और नए इतिहास का सृजन करती है। इस चुनाव में जनता जीतेगी, लोकतंत्र जीतेगा, तानाशाही हारेगी'। आज लोकनायक नहीं हैं, लेकिन क्या उनकी आमजन के प्रति यह गहरी आस्था बिलकुल समाप्त हो गई है? नहीं, भारतीय लोकजीवन का वह अंतर–प्रवाह अब भी जारी है। मई, 2024 में एक बार पुनः लोकतंत्र विजयी होगा, अधिनायकवादी प्रवृत्तियों का अंत होगा, फिर हम बुलंदी के साथ उद्घोष करेंगे – भारत के मतदाताओं की जय हो।

संदर्भ :–

1. लोकतंत्र, डेविड बीथम एवं केविन वॉयले।
2. नजरबंद लोकतंत्र, लालकृष्ण आडवाणी।
3. बोहल शोध मंजूषा, डॉ. नरेश सिहाग।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 40-42

समकालीन स्त्री कथाकार मृणाल पाण्डे

आर. पुष्पलता
पीएच.डी. (हिंदी), हिंदी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना।

स्त्री विमर्श पुरुषों के विरुद्ध अभियान नहीं है ना ही उनसे प्रतिस्पर्धा करने की चेष्टा है। स्त्री विमर्श स्त्री के स्त्री रूप को बनाए रखने की चेष्टा है। घर, परिवार, समाज, संस्थाएँ और सरकार सभी के स्त्री के प्रति सवाल है तथा उन सबके जवाबों में सभी कर्त्तव्य का बंधन चाहते हैं। स्त्री के लिए सहयोगी की भूमिका निर्वाह करने वाली उनकी परिभाषाएँ हैं और सबकी आशाएँ हैं कि वह उन परिभाषाओं पर खरी उतरे। तो क्या पुरुष के लिए परिभाषाएँ सहयोगी भूमिका के दायित्व से मुक्त हैं अथवा ढीली हैं? पिता की भूमिका निर्वाह करने वाले पुरुषों की मानसिकता में बदलाव आया है– वे अपनी–अपनी बेटियों को सभी दृष्टिकोणों से विकास के अवसर देने के पक्ष में हैं परंतु पति की भूमिका में वही पुरुष न जाने क्या–क्या हो जाता है, जिसे परिभाषित करना असंभव है।

हिंदी साहित्य में स्त्री सम्मान नहीं हुआ है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। महादेवी वर्मा ने लिखा था 'स्वतंत्र भारत में नारी को मिले अधिकारों की कमी नहीं– अधिकार ही अधिकार मिले हैं। परंतु कितनी नारियां हैं जो अपने अधिकारों का सुख भोग पाती हैं स्वातंर्त्योत्तर स्त्री उपन्यास लेखन में इन सभी सवालों पर विमर्श किया गया है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में मृणाल पाण्डे सर्वतोन्मुखी, प्रतिभा संपन्न प्रतिष्ठित कहानीकार, उपन्यासकार के साथ–साथ नाटककार के रूप में सामने आयी हैं। मृणाल पांडे के नाटक, कहानी और उपन्यास साहित्य का इन सभी विधाओं में समान रूप से योगदान है। मृणाल पाण्डे ने पत्रकारिता के क्षेत्र के अलावा नाटक, कहानी और उपन्यास साहित्य में भी अपनी कलम चलाई है। इस तरह मृणाल पाण्डे पत्रकार, दूरदर्शन वाचिका की भूमिका के अतिरिक्त साहित्य में भी अपनी अलग छवि रखती हैं।

मृणाल पांडे ने पत्रकारिता और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में अपने सामयिक एवं प्रासंगिक लेखन के माध्यम से अपनी लेखकीय जिम्मेदारी का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया है। पत्रकारिता मृणाल पाण्डे का हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान हैं। यथार्थवादी लेखन ही उन्हें साहित्य में एक अलग पहचान दिलाता है। इन्होने यथार्थवादी सामाजिक, परंपरागत सोच और कुरीतियों को दृष्टिगोचर ही नहीं किया, बल्कि उनका समाधान खोजने का भी प्रयास किया है।

मृणाल पाण्डे का जन्म 26 फरवरी 1946 को टीकमगढ़, मध्यप्रदेश में हुआ था। मृणाल पाण्डे की माँ जानी–मानी उपन्यासकार और लेखिका शिवानी थीं। इन्होने अपनी प्रारंभिक शिक्षा नैनीताल में पूरी की, उसके बाद प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहबाद से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने 'संगीत विशारद'

गन्धर्व महाविद्यालय से किया और 'कॉरकोरेन स्कूल ऑफ आर्ट' वाशिंगटन में चित्रकला और डिजाइन का विधिवत अध्ययन किया। 21 वर्ष की आयु में ही इनकी पहली कहानी 'धर्मयुग' में प्रकाशित हो गयी थी। वे घर पर उनके भाई और उनके साथ थोड़ा सा भी अंतर किया जाता तो वे विद्रोह कर देती थीं। यह स्त्री की संघर्ष भावना उनके निजी जीवन के साथ उनकी कृतियों में भी दृष्टिगोचर होती है।

मृणाल पाण्डे की यह महत्वाकांक्षा ही थी कि उन्होंने पत्रकारिता जैसे चुनौती भरे कार्य में प्रवेश किया जबकि स्त्रियों के लिए उस समय यह कार्यक्षेत्र वर्जित था। उन्होंने उसमें प्रवेश ही नहीं लिया बल्कि अपने आत्मविश्वास व शक्ति से उचित स्थान प्राप्त किया है। पढ़ाई में रूचि लेना उनकी माँ शिवानी की प्रेरणा का परिणाम था। वह अपनी बेटी के पत्रकारिता में जाने के फैसले से नाखुश थीं, उन्हें लगता था कि पत्रकारिता का कार्य बोझ है, उन्हें साहित्य सेवा नहीं करने देगा। माँ उन्हें अपने अक्ष के समान देखना चाहती थी। मृणाल पाण्डे ने अपनी माँ के डर को गलत साबित कर के एक अच्छी पत्रकार और उतनी ही सफल रचनाकार बनकर दिखाया है। मृणाल पांडे समाचार पत्र 'दैनिक हिन्दुस्तान' तथा लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'कादम्बिनी' और बाल पत्रिका 'नंदन' की भी प्रधान संपदाक रही हैं। इस तरह वह समाज के प्रत्येक वर्ग से जुड़ी हुई हैं।

1967 में 'कोहरा और मछलियाँ' से साहित्य जगत में प्रवेश किया। तदोपरांत नाटकों, उपन्यासों, निबंधों, कहानियों की रचना के माध्यम से साहित्यिक क्षेत्र में अपनी अलग सशक्त पहचान बनाने में समर्थ हुई। एक पत्रकार की व्यस्त दिनचर्या के उपरांत भी अंदर के साहित्यकार के लिए समय का नियोजन कर एक से एक उत्कृष्ट कृति का सृजन करते हुए साहित्य संसार को समृद्ध करने का प्रयास मृणाल पाण्डे का साहित्य के प्रति विशेष प्रेम को दर्शाता है। समाज में स्त्री का दोयम दर्जा, उसके बंधन, उसकी पीड़ा को उन्होंने अनुभव ही नहीं किया बल्कि अपने साहित्य का विषय भी बनाया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उसके वास्तविक और व्यावहारिक अनुभव के कारण ही मृणाल पाण्डे का स्त्री विमर्श अद्वितीय बन गया है। उनकी रचनाओं में स्त्री की चर्चा उसकी समस्याएँ रचना की आवश्यकता के लिए ही नहीं होती हैं बल्कि स्त्री पीड़ा का प्रकटीकरण के साथ समाधान का मार्ग भी तलाशती है। पुष्पपाल सिंह के शब्दों में "नारी की अस्मिता के लिए अधुन्किक सामाजिक परिवेश में जो लेखिकाएँ अपनी कलम से संघर्ष कर रही हैं, उनमें मृणाल पांडे का नाम अग्रणी है।"[1] मृणाल पांडेय सही मायने में सुसंगत स्त्रीवादी लेखिका भी हैं, जो भारतीय स्त्री की ठोस परिस्थितियों की तमाम जटिलताओं में जीती है। उन्होंने स्त्री की समस्याओं को उसके कर्म, श्रम, भूमिका तथा सामाजिक संबंधों से जोड़ा है। स्त्री की समस्याओं के अतिरिक्त पत्रकारिता जगत की विडंबनाओं को भी प्रदर्शित करती है।

मृणाल पाण्डे के प्रकाशित उपन्यास :-

1. विरुद्ध (1979), 2. पटरंग पुराण (1983), 3. देवी (1999), 4. रास्तों पर भटकते हुए (2000)

कहानी संग्रह :-

1. दरम्यान (1977), 2. शब्दभेदी (1980), 3. एक नीच ट्रेजिडी (1981), 4. एक स्त्री का विदागीत (1985), 5. पानी की एकबात थी (1990), 6. बचूली चौकीदारिन की कढ़ी (1990), 7. चार दिन की जवानी तेरी।

मृणाल पांडे ने नाटक लेखन में भी समान लेखनी चलाई है-

1. मौजूदा हालात को देखते हुए, 2. जो राम रचि राखा, 3. आदमी जो मछुआरा नहीं था,
4. चोर निकल कर भागा, 5. काजर की कोठरी (नाट्य रूपांतरण)

मृणाल पांडे ने नाटक, उपन्यास, कहानी के अतिरिक्त स्त्री विमर्श की रचना भी है–

1. परिधि पर स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक (निबंध)

अंग्रेजी में लिखी गयी रचनाएँ –

1. द सब्जेक्ट इज वीमेन (महिला विषयक लेखों लेखों का संकलन), 2. द डॉक्टर्स (उपन्यास)

मृणाल पाण्डे ने स्त्री की सभी समस्याओं को उभारने के साथ नारी के अंतर्मन को पहचानने का भी प्रयत्न किया है। उनके साहित्य में स्त्री के संघर्ष का यथार्थ चित्रण है, साथ ही स्त्री की कोमल भावना का आभास भी उनकी कृतियों में मिलता है। पुष्पपाल सिंह के अनुसार– "मृणाल पांडे सजग कथा लेखिका हैं। नारी के व्यक्तित्व स्वातंर्त्य और उससे सम्बंधित अनेक प्रश्न उनकी कहानियों के प्रमुख कथ्य है।"[2] चाहे वह आधुनिक जीवन–स्थितियों पर लिख रही हों और चाहे कथा अल्मोड़ा के पारिवारिक जीवन पर हो, स्त्री का व्यक्तित्व स्वातंर्त्य उनके कथाकार की प्रमुख चिंता है। मृणाल पाण्डे स्त्री सबलीकरण को अपनी रचनाओं में दर्शाती हैं। उनकी व्याख्या का आधार ठोस आकंड़ों और तथ्यों घटनाओं राजनीतिक परिदृश्य को लेकर होता है, इनमें गहरी विश्लेषण क्षमता है, तीखी टिप्पणी करने के लिए वे पहले से ही विख्यात हैं। उनके कॉलम पढ़ने योग्य होते हैं। लेखिका स्त्री के अबलाकरण के रहस्यों को खोलकर स्त्री सबलीकरण का मार्ग दर्शाती है। सही मायने में स्त्री के जीवन की वास्तविक समस्याओं को यथार्थ मंच पर प्रदर्शित करना तथा उसके समाधान के लिए संभव प्रयत्नों को दर्शाने में मृणाल पांडे की उल्लेखनीय भूमिका है। सुधीर पचौरी के अनुसार– "उन्होंने स्त्री की समस्यायों को उसके कर्म, श्रम, भूमिका और सामाजिक संबंधों से जोड़ा है। उनके लिए स्त्री–प्रश्न एक साथ ही ठोस आर्थिक, राजनितिक और सामाजिक प्रश्न हैं।"[3] वह स्त्री की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक भेदभावपूर्ण स्थिति को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पैमाने में मापती हैं।

संदर्भ :–

1. पुष्पपाल सिंह – समकालीन कहानी रचना मुद्रा, पृ.सं. – 208
2. पुष्पपाल सिंह – समकालीन कहानी रचना मुद्रा, पृ.सं. – 20
3. सुधीश पचौरी – अंतर यथार्थवाद, पृ.सं. – 283

मो.नं. 9908590712

rpushpalatha369@gmail.com

sontakke.sainath@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037 SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक पृष्ठ : 43-47

राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा

सहदेव कुमार
शोधार्थी, डिपार्टमेन्ट ऑफ़ इकोनॉमिक्स, राधागोविंद यूनिवर्सिटी, रामगढ (झारखण्ड)

प्रस्तावना :-

भारत लगभग दो सौ वर्षो की ब्रिटिश दासता के उपरान्त प्रबल स्वतंत्रता आन्दोलन के फलस्वरूप 1947 ई० को स्वतंत्र हुआ। भारत प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न देश है। लगभग दो सौ वर्षो की गुलमी में भारत को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में कमजोर किया गया। एक समय भारत सोने की चिड़िया कहलाती थी क्योंकि यह प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण है। आजादी के बाद भारत को बहुत सारी निर्मित वस्तुएँ विदेशों से आयात करनी पड़ती थी।

भारत में व्याप्त भिन्न–भिन्न समस्याओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा प्रणाली को पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। 1948 में डॉ० राधाकृष्ण की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग, 1952 में डॉ. लक्ष्मण स्वामी महालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1964 में डॉ० दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन शिक्षा से संबंधित समस्याओं का अध्ययन एवं उसके समाधान प्रस्तुत करने के लिए किया गया। सन् 1968 तथा सन् 1986 में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा सन् 1979 में तैयार की गई ड्राफ्ट शिक्षा नीति, भारतीय शिक्षा के लिवास को मजबूती दी। सन् 1986 एवं सन् 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लिए विशेष कार्यक्रम भी तैयार किये गये।

जैसे–जैसे शिक्षा जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास तेज हुआ देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण संबंधी समस्याओं का समाधान होता गया। आज हम भारत के आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं। पिछले 75 वर्षो में भारत में विकास दर 6 प्रतिशत से 7 प्रतिशत के बीच रही है। शिक्षा, उद्योग, चिकित्सा, विद्युत, संचार परिवरहन कृषि एवं सेवा क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुआ है। वर्त्तमान में भारत की जनसंख्या करीब 141 करोड़ है। जिसमें 29.5 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी गरीबी रेखा के नीचे है। भारत में बेरोजगारी दर 7.45 प्रतिशत है। इस क्षेत्र में आने वाली जनसंख्या अपने जीवन निर्वाहन के लिए कृषि एवं उससे संबंधित कार्यों पर आश्रित रहते हैं। अतः उनका जीवन स्तर निम्न है।

1. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948–49 (राधाकृष्णन आयोग)

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) की नियुक्ति 4 नवम्बर 1948 को डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में की गयी थी।

इस आयोग के उद्देश्य थे :–[1]

1. भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थिति की समीक्षा करना।
2. सुधार और विस्तार के सुझाव देना।
3. देश की वर्तमान और भविष्य की ज़रूरतों के अनुरूप सुझाव देना।

आयोग के कार्य :–

1. विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार करने एवं शिक्षण स्तर को उच्च बनाने के लिए विश्वविद्यालयों को सलाह देना।
2. विश्वविद्यालयों को अपने कोष से दी जाने वाली धन राशि का वितरण करना तथा इस संबंध में अपनी नीति का निर्धारण करना।
3. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना एवं प्रचलित विश्वविद्यालयों के कार्य क्षेत्र की वृद्धि के बारे में पूछे जाने पर अपना मत प्रकट करना।
4. भारत सरकार एवं विश्वविद्यालयों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देना तथा उनकी शंकाओं का समाधान करना।
5. विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थितियों की जांच करना और केंद्रीय सरकार द्वारा उनको सहायता अनुदान में दी जाने वाली धनराशि के संबंध में सुझाव देना।
6. विश्वविद्यालय शिक्षा के विस्तार एवं विकास से संबंधित आवश्यक कार्यों को पूरा करना।
7. विश्वविद्यालयों से उनकी परीक्षाओं पाठ्यक्रमों अनुसंधान कार्यों आदि के संबंध में सूचना प्राप्त करना।
8. विश्वविद्यालयों के लिए उपयुक्त समझी जाने वाली सूचनाओं को भारत तथा विदेशों से एकत्रित करके विश्वविद्यालयों को भेजना।
9. विश्वविद्यालय तथा विविध सेवाओं के लिए प्रदान की गई उपाधियों के संबंध में भारत सरकार तथा राज्य सरकारों को अपनी सलाह देना।

2. माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन)
1952-53 (Secondary Education Commission)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने सबसे पहले 1948 में विश्वविद्यालय आयोग (राधाकृष्णन कमीशन) का गठन किया। भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की समीक्षा करने और उसका स्तर ऊंचा उठाने के लिए सुझाव देने के लिए ताराचंद्र समिति का निर्माण किया। इस समिति ने भी अपनी रिपोर्ट 1949 में प्रस्तुत की।[2]

सरकार ने 23 सितंबर, 1952 को मद्रास विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ० लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में "माध्यमिक शिक्षा आयोग" का गठन किया। इस आयोग को अध्यक्ष के नाम पर मुदालियर आयोग (Mudaliar Commission) भी कहते हैं। इस आयोग के सदस्य में डॉ० के० एल० श्रीमाली, श्री के० जी० सेयदेन, श्रीमती हंसा मेहता, श्री जॉन क्राइस्ट और श्री केनथ रस्ट विलियम्स के नाम शामिल हैं।

आयोग के निर्माण के उद्देश्य एवं कार्यक्षेत्र :[2]

भारत के सभी राज्यो में माध्यमिक स्तर पर छात्र अनुशासन की समीक्षा करना और उसमें सुधार के लिए सुझाव देना।

1. भारत के सभी राज्यो की माध्यमिक शिक्षा के प्रशासन एवं संगठन का अध्ययन करना और उसमें सुधार हेतु सुझाव देना।
2. भारत के सभी राज्यो में माध्यमिक शिक्षको के वेतन और सेवाशर्तों का अध्ययन करना एवं उनमे सुधार हेतु अपने सुझाव देना।
3. भारत मे माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन करना और उनके समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।
4. भारत में माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति का अध्ययन करना एवं उनमें सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।
5. भारत के माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षा स्तर का अध्ययन करना और उसमें सुधार हेतु सुझाव देना।
6. भारत में माध्यमिक शिक्षा की परीक्षा प्रणाली का अध्ययन करना एवं उसमें सुधार हेतु सुझाव देना।
7. भारत के माध्यमिक शिक्षक के स्तर का अध्ययन करना एवं छात्रों की स्थिति का अध्ययन कर उसमें सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

3. भारतीय शिक्षा आयोग, 1964–66 (कोठारी आयोग)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग ने 2 अक्टूबर, 1964 को अपना कार्य शुरू किया। इसमें 16 सदस्य शामिल थे, जिनमें 11 भारतीय और 5 विदेशी विशेषज्ञ थे। इसके अलावा, आयोग को शैक्षिक और वैज्ञानिक क्षेत्र में कई अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्ञात सलाहकारों के साथ चर्चा का लाभ मिला।

आयोग की रिपोर्ट की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थीं:[3]

1. कार्य–अनुभव का परिचय, जिसमें शारीरिक कार्य, उत्पादन अनुभव आदि शामिल हैं।
2. शिक्षा के कमोबेश सभी स्तरों पर सामान्य शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में सामाजिक सेवा।
3. नैतिक शिक्षा और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना पैदा करने पर जोर।
4. स्कूलों में युवाओं को स्कूल के काम और जीवन की दुनिया में स्थानांतरित करने की सुविधा प्रदान करने में अपनी जिम्मेदारी को पहचानना चाहिए।
5. माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण।
6. उन्नत अध्ययन केंद्रों को मजबूत करना और कम संख्या में प्रमुख विश्वविद्यालयों की स्थापना करना, जिनका लक्ष्य उच्चतम अंतरराष्ट्रीय मानकों को प्राप्त करना होगा।
7. स्कूलों के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण और गुणवत्ता पर विशेष जोर।
8. शैक्षिक पुनर्निर्माण की योजना में कृषि शिक्षा और कृषि एवं संबद्ध विज्ञानों में अनुसंधान को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
9. कृषि विज्ञान में उन्नत अध्ययन और अनुसंधान के लिए उचित अनुपात में प्रतिभा को आकर्षित करने के लिए ऊर्जावान और कल्पनाशील कदमों की आवश्यकता है।
10. सभी चरणों और सभी क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण या गति–निर्धारक संस्थानों का विकास।

4. भारतीय शिक्षा आयोग, 1882–83 (हण्टर कमीशन)

सन 1880 में लार्ड रिपन को भारत का गवर्नर–जनरल मनोनीत किया गया था। उस समय उन्होने भारतीय शिक्षा के विषय में (1882 में) एक कमीशन गठित किया जिसे "भारतीय शिक्षा आयोग" कहा गया। विलियम हंटर की अध्यक्षता में आयोग का गठन होने के कारण इसका नाम हण्टर कमीशन पड़ा।

प्रमुख बातें:[4]

1. प्राथमिक शिक्षा व्यवहारिक हो।
2. प्राथमिक शिक्षा देशी भाषाओं में हो।
3. शैक्षिक रूप से पिछड़े इलाकों में शिक्षा विभाग स्थापित हो।
4. धार्मिक शिक्षा को प्रोत्साहन न दिया जाए।
5. बालिकाओं के लिए सरल पाठ्यक्रम व निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था हो।
6. अनुदान सहायता छात्र–शिक्षक की संख्या व आवश्यकता के अनुपात में दिया जाए।
7. देशी शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन न करके पूर्ववत चलने दिया जाए।

5. नई शिक्षा निति 2020

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने देश में स्कूली और उच्च शिक्षा प्रणालियों को सुधारने हेतु 2020 राष्ट्रीय शिक्षा नीति का गठन किया।

उद्देश्य:[5]

नई नीति का उद्देश्य 2030 तक स्कूली शिक्षा में 100 प्रतिशत जीईआर, Gross Enrolment Ratio (GER) के साथ पूर्व–विद्यालय से माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य।

1. एनईपी (NEP) 2020 स्कूल से दूर रह रहे 2 करोड़ बच्चों को फिर से मुख्य धारा में लाएगा।
2. 12 साल की स्कूली शिक्षा और 3 साल की आंगनवाड़ी/प्री–स्कूलिंग के साथ नए 5 + 3 + 3 + 4 स्कूली पाठ्यक्रम।
3. पढ़ने–लिखने और गणना करने की बुनियादी योग्यता पर ज़ोर, स्कूलों में शैक्षणिक धाराओं, पाठ्येतर गतिविधियों और व्यावसायिक शिक्षा के बीच खास अंतर नहीं।
4. इंटर्नशिप के साथ कक्षा 6 से व्यावसायिक शिक्षा शुरू।
5. कम से कम 5 वीं कक्षा तक मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाई।
6. समग्र विकास कार्य के साथ मूल्यांकन प्रक्रिया में पूरी तरह सुधार, सीखने की प्रक्रिया में छात्रों की प्रगति पर पूरी नज़र रखना।
7. उच्च शिक्षा में जीईआर को 2035 तक 50 प्रतिशत तक बढ़ाया जाना; उच्च शिक्षा में 3.5 करोड़ नई सीटें जोड़ी जाएंगी।
8. उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में विषयों की विविधता होगी।
9. उपयुक्त प्रमाणीकरण के साथ पाठ्यक्रम के बीच में नामांकन/निकास की अनुमति होगी।
10. ट्रांसफर ऑफ क्रेडिट की सुविधा के लिए अकादमिक बैंक ऑफ क्रेडिट की स्थापना की जाएगी।
11. ठोस अनुसंधान संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन की स्थापना की जाएगी।
12. उच्च शिक्षा के आसान मगर सख्त विनियमन, विभिन्न कार्यों के लिए चार अलग–अलग कामों पर एक

नियामक होगा।

13. महाविद्यालयों को 15 वर्षों में चरणबद्ध स्वायत्तता के साथ संबद्धता प्रणाली पूरी की जाएगी।
14. एनईपी 2020 में जरूरत के हिसाब से प्रौद्योगिकी के उपयोग पर ज़ोर, राष्ट्रीय शिक्षा प्रौद्योगिकी मंच की स्थापना की जाएगी।
15. एनईपी 2020 में जेंडर इंक्लूजन फंड और वंचित इलाकों तथा समूहों के लिए विशेष शिक्षा क्षेत्र की स्थापना पर ज़ोर।
16. नई शिक्षा नीति स्कूली और उच्च शिक्षा दोनों में बहुभाषावाद को बढ़ावा देती है; पाली, फारसी और प्राकृत के लिए राष्ट्रीय संस्थान, भारतीय अनुवाद और व्याख्या संस्थान की स्थापना की जाएगी।

सन्दर्भ सूची :–

1. https://www.educationforallinindia.com/1949%20Report%20of%20the%20University%20Education%20Commission.pdf
2. https://sstmaster.com/madhyamik&shiksha&aayog/
3. http://mohitpuri.pbworks.com/w/page/11465802/Indian%20Education%20Commission%201964&66 PB Works. 2015. Retrieved 20 June 2015.
4. https://www.kkreducation.com/2021/07/hunter&commission.html
5. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx\PRID/1642109

Email : sahdeokumar7@gmail.com

Mob : 7667671832

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 48-50

गणित और साहित्य इंटरेक्शन : एक विहंगम दृश्य

डॉ. अबुल बसर, गणित विभाग, मिल्लत कॉलेज

(एल.एन. मिथिला विश्वविद्यालय की एक घटक इकाई), बीबी पाकर, लहेरियासराय, दरभंगा, बिहार, भारत।

तथा

शाइस्ता

रुदौली, वार्ड नंबर 11, बाजपट्टी, पुपरी, सीतामढी, बिहार–843 333

उद्देश्य :–

इस अध्ययन में विशिष्ट भाषा और अकादमिक से जुड़े निहितार्थों की प्रकृति और सुंदरता को बेहतर ढंग से समझने के लिए गणित और भाषा के बीच संबंध का एक सर्वे प्रयास किया गया है।

गणित और साहित्य इंटरेक्शन :–

जिस तरह साहित्य की दुनिया में गणित के कई अनुयायियों हैं, उसी तरह गणित के क्षेत्र में भी साहित्य के कई अनुयायियों हैं, मोटी ईंटों के अलगाव और कृत्रिम रूप से निर्मित दीवार के बावजूद जो दो विषयों के विरुद्ध खड़ी दिखती है। पहली नज़र में, गणित और साहित्य में विषयों के रूप में कोई पारस्परिकता नहीं है, फिर भी कुछ रहस्यमय चुंबकीय शक्ति उन्हें एक साथ बांधती है।

गणित को आम तौर पर विज्ञान के शिष्य के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, लेकिन यह केवल इतना ही नहीं है, इसमें कला, साहित्य और अन्य विषयों को भी शामिल किया गया है। गणित, भौतिक विज्ञान, जैविक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में योगदान देता है और इन सभी के साथ इसकी बातचीत से इसे मजबूत किया गया है। गणितीय खोजें और आविष्कार, भौतिक क्षेत्र में उनकी प्रयोज्यता या उपयोगिता की परवाह किए बिना किए जाते हैं। गणित पूरी तरह से स्वयं के लिए विकसित होता है, इस क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान उन सिद्धांतों का है जो तर्क की सुंदरता को महत्व देते हैं। अपने अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए बनाए गए सिद्धांत में प्राकृतिक सौंदर्य का अभाव होता है।

किसी प्रमेय की आंतरिक शोभा को शब्दों में व्यक्त करना पूरी तरह संभव नहीं है। यह अत्यधिक जटिल और अमूर्त है जिसे केवल संगीत के एक आदर्श मास्टर के समान अभिव्यक्त किया जा सकता है जिसमें प्रत्येक नोट अपूरणीय है या एक हाइकु के समान है जिससे किसी भी शब्दांश के साथ छेड़छाड़ नहीं की जा सकती है। सुंदरता उत्कृष्ट तनाव की तरह है जो ललित कला के काम के पहलुओं को एक नाजुक शांति के साथ एक साथ रखती है जो चारों ओर की घटनाओं से इसकी पूर्णता को मजबूत करती है। इसलिए वह चुंबकीय शक्ति जो कला को और, साहित्य को – गणित की ओर खींचती है, अपनी पूरी तरह से शुद्ध तार्किक प्रक्रिया में

गरिमामय सौंदर्य है।

गणित एक सब कुछ या ऐसी सामान सामग्री आदि कुछ भी नहीं है जो व्यापार की तरह बाजार की वस्तु है। किसी भी समझौते की कभी अनुमति नहीं दी जाती या उसे हल्के में नहीं लिया जाता। पूर्ण सिद्धांत अस्पष्टता से मुक्त होना चाहिए। पूर्ण के अलावा कुछ भी नहीं और इसलिए सुंदर है। हालाँकि, साहित्य में यह महत्वपूर्ण नहीं है कि हर चीज़ की व्याख्या की जाए। पाठक की कल्पना के लिए जगह खुली छोड़ दी गई है। इससे यह संकेत मिल सकता है कि साहित्य अधिक लचीला है, गणित की तुलना में, इससे निपटना किसी भी तरह आसान है।

गणितीय सौंदर्य, गणित की सरलता, शुद्धता, अमूर्तता या क्रमबद्धता से प्राप्त सौंदर्य आनंद है। गणितज्ञ प्रमाण की एक विशेष रूप से मनभावन विधि को सुरुचिपूर्ण बताते हैं। गणितज्ञ, गणित का वर्णन करके या गणित के कुछ पहलू को सुंदर बताकर इन आनंददायक इंद्रियों को व्यक्त कर सकते हैं या गणित को एक ललित कला के रूप में या एक रचनात्मक गतिविधि के रूप में व्यक्त कर सकते हैं।

लेखक और गणितज्ञ दोनों ही अनंत काल की कामना करते हैं। कोई भी गणितज्ञ, मानव जीवन की सीमा के भावनात्मक निहितार्थ पर समय बर्बाद नहीं करेगा, लेकिन वह सत्य की अनंतता की परिकल्पना कर सकता है। जब एक गणितज्ञ, सार्वभौमिक सत्य का पता लगाना शुरू करता है, तो उसे अपनी आंतरिक अराजकता को त्यागना होगा। गणितज्ञ, संसार से ऊपर उठ जाते हैं; समय उनके लिए अप्रासंगिक है। वे अपने दिमाग को भौतिक दुनिया के मामलों की अंतरिक्ष–समय की गतिशीलता से परे एक स्थिति में अनुकूलित करते हैं। साहित्य का सार, चाहे वह किसी भी रूप में हो, स्वयं की नश्वरता का बोध है।

वह प्रमेय जिसके लिए सबसे बड़ी संख्या में विभिन्न प्रमाण खोजे गए हैं, संभवतः पाइथागोरस प्रमेय है, जिसके आज तक सैकड़ों प्रमाण प्रकाशित हो चुके हैं। गणितज्ञ अक्सर किसी परिणाम को साबित करने के लिए अलग–अलग स्वतंत्र तरीकों की तलाश करते हैं। एक अन्य प्रमेय जिसे कई अलग–अलग तरीकों से सिद्ध किया गया है वह है द्विघात पारस्परिकता का प्रमेय।

जो परिणाम तार्किक रूप से सही होते हैं लेकिन उनमें श्रमसाध्य गणना, अति–विस्तृत तरीके, अत्यधिक पारंपरिक दृष्टिकोण होते हैं, उन्हें आमतौर पर सुरुचिपूर्ण नहीं माना जाता है।

यूलर की पहचान (समीकरण) :– e^ip$1/0.

यह सुंदर अभिव्यक्ति पांच सबसे महत्वपूर्ण गणितीय स्थिरांकों को एक साथ जोड़ती है : ई (e), आई (i), च, 1, और 0, दो सबसे सामान्य गणितीय बाइनरी ऑपरेशन के साथ +, = द्वारा दर्शाया गया है। 2004 में फिजिक्स वर्ल्ड द्वारा आयोजित पाठकों का सर्वेक्षण, यूलर की पहचान मैक्सवेल के समीकरणों (विद्युत चुंबकत्व के) के साथ 'अब तक का सबसे बड़ा समीकरण' के रूप में जुड़ा हुआ है।

स्वर्णिम अनुपात एक प्राचीन भारतीय गणितीय सूत्र से है। लियोनार्डो फिबोनाची ने इस अवधारणा को यूरोप में प्रस्तुत किया और पश्चिमी समाज ने इसका नाम उनके नाम पर रखा। स्वर्णिम अनुपात एक रेखा खंड का अनुपात है जिसे अलग–अलग लंबाई के दो टुकड़ों में काटा जाता है ताकि पूरे खंड का लंबे खंड से अनुपात लंबे खंड और छोटे खंड के अनुपात के बराबर हो। इस संख्या की उत्पत्ति का पता यूक्लिड से लगाया जा सकता है, जिन्होंने इसे तत्वों में 'चरम और औसत अनुपात' के रूप में उल्लेख किया है। वर्तमान बीजगणित के

संदर्भ में, छोटे खंड की लंबाई एक इकाई और बड़े खंड की लंबाई x इकाई होने से समीकरण (x + 1)/x = x/1 बनता है; इसे द्विघात समीकरण x'2–x–1=0 बनाने के लिए पुनर्व्यवस्थित किया जा सकता है, जिसके लिए सकारात्मक समाधान x = (1 +v5)/2, सुनहरा अनुपात है।

गणित में भाषा का प्रयोग साधारण भाषण से भिन्न होता है। गणित की भाषा सीखने में, सामान्य विषयों का उपयोग करते है। गणितीय भाषा, भावनात्मक सामग्री से रहित है। औपचारिक गणितीय प्रवचन से भावनाओं की अनुपस्थिति या अनौपचारिक में इसका परिचय प्रवचन से विद्यार्थियों को कोई कठिनाई नहीं होती। साधारण भाषण अस्पष्टता, संकेत, छुपे एजेंडे से भरा होता है, और अनकही धारणाएँ। सामान्य भाषण में अस्पष्टताओं को हल करने के लिए अनुकूलित होना, अनिवार्य रूप से, गलतफहमी पैदा करने के स्कोप को समाप्त करता है।

निष्कर्ष :–

गणित को समझने के लिए तार्किक भाषा का उपयोग करना पड़ता है। अध्ययन के दो क्षेत्र जो गणित और भाषा विज्ञान के बीच ओवरलैप होते हैं, वे हैं प्रस्तावात्मक कलन और विधेय तर्क। वे दोनों 'भाषाएँ' हैं जिनका उपयोग भाषाविद् और गणितज्ञ सिद्धांत बनाने के लिए करते हैं। वे अधिकांश प्रोग्रामिंग भाषाओं का आधार भी हैं।

भाषा के लिए उपयोग किया जाने वाला मस्तिष्क का भाग बाएं गोलार्द्ध में है जिसे ब्रोका क्षेत्र कहा जाता है। मस्तिष्क का यह भाग वाणी और भाषा अभिव्यक्ति के लिए है। गणनाओं को हल करने में उपयोग किया जाने वाला मस्तिष्क, मस्तिष्क के दोनों तरफः दाएं और बाएं गोलार्द्धों में पाया जाता है – जिसे इंटरपैरिएटल सल्कस कहा जाता है। यह अनुभाग गणित की समस्याओं को हल करने की क्षमता के लिए है।

कोई व्यक्ति गणित में अच्छा है लेकिन भाषाओं में खराब है, तो इसमें कोई संबंध नहीं है क्योंकि दोनों मस्तिष्क के विभिन्न केंद्रों द्वारा नियंत्रित होते हैं। समस्या समाधान में कोई व्यक्ति किस हद तक किसी एक या दोनों क्षेत्रों में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकता है ये कारक आनुवंशिक हो सकते हैं या उन पाठ्यक्रम क्षेत्रों से जुड़ाव पर आधारित हो सकते हैं। कभी–कभी, किसी विशेष चीज़ के प्रति जुनून अधिक परिणाम दे सकता है। आनुवंशिक रूप से, कोई व्यक्ति किसी चीज़ में स्वाभाविक रूप से अच्छा हो सकता है, जबकि अन्य लोग उसी चीज़ में संघर्ष करते हैं, और फिर बेहतर बनने के लिए अतिरिक्त प्रयास करते हैं । मस्तिष्क के केंद्रों को प्रभावित करने वाली स्थितियों को छोड़कर, दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है, लेकिन, वास्तव में, गणित प्रकृति की एक सुंदर ध्वनि और भाषा है।

संदर्भ :–

1. रॉबर्ट ई. जैमिसन, की भाषा सीखना गणित, खंड 4, संख्या 1 : 2000.
2. गैलाघेर, जेम्स (13 फरवरी 2014)। 'गणित' मस्तिष्क गणित को सुंदरता के रूप में क्यों देखता है'।
3. बीबीसी समाचार ऑनलाइन।
4. क्रीज़, 2004
5. O'Connor, John J. (Robertson, Edmund F. (2001). "The Golden Ratio". MacTutor History of Mathematics archive.

Dr. Abul Basar, Guest Teacher, Department of Mathematics, Millat College,
A Constituent Unit of L.N. Mithila University, Darbhanga, Bihar
Contact No : 8800413593, Email #basar.jmi@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 51-53

'श्रीमद्वाल्मीकि रामायण' में वर्णित माता सीता जी का आदर्श चरित्र

डॉ. कमलेश कुमार थापक
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्ष, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सतना, मध्य प्रदेश।
योगेश स्वरूप ब्रह्मचारी
शोध छात्र, संस्कृत विभाग, कला संकाय, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सतना, मध्य प्रदेश।

सारांश :-

संस्कृत साहित्य में सत्य को बताने वाली एवं जीवन का अर्थ समझाने एवं कर्म की शिक्षा देने वाली दो धारायें है—एक वैदिक साहित्य जिसका आदि ग्रन्थ ऋग्वेद है, एवं दूसरी लौकिक साहित्य जिसका आदि काव्य महर्षि वाल्मीकि का 'रामायण' महाकाव्य है। जो काव्य साहित्य का आधार है। इस आदि महाकाव्य की महानायिका भगवान राम की ह्दयांशिका भगवती माता सीता जी है। जो कि मुग्धा नायिका है। महर्षि वाल्मीकि ने माता सीता के आदर्श जीवन चरित्र के माध्यम से जीवन दर्शन की व्यवहारिक व्याख्या की है जो नारी जीवन के लिये अनुकरणीय है। उनके चरित्र का अनुकरण करते हुए आज की नारी अपने जीवन में आने वाली समस्त समस्याओं से निपटने मे सक्षम हो सकती है।

मुख्य शब्द :- माता सीता का चरित्र, गुण, पतिव्रत, महर्षि वाल्मीकि, इत्यादि।

'श्री मद्वाल्मीकि रामायण' में माता सीता के चरित्र एवं गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि स्पष्ट रुप से लिखते हैं –

'कृत्स्नं रामायण काव्यं सीतायाश्चरितं महत्।। 1/4/7, (1)

अर्थात् – कि वाल्मीकि रामायण सीता जी के महान जीवन चरित्र के व्यवहार दर्शन का महाकाव्य है बिना सीता जी के चरित्र के रामकथा अपूर्ण है। महर्षि ने माता सीता के उन सभी गुणों का वर्णन किया है जैसे— सौन्दर्य, लावण्यता, ह्रदय की कोमलता, बुद्धिमत्ता, पातिव्रत्य सौमनस्यता, धैर्य, सहनशीलता (सीता जी ने क्या कुछ नही सहा) आदि गुणों से सम्पन्न थी। इन गुणों के आधार पर सीता जी निरुपमा थी। उनके समान न कोई हुआ है और न हो सकता है। रामायण के नारी पात्रों मे सीता जी ही सर्वाधिक, विनयशीला लज्जाशीला, सहिष्णु एवं पतिव्रत धर्म से युक्त दैदीप्यमान नारी है। सम्पूर्ण रामायण उनके साहस, धर्म आचरण, तपस्या एवं त्याग से परिपूर्ण है।

वाल्मीकि रामायण मे सीता जी की प्रशंसा करते हुये हनुमान जी ने कहा है :—

'दुष्करः कृतवान रामो होनी यदनया प्रभुः, धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति।
यदि नामः सुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत, अस्थाः कृते जगच्चापि युक्तिमित्येर्व में मतिः।।[2]

अर्थात्– ऐसी सीता के बिना जीवित रहकर राम जी ने सचमुच ही बड़ा दुष्कर कार्य किया है। इनके लिये यदि राम समुद्र–पर्यन्त पृथ्वी को पलट दें तो भी मेरी समझ में उचित ही होगा, त्रैलोक्य का राज्य सीता की एक कला के बराबर भी नहीं है।

रामायण में वर्णित सीता जी के आदर्श चरित्र की प्रमुख विशिष्टतायें निम्नलिखित है :–

1. **निरूपम सौन्दर्य :–** सीता जी अनुपम सौन्दर्य से युक्त है। सीता जी के रूप लावण्य का वर्णन करते हुये महर्षि ने लिखा है –

कुवेलमास्थे कस्योश्च पल्लवं जपासुमञ्चापि कपोल मण्डले।
रदच्छेदे बिम्बफलं दधद्विधिश्चकार सीतां किमरण्यदेवताम्।।[3]

2. **श्रेष्ठ पतिव्रता नारी :–** सीता जी राम जी के द्वितीय प्राण समान है। सीता जी ने पतिव्रत धर्म को सम्पूर्ण रूप से निभाया। जब भगवान राम को वन जाने का आदेश प्राप्त होता है तो सीता जी भी पति के साथ वन जाने को तैयार हो जाती है, जिस पर भगवान राम उनको वन की समस्यायें एवं पशु–पक्षियों के भय को बताते है लेकिन सीता जी भगवान राम को समझाकर कहती हैं –

'इह लोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महामते, अद्भिर्दता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा।।
एवमस्मात्स्वकां नारी सुवृत्तां हि पतिव्रताम, नाभिरोचयसे नेतु त्वं मां केनेह हेतुना।।[4]
भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समान सुखदुःखिनीम्।'

अर्थात् – कि यह सच है – इस लोक में पिता द्वारा कन्या जलसे संकल्प करके जिस पुरुष को दी जाती है वह मृत्यु के पश्चात परलोक में भी उसी की स्त्री होती है। वह न इस लोक में, न परलोक मे अपने पति से अलग की जा सकती है। इसलिये मैं तो आपकी धर्मपत्नी हूँ, उत्तम धर्म का पालन करने वाली और पतिव्रता हूँ तो फिर आप मुझे अपने साथ ले चलिये। तब भगवान राम ने सीता जी को साथ मे वन चलने की अनुमति प्रदान की। सम्पूर्ण रामायण में भगवती सीता ने अपने पतिव्रत धर्म का पग–पग में पालन किया और एक उच्च आदर्श स्थापित किया।

3. **धर्मपरायण :–** सदाचारिणी माता सीता धर्म के मार्ग मे हमेशा चली। उनकी धर्मपरायणता न तो वन में डगमगाई, न ही रावण के ऐश्वर्य, बल, पराक्रम एवं विकरालता के सम्मुख नतमस्तक हुई। नारी मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हुये उन्होंने नारी धर्म का पालन किया। माता सीता भगवान राम की सदैव धर्माचारिणी रही। राज महल हो या वनवास हर परिस्थिति में उन्होंने अपने धर्म का पालन किया। जब भगवान राम ने गर्भावस्था काल में लोकोपवादों के कारण सीता जी को वन जाने को कहा तो माता सीता ने बिना कोई प्रश्न पुछे वन जाने को स्वीकार कर लिया और अपने पतिव्रत धर्म का पालन किया।

माता सीता का महनीय चरित्र विविध गुणों के समन्वय से सुशोभित है। माता सीता मे पति के प्रति अनन्य प्रेम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के साथ निर्दोष वात्सल्य प्रेम, माता–पिता एवं सास–ससुर के प्रति सेवाभाव, सेवकों एवं दासियों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार, नैहर एवं ससुराल में सबके साथ आदर्श प्रीति एवं सबको सम्मान देने की चेष्टा, सहृदयता, दया, करुणा से पूर्ण सीता जी दानशील, अतिथि सत्कार में तत्पर, ऋषि एवं देव पूजन में सदैव

ही संलग्न रहने वाली है।

वाल्मीकि रामायण में माता सीता के हर रूप का वर्णन किया गया है, जैसे बालकाण्ड में माता सीता के उदयकारिणी रूप का दर्शन होता है एवं विवाह तक संपूर्ण आकर्षण प्रदर्शित होता है एवं उनके सौन्दर्य, लावण्य रूप का विशद वर्णन होता है।

अयोध्या काण्ड से अरण्य काण्ड तक वह स्थितिकारिणी हैं, जिसमें वह करुणा– कृपा, दया की मूर्ति हैं। वह राक्षसों का नाश करने हेतु कालरात्रि बन कर लंका में प्रवेश करतीं है और सम्पूर्ण राक्षस कुल का विनाश करके वापस आती है।

उत्तर काण्ड में माता सीता का मातृ रूप प्रतिबिंबित या प्रदर्शित होता है। जहाँ पर वह लव–कुश जैसे वीर पुत्रों को जन्म देती है, और उनको धीर–वीर एवं स्वालंबन की शिक्षा देती है। उनका पालन–पोषण वात्सल्य एवं स्नेह से करती हैं।

निष्कर्ष :–

वाल्मीकि रामायण की सीता आदर्श पुत्री, पतिव्रता पत्नी, सुलक्षणा पुत्रवधु, सुतवत्सला माँ, दयापूर्ण महारानी की भूमिका में दिखाई देती है। इसलिये माता सीता का आदर्श चरित्र वंदनीय एवं अनुकरणीय है। माता सीता सनातन धर्म की एक आदर्श एवं पूज्यनीय नारी हैं। उनके जीवन चरित्र का अनुसरण करके कोई भी नारी अपने परिवार एवं समाज में सम्मानीय स्थान प्राप्त कर सकती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. वा. रामायण बालकाण्ड।
2. वा.रामायण सु. काण्ड।
3. वा. रामायण।
4. वा.रामायण अयोध्या काण्ड।
5. उत्तर रामचरित – भवभूति।
6. प्रतिमानाटक –भास।
7. वा.रामायण उत्तर काण्ड
8. जानकी जीवनम् – डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्रा।
9. रामचरित मानस– गोस्वामी तुलसीदास जी।
10. रघुवंश – कालीदास।

पता– स्वर्गाश्रम पीलीकोठी चित्रकूट सतना मध्य प्रदेश (पिन कोड – 485334)

मोबाइल नंबर– 7905555940,

Email id - yswaroop10@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 54-59

भारत के लिए "रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन" विषय का महत्व एवं जरूरत

डॉ. सुभाष चन्द्र मौर्य
(एम.ए., नेट, पी—एच.डी., पी.डी.एफ.)
असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन (सैन्य विज्ञान) विभाग
रानी सुषमा देवी महिला पी0जी0 कालेज, अमेठी, उ.प्र. (स्ववित्तपोषित कालेज)

वर्तमान समय में हमारे देश में "रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन" विषय को महत्व कम दिया जा रहा है, जो कि सर्वथा अनुचित है। इसका कारण यह है कि शायद इस विषय के महत्व को गम्भीरता से सोचा नहीं गया होगा। यदि हम अपनी सुरक्षा को अपना प्राथमिक हित मानते हैं, तो राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे विषय को दूसरे विषयों से इतना कम महत्व क्यों दे रहे हैं कि, यह विषय उपेक्षित सा हो गया है। इस विषय का महत्व प्राथमिक से लेकर उच्चतर शिक्षा तक चलने वाले किसी अन्य विषय से कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि, सुरक्षा और अपने अस्तित्व की रक्षा सभी (व्यक्ति अथवा राष्ट्र) का प्राथमिक कर्तव्य होता है और इसे प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्राध्यक्ष भली—भांति जानता और समझता भी है।

रक्षा और सुरक्षा के महत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है कि भारत की सर्वोच्च एवं महत्वपूर्ण सिविल सर्विसों (आई0ए0एस0, आई0पी0एस0 एवं पी0सी0एस0 आदि) में लिखित परीक्षा के बाद साक्षात्कार मात्र कुछ ही समय (लगभग 1 या 2 घंटे) का होता है तथा सीटें खाली बचने की स्थिति में मैरिट गिराकर भी भर्ती पूर्ण कर ली जाती हैं, जबकि भारतीय सशस्त्र सेना में तीनों सेनाओं (जल, थल एवं वायु) के अधिकारियों की भर्ती संघ लोक सेवा आयोग (यू0पी0एस0सी0) द्वारा आयोजित नेशनल डिफेंस एकेडमी (एन0डी0ए0) एवं कम्बाइंड डिफेंस सर्विस (सी0डी0एस0) की परीक्षाओं द्वारा होती है। इस परीक्षा में सफल उम्मीद्वारों को साक्षात्कार भी देना पड़ता है। यह साक्षात्कार एक ही कम्पाउंड में रहकर पूरे एक सप्ताह तक चलता रहता है। इसमें सफल अभ्यर्थियों को सेना में कमीशण्ड आफीसर की सबसे छोटी पोस्ट "लेफ्टिनेंट" (थल सेना), "फ्लाइंग आफीसर" (वायु सेना) तथा "सब—लेफ्टिनेंट" (नौसेना) की प्रदान की जाती है, और वहीं से अपनी योग्यता एवं कार्यकुशलता के बल पर सेना के सर्वोच्च पद (सेनाध्यक्ष) तक पहुँचना होता है। सैन्य अधिकारियों की सीटें खाली बचती हैं तो भी कभी मैरिट गिराकर भर्ती नहीं की जाती है, बल्कि अयोग्य को भर्ती करने की अपेक्षा सीटें अगली भर्ती हेतु खाली छोड़ दी जाती है। इसका उद्देश्य यही होता है कि, युद्ध के मैदान में एक अयोग्य सेनापति अपने गलत निर्णय के द्वारा अपने साथ अपनी सैन्य टुकड़ी एवं अपने राष्ट्र के अस्तित्व को ही खतरे में डाल देगा।

यहाँ पर रक्षा संबंधी व्यवस्था में युद्ध जैसे नाजुक मामलों के साथ मैरिट कम करके सीटें पूर्ण नहीं करते। यदि राष्ट्र की रक्षा व्यवस्था महत्वपूर्ण नहीं होती तो अन्य सिविल विभागों की तरह मैरिट गिराकर सैनिक अधिकारियों की भी सीटें पूर्ण कर ली जातीं।

यहाँ पर हम ये समझतें हैं कि एक सिविल कर्मचारी एवं अधिकारी चाहे वह कितने ही ऊंचे पद पर विद्यमान हो, उसके द्वारा लिए गए गलत निर्णय, गलत कार्यों को सुधारने का समय तो मिल सकता है लेकिन युद्ध के मैदान में लिए गए गलत निर्णय, गलत समरतंत्र, से मिलने वाले परिणाम (पराजय अथवा विनाश) से किसी भी गलती को सुधारने का मौका नहीं मिलता, बल्कि वहाँ पर गलती की स्थितियों में सेना एवं राष्ट्र दोनों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। इसीलिए राष्ट्र प्रत्येक कीमत पर अपनी रक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ रखना चाहता है। रक्षा, सुरक्षा एवं अस्तित्व की रक्षा से जुड़ा यह विषय अपने निम्नलिखित तथ्यों के कारण अपनी उपयोगिता को सिद्ध करता है–

जिस प्रकार हम इतिहास से सीख लेते हैं कि राज्यों की विभिन्न अच्छी और लाभदायक नीतियों को अपनाते हुए हम आगे बढ़ें। जिन खतरों से हम पर मुसीबते आई, उसकी जानकारी एवं बचने के तरीके जन–जन को होना चाहिए।

पूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री "विस्टन चर्चिल" ने कहा है कि "मानव जीवन का इतिहास ही युद्धों का इतिहास है और युद्ध मानव का सदा सहचर रहा है"। इतिहास से हमें यह देखने को मिला है कि, लोगों ने किसी भी अच्छी लगने वाली चीजों कों निर्मित करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उसे छीनने का प्रयास किया, चाहे वह राज्य हो या धन या महिलाएं, इन कारणों से युद्ध सदा अनिवार्य रूप से होते रहे हैं, इसीलिए हमें अपनी जनता को इतने महत्वपूर्ण विषय की जानकारी अवश्य प्रदान करना चाहिए।

जिस प्रकार अर्थशास्त्र विषय राष्ट्र के विकास में सहयोग देता है, जिसका प्रयास यही होता है कि, राष्ट्र धन–धान्य से भरा रहे, और राष्ट्र सफल भी होते हैं, लेकिन महमूद गजनवी, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली और अंग्रेजों जैसे लुटेरों ने हमारी दौलत पर अधिकार क्यों कर लिया। हम इन सभी के सामने कमजोर पड़ते गए, ऐसा इसलिए हुआ कि, हम दौलत को ही अपनी सुरक्षा मान बैठे थे। वास्तविक सुरक्षा व्यवस्था के बारे में जानकारी ही नहीं थी और आज भी हम लोग वही कर रहे हैं।

जब मानव जीवन को विकसित एवं सुरक्षित बनाए रखने के लिए राष्ट्र कितने प्रयास कर रहे हैं। विश्व में सभी निर्माण कार्य मानव जीवन को सुविधापूर्ण बनाए रखने के लिए ही तो किए जा रहे हैं। कपड़ें, दवाएं, इलेक्ट्रिक मशीने, मैडिकल मशीने, मोटरगाड़ियां, हवाई जहाज, ए0सी0, कूलर, आदि, सभी महत्वपूर्ण हैं, तो राष्ट्रीय सुरक्षा को नजरअंदाज क्यों कर रहे हैं, जबकि राष्ट्रीय सुरक्षा राष्ट्र की प्रत्येक जनता का पहला दायित्व है।

हम इस विषय में यह तो पढ़ लेते हैं कि, सुरक्षा हमारा पहला दायित्व है। वह भी व्यक्ति से अधिक राष्ट्र का। फिर भी राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को यह ज्ञान क्यों नहीं कराया जाना चाहिए। इसके लिए यह विषय जूनियर से ही प्रारम्भ कर दिया जाना चाहिए।

चीन के प्राचीन गुरिल्ला नायक "सुन्तजू" ने युद्ध की बहुत ही सुन्दर परिभाषा दी है कि "युद्ध राज्य का एक महान कार्य है, जीवन और मृत्यु का क्षेत्र है, सुरक्षा एवं विनाश का मार्ग है, इसका अध्ययन बहुत ही सावधानी

से करना चाहिए।" अर्थात लगभग सभी जन सामान्य को अपने विषय का गहन अध्ययन कराने का प्रयास करना चाहिए।

हम अपने इस विषय के द्वारा विश्व को नैतिकता का पाठ तो पढ़ा सकते हैं कि, दुनिया वालों शक्ति के नशे में मदहोश लूट और हराम की दौलत खाने वालों और उनके वंशजों का कभी भला नहीं हो सकता। उदाहरण– भारत को 17 बार तलवार और शक्ति के बल पर लूटने वाला महमूद गजनवी, और अब्दाली जैसे लुटेरों का अफगानिस्तान आज तालिबान के हाथों आपस में ही लड़कर नष्ट हो रहा है। विश्व को गुलाम बनाकर लूटने वाला विश्व विजेता रह चुका ब्रिटेन आज अपने ही गुलाम रह चुके अमेरिका के हाथों की कठपुतली बना हुआ है। तलवार के बल से मात्र अपनी इच्छा पूर्ति के लिए निरपराधों का रक्त बहाने वाले सिकंदर के राष्ट्र मैसीडोनिया का आज विश्व में नामोनिशान खतम हो गया। "इसीलिए स्वयं भी मेहनत से कमाइए, और बच्चों को मेहनत का खिलाइए"।

हम लोग अपने विद्यार्थियों को यह तो पढ़ाते हैं, कि भारतीय राजाओं के पतन, विभिन्न युद्धों में भारतीयों के पराजय एवं विदेशी आक्रमणकारियों की सफलता का एक कारण यह भी लिखा जाता है कि,– "साधारण जनता द्वारा सुरक्षा मामलों की उपेक्षा की गई"। जबकि हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि उस समय की जनता के ऊपर करों का बोझ अधिक था। जनता इस लायक नहीं थी, लेकिन आज की जनता पूर्व के मुकाबले सक्षम और पूर्ण स्वतंत्र है। आज तो इस विषय को अनिवार्य करके रक्षा और सुरक्षा संबंधी जानकारी अपनी जनता को दे सकते हैं।

हम यहाँ पर "राबर्ट मैकनमारा" के कथन की भी अनदेखी कर रहे है कि, "सुरक्षा ही विकास है, और विकास ही सुरक्षा है," आगे उन्होंने यह भी कहा है कि पर्याप्त सुरक्षा के अभाव में विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सुरक्षा और विकास प्रत्येक राष्ट्र का प्रमुख लक्ष्य होता है। यदि प्राथमिकता के तौर पर देखा जाये तो सुरक्षा के बाद ही विकास का नम्बर आता है, क्योंकि यदि सुरक्षा के अभाव में हमने विकास कर ही लिया तो, यह हमारे सुरक्षा और विकास दोनों के लिए खतरनाक होगा। यदि महमूद गजनवी भारत को लूटने में सफल हुआ तो इसका कारण यह था कि, हमारा विकास तो बहुत अधिक था, लेकिन सुरक्षा पर्याप्त नहीं थी।

जनरलों के गुरू "लिडिल हार्ट" के कथन को हमे नहीं भूलना चाहिए, कि– "यदि आप शांति चाहते हो तो युद्ध को समझो" और आज के परमाणु युग के संदर्भ में यह व्याप्त है कि, "यदि आप शांति चाहते हो तो युद्ध के लिए तैयार रहिये"। आज इस परमाणु युग में जहाँ सम्पूर्ण विश्व एवं प्रत्येक नागरिक शांति की तलाश कर रहा है, वहीं हम अपनी जनता को इस विषय की जानकारी देने के स्थान पर उसकी उपेक्षा कर रहे हैं।

वर्तमान तकनीकी युग में युद्ध मात्र सैनिकों तक ही सीमित नहीं रह गया है। आज के किसी भी युद्ध में राष्ट्र के सभी वर्गों के नागरिकों का योगदान आवश्यक है। यहाँ पर हमें जनरल "क्लेमेंसों" के इस कथन को नहीं भूलना चाहिए कि, "युद्ध एक ऐसा गम्भीर विषय है कि इसे केवल सैनिकों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है"। अर्थात युद्ध में सेना एवं नागरिकों का मनोबल युक्त योगदान आवश्यक होता है। हमें अपने विषय के माध्यम से नागरिकों को जागरूक रखना आवश्यक होगा।

आजादी के बाद पाकिस्तान और चीन जैसे राष्ट्रों ने हमे अहसास करा दिया कि विकास से अधिक सुरक्षा महत्वपूर्ण है। यदि यह कहा जाये कि सुरक्षा और विकास साथ–साथ चलने वाली प्रक्रिया है, तो यही सही है।

चीनी आक्रमण को भारत के लिए वरदान कहा जाता है। लगभग 2350 वर्ष पूर्व आचार्य चाणक्य उर्फ कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में स्पष्ट कहा है कि, "पड़ोसी राज्य पड़ोसी राज्य का मित्र नहीं हो सकता"। यदि पड़ोसी विस्तारवादी हो तो शत्रुता होने की संभावना बढ़ जाती है। यह बात आज न तो हमारे राजनेताओं को पता है न ही नीति निर्माताओं को, क्योंकि उन्होंने रक्षा और स्त्रातजिक अध्ययन विषय का अध्ययन नहीं किया है।

हमारा यह विषय हर क्षेत्र के व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास कराने में सक्षम है। चाहे वह राजनेता, सेनाध्यक्ष, किसान, मजदूर, साधारण कर्मचारी, बालक, महिलाएं आदि जो भी हों, हमारे इस विषय में पढ़ाए जाने वाले निम्न ज्ञान प्रदान करते हैं–

– कौटिल्य का "अर्थशास्त्र" और मैकियावेली की रचना "प्रिंस" सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था का ज्ञान प्रदान करता है। राष्ट्र का कोई पहलू इनकी रचनाओं से अछूता नहीं है।
– "रोमन लीजन" की युद्धकला हमें बिना थके लगातार युद्ध लड़ने की युद्धकला सिखाती है। रोमन लीजन के सैनिक अपनी विशेष चक्रीय एवं शतरंजी युद्धकला के कारण युद्ध क्षेत्र में कभी थकान का अनुभव नहीं करते थे।
– युद्ध के देवता "नेपोलियन" द्वारा स्थापित "सशस्त्र राष्ट्र राज्य" सिद्धांत के अंतर्गत "जनसेना" हमें यह ज्ञान प्रदान करती है कि, युद्धकाल में सैनिक एवं असैनिक, नौजवान और बृद्ध, बालक और बालिकाएं, महिलाएं एवं पुरुष, आदि में किसी का किसी से कम महत्व नहीं है। उन्होंने युद्धक्षेत्र में सभी की भागीदारी निश्चित कर दी थी।
– फ्रैड्रिक महान अपनी योग्यता के बल पर अपने राष्ट्र की 5 प्रतिशत जनता की एक शक्तिशाली सेना तैयार कर लिया और उनका हर प्रकार से खर्च भी वहन किया। आज अगर हम अपने देश की मात्र 1 प्रतिशत व्यक्तियों की सेना तैयार कर लें, तो हमारी सेना लगभग 1.35 करोड़ होगी। बड़ी सेनाओं का खर्च वहन करना, हमें फ्रैड्रिक महान और अलाउद्दीन खिलजी के विचारों से प्राप्त होगा।
– अलाउद्दीन खिलजी के सैन्य एवं प्रशासनिक विचार हमें यह ज्ञान प्रदान करते हैं कि, किस तरह सैन्य एवं प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और बेरोजगारी को दूर करने, अयोग्य व्यक्तियों के स्थान पर योग्य व्यक्तियों की भर्ती करने तथा राज्य व्यवस्था दुरुस्त करने के लिए उसने क्या कदम उठाए थे।
– विश्व के महान स्त्रातजिक विचारकों के विचार हमारे सेनाध्यक्षों को युद्ध हेतु नई टेक्नोलॉजी एवं समरतंत्र का ज्ञान प्रदान करते हैं।
– युद्धकाल में जनमत का विशेष महत्व होता है, शत्रु का एक प्रयास यह भी होता है कि, यदि किसी राष्ट्र की जनता को उसके विरुद्ध कर दिया जाये तो उसे आसानी से पराजित किया जा सकता है। हमे अपनी जनता को शत्रु की चालों से अवगत कराते हुए उन्हें जागृत करना भी जरूरी है कि, राष्ट्र से ऊपर कोई नहीं होता, अन्यथा हमारे देश में तो जनता बेरोजगारी और मँहगाई का मुद्दा बनाकर राष्ट्र का विरोध करने में भी देरी नहीं लगाती है।

राष्ट्रीय सुरक्षा हमारा प्राथमिक दायित्व है। वर्तमान समय में यह सत्य है कि इसका दायित्व राष्ट्र की प्रत्येक जनता, सैन्य बल, आधुनिक एवं तकनीकी हथियारों एवं प्रौद्योगिकी पर निर्भर है, जिसमें राष्ट्र के जनसाधारण को सामान्य और यौद्धिक वातावरण का ज्ञान रहे, जिससे जनसाधारण में राष्ट्र प्रेम एवं बलिदान की

भावना जन्म ले, न कि विद्रोह की भावना। ऐसा तभी सम्भव है जब जनता युद्ध के वातावरण से परिचित होगी, इसके लिए विषय को अनिवार्य करना होगा।

यह तो मानव स्वभाव है कि वह कभी संतुष्ट होना नहीं सीखा। गुलामी थी तो आजादी चाहिए, आजादी है तो नौकरी चाहिए। राष्ट्र प्रेम और बलिदान की भावना किसी–किसी में स्वयं पैदा होती है। हम अपने इस विषय द्वारा जन सामान्य में राष्ट्र प्रेम और युद्ध के वातावरण और उसमें होने वाले परिवर्तनों से अवगत कराना चाहिए, ताकि जनता मानसिक रूप से यौद्धिक परिस्थितियों से निबटने हेतु तैयार रहे, जैसे, युद्धकाल में निम्न परिस्थितियों के साथ निम्न कठिनाइयां आ सकती हैं'–

1. हर क्षेत्र में महँगाई बढ़ती है।
2. जान माल को भारी क्षति उठाना पड़ता है।
3. लगातार सैनिकों की क्षति हो सकती है।
4. अपने ही सामने अपने प्रियजनों की मृत्यु देखना पड़ सकता है।
5. अधिक सैनिकों की आवश्यकता के कारण अपनी बच्चों को राष्ट्र की सुरक्षा के लिए भर्ती होने के लिए प्रेरित करना।
6. यौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नागरिक आवश्यकताओं की वस्तुओं में कटौती हो सकती है।
7. आवश्यकता पड़ने पर भोजन में भी कटौती करनी पड़ सकती है।
8. सरकारी एवं प्राइवेट कर्मचारियों को बिना वेतन के राष्ट्रीय सुरक्षा में सहयोग देना पड़ सकता है।
9. द्वितीय विश्व युद्ध की अपार क्षति ने विश्व विजेता ब्रिटेन की कमर तोड़ दी। पहले की यौद्धिक आवश्यकताएं सीमित थी, वर्तमान आवश्यकताएं असीमित हो गई हैं, वर्तमान युद्ध के खर्च का ऑकलन नहीं किया जा सकता।
10. वर्तमान युद्धों को लड़ने वाला राष्ट्र कई दशक पीछे चला जाता है। जिस प्रकार कि एक व्यक्ति की भयंकर बीमारी में एक परिवार की जीवन भर की कमाई जा सकती है, और उसके ऊपर कर्ज का बोझ भी लद जाता है, उसी प्रकार युद्ध का खर्च होता है, क्योंकि सुरक्षा के मामले में हम कोई समझौता नहीं कर सकते।
11. उपरोक्त के अतिरिक्त भी बहुत सारी कुर्बानियाँ राष्ट्र की जनता को देनी पड़ सकती है।

उपरोक्त समस्याओं से सरलता से निबटना तभी संभव होगा जब जनता इस वातावरण से परिचित होगी, और मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार होगी, अन्यथा जनता, राष्ट्र में सरकार के प्रति केवल विद्रोह करेगी। इसके लिए जरूरी है कि, हम जनता को रक्षा और सुरक्षा के प्रति अपने विषय के माध्यम से जागरूक रखें। युद्ध के वातावरण से परिचित कराएं, और मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार रहने हेतु प्रेरित करें, लेकिन यह बड़े दुर्भाग्य के साथ हमें लिखना पड़ रहा है कि, राष्ट्र की सुरक्षा, विकास, राष्ट्रप्रेम, बलिदान आदि की भावना का पाठ पढ़ाने वाला ये हमारा विषय हमारे देश में उसी तरह उपेक्षित है, जिस तरह–

अंग्रेजी भाषा के सामने हमारी राष्ट्रभाषा "हिंदी"– राष्ट्र के आंतरिक कार्य में कम से कम हिन्दी को वरीयता तो मिलनी ही चाहिए।

क्रिकेट के सामने राष्ट्रीय खेल "हाकी"– अपने देश में हाकी को वरियता मिलनी चाहिए।

पैंट, शर्ट और कोट के सामने राष्ट्रीय वेशभूषा, "धोती, कुर्ता, पगड़ी"– इस परिधान को इस समय बूढ़े भी पसंद नहीं करते। कुछ ग्रामीण बुजुर्ग इसके सम्मान को अभी बचाए हुए हैं।

"रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन" विषय राष्ट्रीयता का प्रेम और सम्मान करना भी सिखाता है। राष्ट्रीयता का अपमान करने से अच्छा है कि उन्हें सर्व सम्मति से बदल दिया जाये। कानून और संविधान में संशोधन तो किया जा सकता है। फिलहाल हमारे विचार से हमारा विषय हाई स्कूल में अनिवार्य रूप से पढ़ाए जाने वाले सामाजिक विषयों से अधिक महत्वपूर्ण है। यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि राष्ट्र राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले में जागरूक हो तो इसे प्राइमरी से ही एक विषय के रूप में अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाना चाहिए। हमें जो उचित लगा हमने विषय संबंधी महत्व एवं इसके अध्ययन से नागरिकों पर पड़ने वाले प्रभावों को उजागर कर दिया है। इस विषय को कम से कम अन्य विषयों के समान मान्यता तो देना ही चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. अधिकारी, डॉ0 शेखर : आधुनिक स्त्रातजिक चिन्तन, एस0पी0जे0 पब्लिकेशन्स इलाहाबाद।
2. पाण्डेय, डॉ0 बाबूराम एवं राम सूरत : स्त्रातजिक विचारक, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
3. सिंह, प्रो0 लल्लनजी : आधुनिक सैन्य चिन्तक (विचारक), प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
4. सिंह, डॉ0 अशोक : रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
5. श्रीवास्तव, डॉ0 जे0एम0 : स्त्रातजीय चिन्तन, चन्द्र प्रकाश एण्ड कम्पनी, हापुड़।
6. सिंह, डॉ0 रामकृष्ण, राकेश, रजवंत : विश्व के स्त्रातजिक चिन्तक, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. सिंह, चौधरी नरेन्द्र : प्रयोगात्मक स्थल युद्धकला, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
8. मिश्र, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद : प्रयोगात्मक सैन्य विज्ञान, भवदीय प्रकाशन अयोध्या।
9. मिश्र, सुरेन्द्र कुमार : संसार के प्रसिद्ध युद्ध, गंथ अकादमी, नई दिल्ली।
10. मिश्र, प्रो0 एल0के0 : भारत का सैन्य इतिहास, आकृति प्रकाशन नई दिल्ली।
11. पाण्डेय, बाबूराम : सैन्य इतिहास की पाठ्य पुस्तक, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

पता : ग्राम– भवानीपुर, पोस्ट– अटरामपुर (उल्दा), जिला : प्रयागराज, उ.प्र., पिन– 229412,

ईमेल : shubhashbhavanipur@gmail.com

मोबाइल एवं व्हाट्सएप : 9956331228

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 60-63

A Study on the Socio-Economic Impacts of Pneumonia in India

Dr. Vinod Girder, Principal,
Dr. Yograj Goswami, Assistant Professor
Maharshi Dayanand B.Ed. College, Sriganganagar.

Abstract :-

The world has not yet recovered from the impact of Corona Virus, a new virus has created a new threat to the world and this threat has also come from China. Pneumonia is the threat that has shaken the world once again. It is an infectious disease affecting the tiny air sacs of the lungs, called alveoli. In a person with pneumonia the alveoli are filled with pus and fluid, which creates difficulty in proper breathing and reduces the oxygen intake. The disease is said to be notified by China authority from the National Health Commission at a press conference on November 13, 2023 reporting an increase in the cases of respiratory diseases in China and attributed them to circulation of common pathogens such as influenza, respiratory syncytial virus, COVID-19, and mycoplasma pneumonia. It is worth considering that even in December 2019 same event occurred and then the outbreak of pneumonia was said to be caused by an unknown etiology occurred in Wuhan, China and most patients were linked to a single seafood market, which reportedly sold seafood and some live animals, including poultry, bats, marmots and other wild animals, suggesting that the pathogen causing pneumonia may be transmitted from an animal to human. In fact Pneumonia is caused by a number of different infectious agents, including viruses, bacteria and fungi etc collectively called as 'Pathogen'.

The study has been undertaken with the objective of knowing the extent to which this incident is affecting socio-economic conditions of India. The researcher endeavored to examine the realty at the ground level if such incident, as experienced in 2020, would have any impact on the society and its members especially school going children who recently came out from the trauma due to covid-19 and again the same situation may be in rampant among the people at large in the country. Therefore timely precautions would be better to arrange by the government, concerned authorities and society members themselves. This paper is just an effort to arouse awareness among the people of India.

Keywords :- Pneumonia, mycoplasma, COVID-19, socioeconomic.

Introduction :-

The reported new born disease 'Pneumonia' has been spreading in the north region of China. National Health Commission of China, at a press conference on November 13, 2023 reported increase in the cases of respiratory diseases in China and attributed them to circulation of common pathogens such as influenza, respiratory syncytial virus, COVID-19, and mycoplasma pneumonia.

Reports of a surge in pneumonia-like illness primarily affecting children in northern China have captured our attention evoking feelings of déjà vu among people across the world. As winter season is onset the cases of respiratory related problem starts increasing. In case of China it's the first winter season after lifting Covid-19 restrictions and once again it has put the world, especially developing countries like India, into a state of mourning. In fact the situation came into spotlight when the World Health Organisation (WHO) sought more information with a report by the Program for Monitoring Emerging Diseases (ProMED) on the clusters of undiagnosed pneumonia in children.

Infections have proliferated across China's north-eastern regions, with Beijing and Liaoning, 800 km apart, being two major hubs have seen spike in the cases of Pnemonia accourding to Al Jazeera, reporter of Express news, "One major hospital in Beijing has reported that on average every day, they are seeing about 1,200 patients enter their emergency room," . It shows how alarming the situation is.

1. Who are the chief victims :-

A large numbers of the Children from the age of five to fourteen are being attacked by the Pneumonia virus forcing them to be hospitalized. Schools in the Beijing china are recently reported absenteeism in a large numbers of the students. However, apart from children, the elderly and pregnant women may also be vulnerable to the disease.

2. Is the disease is an afresh one :-

No, it not an afresh one as in December 2019 such type of the disease has already drawn attention but this the Chinese authorities have attributed the increase in incidence of respiratory illnesses to the circulation of known pathogens such as influenza, mycoplasma pneumoniae, respiratory syncytial virus (RSV), and SARS-CoV-2 (the virus that causes feelings of déjà vu among people across the world).

3. Has it been declared pandemic like covid-19?

Fortunately it has yet not been declared as pandemic as Chinese authorities still not provided full data, yet World Health Organisation has asked China for that. apart from it china authorities have attributed the increase in cases of respiratory illness to the circulation of known pathogens such as

influenza, mycoplasma pneumoniae, respiratory syncytial virus (RSV), and SARS-CoV-2 (the virus that causes COVID-19). As per the report of WHO, mycoplasma pneumoniae, a common bacterial infection which typically affects younger children, is likely to be what is affecting most of the patients under 18.

4. What is immediate known cause of the disease?

According to the Chinese authorities and many health experts, "the immediate known cause of the disease is attributed to the outbreak to the lifting of Covid-19 restrictions, similar to "lockdown exit waves" seen in other countries. Moreover, the onset of winter is a likely culprit as well. Chinese authorities have said that temperatures will further plummet this weekend onwards.

5. What is the future impact?

Chinese authorities have made clear that influenza would be on peak this winter and in spring, with mycoplasma pneumoniae continuing to be high in some areas in the future. They have also warned of the risk of a rebound in Covid-19 infections, and asked for strengthening the reporting process.

6. Should we be worried about the outbreak of the disease in India?

That is the most concerning question as we know "burnt child dreads fire". we have already learnt a lesson from the corona-19 during the period almost everything was stopped wherever they are. Taking the lesson of the pandemic Indian people as well as authorities are in dilemma as we still do not know what to do as china has not made clear even after World Health Organization has asked her for providing full data on disease. Now the world has reached at a very different place than it was in two or three year's age. The traumatic experience of the global pandemic is still alive to trigger next paranoia.

We can be said at better place today to deal such type of infectious disease due to our past experience but even then there is sort of trauma among people especially among parent who mostly worried about their children's schooling as last time covid-19 hit the school first forcing them to suspend the teaching learning process for a considerably long period adversely affecting the education of children and even today we cannot turn around the face deliberately knowing that threat at step of our country. As the report are updating day by day from our neighbor country about the mysterious pneumonia outbreak several states in India have started overhauling their medical infrastructure. A wave of fear has run in country as china's reported having been seeing a spike in cases of respiratory illness among children that forcing the closure of schools in the northern part of the country.

7. Which sort of measure should be adopting to keep the disease off?

Whether the outbreak progresses or not, it has shaken the socioeconomic infrastructure of India as precautionary measures have been started. Various states of India have been directed from the

ministry to check their hospital preparedness measures such as hospital beds, drugs and vaccines for influenza, medical oxygen, antibiotics, PPE etc. that will definitely increase the economic load that ultimately put pressure on Indian economy as well as in society that is already fear-stricken in form of increase precautionary expenditure with the mental stress on the parents whose, after the corona-19 stricken period, felt some ease to send school and again the situation just that was in the case of covid-19 has been emerging. It has given sleepless nights to almost all the state ministers as well as Indian government as they never want the situation like covid-19 be repeated.

Conclusion :-

Form the facts and reported news circulating on the various news media has left the people scared and with open jaw not getting what is to be going on and how they should react to the recent threat. However "The overall risk assessment by the WHO indicates a low probability of human to human spread and low case fatality among humans," the statement from the health ministry said, adding that there was a "low risk to India" from both. "India is prepared for any kind of public health exigency," the statement said.

Whatever the situation may be but being a responsible and intellectual social citizens we, the people of India should take measure reduce the effect of likely-to-spread disease in time which include recommended vaccination; keeping distance from people who are ill; staying home when ill; getting tested and medical care as needed; wearing masks as appropriate; ensuring good ventilation; and regular hand-washing. We are the owner of our own body and health so timely taken measures can keep us away out children from the disease and the socioeconomic in line.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 64-69

वर्ग हित और सामाजिक न्याय

चेतन लाल रेगर
शोधकर्ता एवं सह–आचार्य, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, जिला केकड़ी (राजस्थान)

स्वाभाविक है कि हम अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं को क्रय करते रहते हैं। दूसरी ओर आजकल व्यापक रूप से नक़ली और मिलावटी वस्तुओं से बाज़ार भरे पड़े हैं। उस पर उत्पादकों और निर्माताओं द्वारा भ्रामक विज्ञापन,कीमतों का मोलतोल खरीद के साथ उपहारों, इनामों और प्रतियोगिताओं के झूठे चक्कर में फँसकर आए दिन ग्राहक लुटता रहता है इसके अतिरिक्त वस्तुओं के निर्माण में सुरक्षा मानकों का पालन न किया जाना बड़े–बड़े होर्डिंग्स के द्वारा ग्राहकों को ललचाकर अपने जाल में फँसाना व्यापारियों की एक आम प्रवृत्ति बन गई है परन्तु आज उपभोक्ता पूर्व की भाँति उतना असमर्थ और असुरक्षित भी नहीं है। ऐसे कानून बन चुके हैं जो एक ओर उपभोक्ता को अधिकार प्रदान करते हैं और दूसरी ओर उत्पादकों और निर्माताओं पर उत्तरदायित्व भी लगाते हैं। उपभोक्ता के इन अधिकारों के पीछे आज कानूनी अनुमति और विधिपरक शक्ति भी मौजूद है परन्तु इन अधिकारों की जानकारी अधिकांश व्यक्तियों को नहीं है अर्थात् आम आदमी इससे परिचित नहीं है।

वास्तव में उपभोक्ता को यह अधिकार उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम द्वारा प्राप्त हुए हैं जो अधिकार हमें नीति शास्त्र अथवा नैतिक रूप से प्राप्त हुए हैं जिन्हें स्वयं व्यापार जगत् ने बलपूर्वक स्वीकारा है। इन अधिकारों की पृष्ठभूमि में कोई कानूनी बाध्यता नहीं है परन्तु नैतिक आधार पर सभी इन्हें मानने को बाध्य हैं।

उपभोक्ता के हितों को संरक्षण प्रदान करने का कानूनी भाषा में 'अधिकार' का यह भी अर्थ होता है कि विधि के अनुसार उत्पाद–निर्माताओं तथा विक्रेताओं पर कुछ कर्तव्य निर्धारित किए गए हैं अतः इन कर्तव्यों का पालन न करने की स्थिति में उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जा सकती है और उन्हें दण्डित भी किया जा सकता है।

उपभोक्ता अधिकारों वाली सोच का जन्म आधुनिक समय में हुआ है सबसे पहले सन् 1920 के दशक में इस आन्दोलन का प्रारम्भ संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ जहाँ से यह अन्य देशों में फैल गया। अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ–कैनेडी ने मानव अधिकारों के तहत उपभोक्ता अधिकारों का बिल सन् 1961 में अमेरिकी संसद में प्रस्तुत किया। उन्होंने उपभोक्ताओं के निम्न चार अधिकारों की पहचान की थी–

– वर्ग हित और सामाजिक न्याय
– सुरक्षा का अधिकार
– चुनने का अधिकार

– सुनवाई का अधिकार।
– सूचना प्राप्त करने का अधिकार।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम उपभोक्ताओं के छह अधिकारों का उल्लेख करता है :–

– सुरक्षा का अधिकार।
– सूचना का अधिकार।
– चयन का अधिकार।
– सुनवाई का अधिकार।
– क्षतिपूर्ति का अधिकार।
– उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।

सुरक्षा का अधिकार :–

उपभोक्ता के अधिकारों में सबसे महत्त्वपूर्ण है सुरक्षा का अधिकार। इसका सीधा सम्बन्ध बाजार से क्रय की जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं से जुड़ा हुआ है क्योंकि खरीदी गई वस्तु या उपभोक्ता द्वारा प्राप्त की गई सेवा उसके जीवन और सम्पत्ति के लिए खतरनाक सिद्ध को सकती है या हो जाती है।

खरीदी गई वस्तु या प्राप्त की गई सेवा सुरक्षा के मानकों को पूरा करती है अथवा नहीं। उपभोक्ता के सुरक्षा अधिकार का उल्लंघन कैसे होता है, मान लीजिए आप किराये पर टैक्सी, ऑटोरिक्शा, अथवा किसी बस द्वारा यात्रा करते हैं। वाहन चालक अपने वाहन को सड़क पर लाने से पहले उसके यांत्रिक कलपुर्जों की समुचित जाँच नहीं करता और यदि इस लापरवाही के कारण रास्ते में ब्रेक फेल हो जाने की वजह से दुर्घटना हो जाती है तो यात्रियों को लगी चोट उनके सुरक्षा के अधिकार का उल्लंघन है अतः घायल व्यक्ति दुर्घटना में हुए, अपने नुकसान का मुआवजा प्राप्त करने का कानूनन अधिकार रखता है यह सब उपभोक्ता के सुरक्षा अधिकार के अन्तर्गत आता है।

इसी प्रकार बिजली से चलने वाली प्रेस उपकरण को खराबी के कारण यदि करष्ट मार देती है या झटका लगा देती है तो यह भी उपभोक्ता के सुरक्षा अधिकार का उल्लंघन है। इसी प्रकार डॉक्टर की लापरवाही के कारण यदि मरीज को ऑपरेशन के दौरान क्षति पहुँचती है या वाहन चालक लापरवाही से वाहन चलाता है जिससे यात्रियों को जान–माल का कोई इकसान होता है तो भी यह उपभोक्ता को प्राप्त सुरक्षा के अधिकार का उल्लंघन है।

सुरक्षा का अधिकार वस्तु क्रय करते समय अथवा सेवा प्राप्त करते समय तक हो पोषित नहीं होता बल्कि लम्बे समय तक इस्तेमाल करते रहने तक भी चलता है। अतः वस्तु या सेवा क्रय करते समय सुरक्षा की दृष्टि से उपभोक्ताओं को अपनी ओर से शर्तें भी रखनी चाहिए परन्तु यदि उपभोक्ता को वस्तु या सेवा की कोई गारण्टी नहीं भी मिलती है तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उपभोक्ता के पास सुरक्षा का अधिकार नहीं है।

यह अधिकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिकार है क्योंकि यह अधिकार हमारे जीवन तथा शरीर के खतरों तथा नुकसान के विरुद्ध हमें संरक्षण प्रदान करता है। इस अधिकार द्वारा हानि होने की स्थिति में समुचित क्षतिपूर्ति अथवा हर्जाना प्राप्त किया जा सकता है।

सूचना पाने का अधिकार :-

उपभोक्ताओं के लिए सूचना पाने का अधिकार भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस अधिकार का अर्थ है कि उत्पादक तथा विक्रेता उपभोक्ताओं को सूचित करे कि अमुक वस्तु की गुणवत्ता, समर्थता, शुद्धता, स्तर तथा श्रेणी व मूल्य क्या है। इस बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं उपभोक्ता को यह अधिकार है कि वह किसी वस्तु को क्रय करने से पूर्व अथवा उसका चयन करने से पहले उस उत्पाद अथवा सेवा के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है। अतः उत्पादक, निर्माता या विक्रेता का यह दायित्व है कि वह उत्पादित एवं बेची जाने वाली वस्तु के बारे में उपभोक्ता को पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराये।

इस प्रकार यह जानकारी दवा खरीदते समय अधिक महत्त्वपूर्ण है एक ही दवा को अलग–अलग कई कम्पनियाँ अलग–अलग ब्राण्डों और नामों से उत्पादित और विक्रय करती हैं और अक्सर उनके मूल्यों में भी काफी अन्तर होता है। जानकारी या सूचना के अभाव में आप महँगी कम्पनी की दवा भी क्रय कर सकते हैं। औषधियों के सेवन करने के उपरान्त उसके प्रभावों की स्पष्ट जानकारी भी उपभोक्ताओं को होनी चाहिए ताकि औषधि का सेवन करने पर उसके स्वास्थ्य पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े। औषधि का काम रोगी को लाभ पहुँचाना है न कि हानि। यह अधिकार उपभोक्ता को समझदार और चौकन्ना बनाता है वहीं पर ऊँचे दवाव के साथ जो माल को बेचने की तकनीक अपनाई जाती है, उससे उपभोक्ता व्यापारी के जाल में फँसने से बच जाता है।

चयन का अधिकार :-

किसी भी वस्तु को खरीदने से पहले, उसके सही चुनाव या चुनने का अधिकार का महत्व तब अधिक होता है जब बहुत सारी वस्तुएँ विभिन्न मूल्यों पर अधिकता के साथ उपलब्ध हो। अत गुणवता और मूल्य के आधार पर ग्राहक को स्वयं की तसल्ली करके वस्तु को क्रय करना चाहिए।

सैद्धान्तिक रूप से कोई विक्रेता किसी उपभोक्ता को खास ब्राण्ड की वस्तु खरीदने के लिए दबाव नहीं डाला जा सकता। यदि किसी वस्तु का उत्पादन किसी एक ही उत्पादक द्वारा उत्पादित किया जाता है तो ऐसी स्थिति में हम उस वस्तु को एकाधिकार उत्पादित बस्तु के नाम से जानते हैं। इस अधिकार के अनुसार उत्पादक को तसल्लीबख्श तथा उपयुक्त सेवा के साथ वस्तु को उचित मूल्य पर ही बाजार में उपलब्ध कराना चाहिए। इस अधिकार में यह भी शामिल है कि वस्तु मूल रूप में हो और उसकी उचित सेवा की गारण्टी भी हो। यह अधिकार उसी स्थिति में प्रभावी होता है, जहाँ बाज़ार में विभिन्न ब्राण्डों की बहुत सारी वस्तुएँ प्रतिस्पर्द्धा के आधार पर उपलब्ध हों।

सामान्यतः देखने में आता है कि उपलब्ध ब्राण्ड के उत्पाद उपलब्ध होते हुए भी विक्रेता (दुकानदार) ग्राहक को एक खास ब्राण्ड का ही उत्पाद दिखाता है जिसे विक्रय करने पर उसे अधिक लाभ मिलता है। ग्राहक सोचता है कि शायद दूसरी ब्राण्ड बाज़ार में उपलब्ध ही नहीं होंगी और इस प्रकार दुकानदार की बेईमानी के कारण ग्राहक को मजबूरी में वहीं खरीदना पड़ता है जिसे दुकानदार बेचना चाहता है। अतः ग्राहक को चाहिए कि क्रय करने से पूर्व वह सभी ब्राण्ड के उपलब्ध उत्पादों को देख–परख कर ही चयन करे तथा सेवा शर्तों की पूरी जाँच व समझ कर ही खरीदे ताकि उसे उचित मूल्य पर अच्छी वस्तुएँ ही प्राप्त हों।

सुनवाई का अधिकार :–

इस अधिकार का अर्थ है कि उपभोक्ता की शिकायत सुनी जाए। उपभोक्ता को चाहिए कि वे उपयुक्त मंचों के साथ अपने आप को जोड़े जो उपभोक्ता के हितों को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं और उनसे सम्पर्क स्थापित करके उचित निर्णय प्राप्त करें। भारत सरकार ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता मंचों की स्थापना की है जो उपभोक्ता की शिकायतों को सुनते हैं तथा उन पर शिकायतों का निर्णय लेकर उनको निपटाते हैं।

क्षतिपूर्ति का अधिकार :–

यह एक आवश्यक व महत्त्वपूर्ण अधिकार है। इसका अर्थ है अनिश्चित व्यापार व्यवहार अथवा उपभोक्ता के शोषण के विरुद्ध शिकायत का निवारण तथा उसका समाधान करना। ग़लत और घटिया माल तथा खराब सेवा के लिए उपभोक्ता को यह अधिकार है कि वह इस प्रकार से हुए नुकसान का हर्जाना प्राप्त करे। उसकी समुचित क्षतिपूर्ति को भी इस अधिकार में शामिल किया गया है। विक्रेता और उपभोक्ता के बीच दोनों को स्वीकार्य शर्तों पर शिकायत का निवारण करते हुए समझौता कराया जाता है। विभिन्न उपभोक्ता संरक्षण कानूनों के अन्तर्गत विभिन्न न्यायालयों में उपभोक्ता अपनी शिकायतें दायर कर सकता है।

कई बार ऐसा भी होता है कि बहुत थोड़े मूल्य की वस्तु होने के कारण उपभोक्ता शिकायत कर स्वयं को झमेले में नहीं डालना चाहते। उपभोका को ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि छोटी शिकायत भी समाज पर एक बड़ा प्रभाव छोड़तो है। उपभोक्ता को सदैव ही जागरूक एवं चौकना रहना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर कानूनी सहायता लेनी चाहिए। समाधान खोजते समय उपभोक्ता को उपभोक्ता संगठनों का सहयोग भी प्राप्त करना चाहिए।

उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार :–

इस अधिकार का अर्थ है वस्तुओं के मूल्य, उनकी उपयोगिता, कोटि, सेवा तथा उसके उचित मूल्य की जानकारी तथा उपभोक्ता अधिकारों का ज्ञान प्राप्त करने की सुविधा। उचित जानकारी के अभाव में विशेषकर ग्रामीण उपभोक्ता अपना शोषण करवाने के लिए जिम्मेदार हैं उन्हें अपने अधिकारों की जानकारी प्राप्त कर उनको लागू करवाने के लिए सामने आना चाहिए।

अतः सरकार का कर्तव्य है कि उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों की समुचित जानकारी दे तथा उन्हें जागरूक बनाए। इस तरह के सरकारी उपाय उपभोक्ता को धोखाधड़ी, ट्रेडमाकों, झूठे लेबलों, भ्रामक विज्ञापनों व प्रचार एवं अन्य चालों से बचने के लिए उसे स्वयं सबल संरक्षित और शिक्षित बना सकते हैं।

हम स्वयं भी उपभोक्ता मुद्दों और अधिकारों की जानकारी प्राप्त करके शिक्षित हो सकते हैं और अपनी वैध शिकायतों के निवारण के लिए खड़े हो सकते हैं तथा व्यापारियों को अनुचित व्यवहार न करने देने के लिए मजबूर कर सकते हैं। इस प्रकार उपभोक्ता शिक्षा एक सशक्त माध्यम है जो हमें उपभोक्ता अधिकारों के प्रयोग में सहायता देता है। इसलिए हमें इस महत्त्वपूर्ण अधिकार को प्राप्त करने के लिए जोर देना चाहिए।

उपभोक्ता के उत्तरदायित्व :-

उपभोक्ता आज अत्यधिक उपभोग करने तथा पर्यावरण को नष्ट करने का दोषी है। इसलिए उस पर भारी दबाव इस बात का है कि वह अपने उत्तरदायित्वों के प्रति आस्थावान बने, उन्हें जाने और उसी तरह से अपना व्यवहार करे। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम उपभोक्ता के उत्तरदायित्वों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करे।

उपभोक्तावाद पश्चिमी जीवन शैली की देन है जो आधुनिक युग में हमारे सामने उभरकर आई। इसे फैलाने में मीडिया और संचार के साधनों ने अहम् भूमिका निभाई है। उपभोक्तावाद ने राष्ट्रों को विकसित तो कम किया है परन्तु कपटपूर्ण तरीके से नष्ट अधिक किया है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए उपभोक्ता उत्तरदायित्व की अवधारणा को भारतीय उपभोक्ता को शीघ्र जानकारी देना अत्यधिक आवश्यक हो गया है। इसलिए इस दिशा में ध्यान देने से भारत में बाजार व्यवस्था की प्रगति एवं पर्यावरण को ध्यान में रखने से इसके बहुत ही लाभकारी व हितकारी प्रभाव सामने आएँगे।

क्या एक उपभोक्ता को सस्ते और आसानी से उपलब्ध होने वाले उत्पादों को खरीदना चाहिए या फिर उसे उचित व्यापार व्यवहार और जन स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहते हुएउत्पाद और वस्तुओं की खरीद फरोख्त करनी चाहिए।

एक जिम्मेदार उपभोक्ता वह व्यक्ति होता है जो अपने विवेक और पूरी जानकारी के रराथ किसी बस्त को चनने के अधिकार के साथ किसी वस्त को चनने के अधिकार का प्रयोग करता है तथा दूसरे उपभोक्ताओं के प्रति उत्तरदायित्व को निभाते हुए उनके लिए जवाबदेही को समझता है और साथ ही अपनी खरीददारी के निर्णय लेने में पर्यावरण को ध्यान में रखता है।

जब हम एक उपभोक्ता का अध्ययन एक नागरिक के रूप में करते हैं तो उसके अध्ययन का क्षेत्र व्यापक हो जाता है। उस समय उसका श्रेय बाजार से घर और घर से बाजार की सीमाओं में बँधा नहीं रहता तथा इस बात का भी कोई महत्त्व नहीं रहता कि वह अपने प्रयोग के लिए क्या वस्तु खरीद कर लाता है बल्कि यह बात विशेष महत्त्व रखती है कि वह व्यक्ति अपनी वस्तुएँ खरीदते समय समाज और पर्यावरण का कितना ध्यान रखता है तथा नागरिक के रूप में समाज और पर्यावरण को क्या दे पाता है। उदाहरण के रूप में एक व्यक्ति बाज़ार से वस्तुओं को खरीदते समय उपभोक्ता अधिकारों के प्रति चौकन्ना तो है परन्तु जब वह वस्तुओं का प्रयोग करता है, उस समय शेष बचे कूड़े–कचरे को ठिकाने लगाने अथवा उपयुक्त स्थान पर डालने की बजाए लापरवाही करता है और इस ओर केवल आंशिक ध्यान देता है। इस प्रकार जब कोई व्यक्ति कार का प्रयोग करता है तब हम यह समझते हैं कि वह अपनी कार से प्रदूषण को कम रखने के दायित्व को निभायेगा।

कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें एक उपभोक्ता दूसरे उपभोक्ताओं के हित साधन के लिए अपनी ज़िम्मेदारी निभा सकता है। उपभोक्ता को चाहिए कि वह हमेशा वस्तु खरीदते समय उसका भार नाप–तौल की जाँच करें तथा उस वस्तु पर लिखी गई उत्पादन को तारीख तथा उस पर अंकित मूल्य एवं लेबल पर लिखे गए तथ्यों की भी

पूरी सतर्कता के साथ जाँच परख कर ले। वस्तु की गुणवत्ता परख के लिए यह देख लेना बहुत आवश्यक है कि उस पर गुणवत्ता का मानक किस संस्था का लगा है जैसे कि आई एस आई एगमार्क इकोमार्क आदि आवश्यक रूप से छपा होना चाहिए और उस वस्तु की गारण्टी या वारण्टी लेबल पर ही अंकित होना चाहिए। इन सब बातों की जाँच कर लेना उपभोक्ता का परम कर्तव्य बनता है। इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं की खरीद के समय पर्यावरणीय मुद्दों को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए क्या उन पर इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का कम से कम प्रयोग किया जाना चाहिए जो प्रदूषण फैलाती हो। उदाहरण स्वरूप कहा जा सकता है कि वातानुकूलित करने वाली मशीनों और रैफ्रिजरेटरों का इस्तेमाल करना प्रदूषण को फैलाता है। घर में कम से कम रसायन वाली वस्तुओं का प्रयोग किया जाना चाहिए। ये सब मुद्दे एक अच्छे उपभोक्ता के रूप में नागरिक के कर्त्तव्य हैं जिनका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

ई–मेल आईडी– – chetanlal2014@gmail.com
मोबाइल नं : – 9784323740

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 70-73

मंजुल भगत कृत 'अनारो' उपन्यास में आर्थिक यथार्थ

ए. माधवराव
पीएच.डी. (हिंदी), हिंदी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना।

स्वतंत्रता के बाद देश में तीव्र गति से परिवर्तन होने लगा है। इस बदलाव ने वैयक्तिक और समूहगत स्तर पर आर्थिक यथार्थ को सर्वाधिक प्रभावित किया है, जिससे इनमें विघटन की स्थिति निर्माण हुई। आर्थिक अभावों ने आम आदमी के जीवन को घोर निराशा में डाला है। प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन किसी सीमा तक आर्थिक स्थिति से प्रभावित रहा है। 'अर्थ' पर ही समाज का विकास आधरित होता है, यह एक सर्वमान्य सत्य है हालांकि वर्तमान में 'अर्थ' को जितना महत्व प्राप्त हुआ, इससे पहले उतना नहीं था। डॉ. प्रेमलता जैन के शब्दों में– "आधुनिक काल में सम्बंधों में जितना बिखराव आया है, पहले कभी नहीं आया था। नगर–महानगर के जीवन की जटिलता, व्यस्तता को कहीं अधिक एकात्मप्रिय बना दिया है। वह समूह में रहने का आदि नहीं रहा। नाते–रिश्तेदार, गली–पड़ोस वाले ही नहीं, खून के रिश्ते और सम्बंधी भी अनचाहे प्रतीत होते हैं। वह बदलाव मूलतः आर्थिक दबावों के कारण हुआ है।"[1] 'अर्थ' मनुष्य के जीवन को संचालित करने के लिए आवश्यक साधन है।

मंजुल भगत के 'अनारो' उपन्यास में उस निम्न वर्गीय स्त्री का चित्रण है, जो घर–घर चौका बर्तन करती है। सामान्य तौर पर बर्तनवाली, कामवाली, नौकरानी के रूप में समाज में प्रचलित इन नारियों के जीवन पर लिखे गए उपन्यासों में यह उपन्यास अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सन् 1960 के बाद हिंदी कथा साहित्य में स्त्री कथा लेखिकाओं की बाढ़–सी आ गयी। चौदह वर्ष की आयु में नंदलाल की दुल्हन बनकर अनारो बरेली से दिल्ली आती है। संड–मुश्टंड अकेले मर्द के घर आ पड़ी थी, न कोई सास न कोई ननद। माँ–मौसी ने ढेरों नसीहतें देकर विदा किया कि आजीवन चाहे हंसाए या रुलाए, पति के पाँव धो–धोकर पीना होगा। नंदलाल आवारा, निकम्मा, भगौड़ा व्यक्ति है। जब तक ये सारी बातें अनारों को समझ में आती है तब तक वह गर्भवती होती है। तभी मदनगीर की झोपड़ी में अनारो और सभी लोगों को पुराने स्थान को छोड़ कर बसना पड़ा था। अपनी झुग्गी को अकेली बनाने–संवारने वाली अनारो तबसे वहीं रहती है। आवारा नंदलाल अपने वर्गीय संस्कारों से युक्त अपनी पत्नी को छोड़ छबीली पर मरता है, यहाँ तक कि छबीली को झोपड़ी में लेकर आता है। अनारो घर–घर झाड़ू–बर्तन कर वह अपना भी पेट पालती है और अपने दोनों बच्चों का पालन–पोषण करती है। यही से अनारो की कामकाजी जीवन का आरंभ होता है। इसी काम ने उसका पेट पाला, वह अपने काम को, श्रम को कम नहीं समझती है। न वह अपने मालकिनों से दबती है न ही उनके आगे दयनीय बनती है। अनारो अपनी कमाई, अपने काम पर गर्व करती है। तभी वह मालकिनों को खरी–खोटी सुनाते हुए कहती है– "मेरे काम को

नजर लगाते हैं। कभी कहेंगी, दस–दस घर तो पकड़ रखे हैं। लेट नहीं आएगी तो और क्या होगा। छोड़ क्यों नहीं देती एक–आधा काम? आजी वह! क्यों छोड़ दूँ दो–एक काम? अपने हाड़–गोड़ तोड़कर कमाती हूँ, तुम्हारी छातियों पे साँप काहे लोटता है?"[2] अपने भगौड़े पति के कारण न वह भूखी मरती है न तो अपने बच्चों को अनाथों की तरह खाने लिए मोहताज होता देखती है। आर्थिक अभाव और तंगी में इस वर्ग का जीवन स्तर निम्न है।

इस वर्ग की आजीविका श्रम पर चलती है और दूसरे वर्ग की अपेक्षा शारीरिक श्रम अधिक करता है। इस वर्ग का जीवन समस्याओं से व्याप्त होता है। इस वर्ग की समस्याओं के केंद्र में अर्थ है। यह वर्ग अपनी न्यूनतम जरूरतों की पूर्ति के लिए जी तोड़ श्रम करता है। निम्न वर्ग के परिवार के सभी सदस्य मजदूरी करते हैं। इस वर्ग के छोटे बच्चे मजदूरी करने पर अभिशप्त है। बच्चे पढ़ाई छोड़कर बाल मजदूरी करने लगते हैं। शिक्षा के अभाव में इस वर्ग में निरक्षरता अधिक है। आर्थिक साधनों के अभाव में यह वर्ग हमेशा समस्याओं से जूझता है। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े परिवार के सदस्य श्रम करते हैं बावजूद परिवार का पालन–पोषण ठीक से नहीं कर सकते। इस वर्ग के पास रहने के लिए अच्छा घर, पहनने को अच्छे कपड़े, अच्छा खाना तक नसीब नहीं होता है। इस कारण निम्न वर्ग के लोग अपने बच्चों के लिए शिक्षा का उचित प्रबंधन नहीं कर पाते हैं। विवाह करने कुछ ही दिनों बाद अकेली असहाय अपने पति द्वारा छोड़ भागने के बाद भी अनारो अपने स्वाभिमान के कारण न केवल जीती है बल्कि अपने बच्चों को जन्म देती है और उनका पालन–पोषण करती है। केवल जीना नहीं, अर्थपूर्ण और सम्मानसहित जीने के लिए संघर्ष करती है। बनिये के बेटे के जरिए गंजी को छेड़े जाने पर वह भभक पड़ती है– "जा, जाके अपनी अम्मा कने सो, अभी तो। अभी तो तेरे लिए उसका दूध टपकना भी बंद नहीं हुआ।...घर बिरादरीवाली है गंजी, कोई राह पड़ी नहीं।"[3]

मंजुल भगत ने अपने उपन्यास साहित्य अधिक रूप कामकाजी स्त्री का चित्रण किया है। यह निम्न वर्ग की स्त्री सदियों से इस रुढ़ि मं बंधी हुई है। मूल रूप महानगरीय घरेलू निम्न वर्ग की स्त्री अनारो हर दिन घर छोड़कर महानगर की जान लेवा सड़क पर दौड़ती हुई गाड़ियों से बचती हुई दूसरों को घरों में बर्तन माँजने और कपड़े धोने का काम करने जाती है। अनारो अपने आपसे कोसते हुए कहती है– "सबेरे की बारी निपटाई, तो घर–घर साँझ की बारी शुरु। साँझ–सवेरा उनके घरों में होता होगा। अपनी तो बस, या भोर होती है, या फिर रात के तड़के–तड़के उठो, दिशा जंगल जाओ। बंबे से पानी भर लाओ। गंजी और छोटू के लिए रोटियाँ पतो।"[4] सही रूप में निम्न वर्ग की स्त्री के जीवन दासता को मंजुल भगत ने पाठक वर्गों के सामने रखा है।

'अनारो' मंजुल भगत का चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने दिल्ली की स्लम बस्ती में रहनेवाली अनारो के संघर्षमय जीवन के द्वारा स्लम बस्तियों में जीवन यापन करनेवाली तमाम गरीब स्त्रियों के जीवन संघर्ष को पूरी ईमानदारी के साथ व्यक्त किया है। मंजुल भगत ने उपन्यास की सृजन प्रक्रिया के संदर्भ में कहना है– "यह एक निम्नवर्गीय स्त्री की कहानी, जो घर–घर चौक–बर्तन कर गुजारा करती है, मदनगीर की छोपड़पट्टी में अपने दो बच्चों और शराबी नकारा पति के साथ रहती है, उसी का नाम अनारो। अनारो एक जीवट वाली, संघर्षशील स्त्री है, जो कभी हार नहीं मानती है। उसे जीवन से भरपुर लगाह है और यह जुड़ाव जीने के प्रति उसके मोह और उत्साह को कभी मरने नहीं देती।"[5] विवाह से पहले सुखमय दापंत्य जीवन और सुखी परिवार का सपना अनारो ने देखा था पर वह कभी पूरा नहीं हुआ।

झुग्गी झोपड़ियों में रहनेवाली गरीब स्त्रियों के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि उसके श्रम का

मूल्य न तो समाज देता है न पति। अनारो भी इससे अलग है। अनारो का संघर्ष पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर फैला है। मंजुल भगत के उपन्यासों में स्त्री विमर्श केंद्र में है। उपभेक्तावादी संस्कृति के कारण आम जनता आर्थिक रूप से विपन्न हो रही है और पीड़ा, वेदना, निराशा, घूटन के कुचक्र में फंस रही है। अपनी आर्थिक आकांक्षा को पूरा करने की भागदौड़ में लोग विशेष रूप से युवा वर्ग में भकटाव की स्थिति में है। इस तरह देखा जाए तो लोगों के जीवन को आर्थिक स्थितियों ने काफी प्रभावित किया है। आज का साहित्यकार आर्थिक कुचक्र में फंसे लोगों की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में करता है। जीवन मूल्यों में विघटन स्वतंत्रता पूर्व भी था और स्वतंत्र्योत्तर परिस्थितियाँ इतनी तीव्र गति से घटित होने लगी हैं कि समाज और जीवन मूल्यों में तेजी से परिवर्तन आया है। परंपराओं के टूटने, आस्थाओं में परिवर्तन से जीवन मूल्य परिवर्तित हुआ है और नये व पुराने के बीच असंतुलन विकृतियाँ, असंगतियाँ और विरोध उत्पन्न हो गया जिससे समाज में मूल्य में विघटन होना स्वाभाविक है। देश की यंत्र शक्ति का निरंतर विस्तार, कारखानों का विस्तार और नई मजदूर बस्तियाँ बढ़ रही हैं। गांव शहर बनते जा रहे हैं और गांवों के लोग शहरों की ओर पलायन करने लगे हैं। मनुष्य का जीवन दृष्टिकोण, इच्छाएँ, लक्ष्य जिन्हें समाज स्वीकृति देता है, वही चिंतन बन जाते हैं और इन्हीं के द्वारा मनुष्य के व्यवहार को नापा–तौला जाता है।

धीरूभाई सेठ के शब्दों में– "दरअसल, गाँव आज पुराने अर्थ में गाँव नहीं रह गया है। अंतर्व्यावसायिक संबंध बदल चुके हैं। एक श्रेणीबद्ध समाज व्यवस्था का प्रतीक समझा जानेवाला गाँव आज प्राथमिक रूप से आर्थिक संबंधों पर आधारित स्थानिक समुदाय का रूप प्राप्त कर रहा है। अंतर्समूह संबंध जो नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे की श्रेणियों में अवरुद्ध थे, तब क्षैतिज प्रसार की तरफ जा रहे हैं। इन्हीं संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण दलित समेत गैरद्विज जातियाँ ग्रामीण क्षेत्र में अपने अधिकारों का दावा कर पा रही है। उन्होंने अपने ऊपर परंपरा द्वारा थोपी गयी आर्थिक–सामाजिक भूमिकाओं को ठुकरा दिया है। आज के जाति–संघर्ष इसी बदले हुए गांव का सूचक है।"[6] समाज में संस्कृति और सभ्यता की आधारशिला आर्थिक चिंतन ही है। गरीब वर्ग के लगभग प्रत्येक घर की वास्तविकता है जिसमें केवल दिखावे के लिए अपव्यय किया जाता है। जिससे कर्ज का बोझ बढ़ता है। इसी तरह 'अनारो' उपन्यास में अनारो अपनी बेटी शांति की शादी के लिए कर्ज लेती है। टीचर उसे मान करती है किंतु वह नहीं मानती है। शांति भी अपनी माँ से नाराज होती है– "अब दुनिया जहान का कर्जा लेकर खूब खिला–पिला। फिर उम्र भर उधारी उतारने को अपने हाड़ पीसियों और मुझे कोसियों।"[7] इस तरह निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति का चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

समाज को सभी दिशाओं से अर्थतंत्र ने जकड़कर रखा है। शहरीकरण, औद्योगीकरण और युवा पीढ़ी के आधुनिकता के प्रति आकर्षण ने अर्थ लिप्सा को अधिक बढ़ावा मिला है। आत्मिक और निजी रिश्ते भी अर्थतंत्र की भेंट चढ़ने लगे हैं। अर्थतंत्र के दबाव से रिश्तों की आत्मीयता प्रभावित हुई है। व्यक्ति को इस दबाव के आगे घुटने टेकने पड़ते हैं। वर्तमान में समाज भूमंडलीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति की चपेट में आया है। समाज में परिवार का ढाँचा, आत्मिक और निजी रिश्ते, स्त्री–पुरुष की जीवन शैली, महानगर जीवन शैली, उलझन आदि सभी कुछ इससे प्रभावित हो गया है। समाज में सबसे महत्वपूर्ण इकाई परिवार है। यह समाज की ऐसी इकाई है जिसके सभी सदस्य आपसी रिश्तों में बंधे हुए हैं। परिवार में विभिन्न संबंध माता–पिता, पति–पत्नी, बच्चे आदि होते हैं, जो एक–दूसरे पर निर्भर हैं। परिवार का ढांचा परस्पर एक–दूसरे की जरूरतों

की पूर्ति करता है। उनका परस्पर व्यवहार खट्टा और मीठा होता है। उनमें आपसी प्रेम और सद्‌भाव भी होता है। एक दूसरे के साथ उनके संबंध मधुर और कटु भाव होते हैं। आधुनिकीकरण के कारण सामाजिक व आर्थिक मान्यताओं में व्यापक बदलाव आया है। हमारी पुरानी मान्यताओं को आधुनिक सोच ने नकार दिया है।

संदर्भ :–

1. डॉ. प्रेमलता जैन – समाजवादी यथार्थवाद और हिंदी कथा साहित्य, पृ. सं. 65
2. मंजुल भगत – अनारो, पृ. सं. 8
3. मंजुल भगत – अनारो, पृ. सं. 52
4. मंजुल भगत – अनारो, पृ. सं. 8
5. संपा. कमल किशोर गोयनका – मंजुल भगत का समग्र साहित्य–1, पृ. सं. 68
6. संपादक अभय कुमार दुबे – आधुनिक के आईने में दलित, पृ. सं. 187
7. मंजुल भगत – अनारो, पृ. सं. 100

मो.नं. 9949676754

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक पृष्ठ : 74-77

समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री जीवन की त्रासदी

पी. राधा
पीएच.डी. (हिंदी), हिंदी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना।

आज स्त्री शिक्षा, विज्ञान, राजनीति, चिकित्सा, साहित्य और सामाजिक आदि सभी क्षेत्र में अस्तित्व स्थापित करने लगी हैं। ग्रामीण जीवन में अशिक्षा, अज्ञान, प्रथा—परंपराओं के कारण स्त्री की स्थिति पिछड़ी हुई दिखाई देती हैं। शिक्षा के अभाव में गांव की स्त्री में पिछड़ापन है। स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण में थोड़ा सा बदलाव आया है। प्रसिद्ध फ्रांसिसी विद्वान सिमोन ने कहा 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है।' स्त्री को बचपन से ही मानसिक तौर पर उसके स्त्री होने का अहसास दिलाया जाता है। पुरुषप्रधान समाज व्यवस्था स्वयं की सत्ता को बनाए रखने के लिए स्त्री को जन्म से ही अनेक नियमों से घेरा जाता है। सीमोन का कहना है कि— "औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि औरत बनाई जाती है। कोई भी जैविक मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य अकेली नियंता नहीं होती।"[1] जैसे—जैसे पश्चिमी चिंतन और जीवन शैली का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ने लगा है वैसे—वैसे स्त्री वर्जनाओं को तोड़ने में समक्ष होने लगी है। आधुनिक शिक्षित स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गयी है, जिससे वह परंपरागत प्रथाओं से मुक्त होने लगे है। आज स्त्री सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से निर्भर होने लगी है। संवैधानिक समानता, स्वतत्र और अधिकारों के कारण स्त्री आत्मनिर्भर बन रही है। भारत ही नहीं अपितु विश्व के हर देश में स्त्री समय के अनुसार बदलती रही है। स्त्री को प्रतिबंधों के जंजीरों में जकड़कर रखा गया था। स्त्री इन जंजीरों को कभी तोड़ नहीं सकी। इतिहास बताता है कि वह प्रतिबंधों के जंजीरों में जकड़ती ही चली गयी। जैसे—जैसे समय बीतता गया वैसे—वैसे स्त्री की स्थिति में बदलाव आता गया है। भारतीय स्त्री के जीवन में काफी उतार—चढ़ाव आया है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इस स्थिति में उसका कार्य परिवार के बीच ही केंद्रित था। बेटी, पत्नी और माता के रूप में वह पिता, पति और पुत्र के अधीन रहती आयी है। मधु कांकरिया के 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में स्त्री के विभिन्न रूपों को दर्शाया है।

उपन्यास में विधवा पूर्णिमा अपनी दोनों बेटियों सहित गरीबी और बेटियों के विवाह की जिम्मेदारी से दूर होकर उन्हें दीक्षा लेने का निर्णय लेती है। इस निर्णय को पूर्णिमा देवी की बेटी संघमित्रा विरोध करती है। वह कहती है— "तुम्हें लगता है कि तुम अपने बूते हमारे लिए पति का जुगाड़ नहीं कर पाओगी तो इन्हें धर्मरूपी पति के हवाले कर दो। पर हमे बस थोड़ा सा भरोसा दो जिससे हमारे पंखों को मजबूती मिल जाए, फिर हम अपना आसमान खुद ढूँढ लेंगे। औरत होने के भय से तुम खुद भी मुक्त हो जाओ और हमें भी मुक्त कर दो।"[2] धार्मिक व्यवस्था उसे इस स्थिति में जीने के लिए विवश करती है। किसी भी समाज का सामाजिक स्तर उस समाज

की स्त्रियों की स्थिति पर निर्भर करता है। जिस समाज और देश में स्त्रियों की स्थिति जितनी अच्छी होती है, वह समाज और देश उतना ही प्रगतिशील होता है। स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों की स्थिति में कुछ हद तक बदलाव आया है। स्त्रियाँ सार्वजनिक कार्यों में पुरुषों के साथ काम करने लगी है। अब स्त्री सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक बंधनों से मुक्त हो रही हैं। अपने अधिकारों की मांग स्वयं करने लगी है। सिमोन द बाउवार के शब्दों में– "पुरुष ने सभ्यता के आदिकाल से अपनी शारीरिक शक्ति के कारण अपनी श्रेष्ठता स्थापित की। उनसे जो धर्म बनाए, जिन मूल्यों का गढ़ा, जिन आचरणों को मान्यता दी, वे सब उसकी अपनी सुविधा के लिए थे। उसके इस एकछत्र राज्य को औरत ने पहले कभी चुनौती नहीं दी। कहीं–कहीं कुछ महिलाओं ने व्यक्ति के रूप में, विरोध में आवाज उठाई, कुछ आंदोलन भी हुए, किंतु पुरुष ने उतनी ही माँगे स्वीकारी, जितनी वह देना चाहता था। पुरुष ने औरत का सबकुछ अपने हाथों में रखा। उसने स्त्री के स्वार्थ में उसकी नियति नहीं गढी, बल्कि अपनी परियोजनाओं और अपनी जरूरतों से वह नियोजित हुआ।।"[3] स्त्री को स्त्रीत्व का पाठ पढ़ाकर दास्तव के ढांचे में ढाला गया था। वर्तमान में अर्थ जगत में वह पुरुषों के समान अपनी अलग अर्थवत्ता प्राप्त कर रही है। स्त्रियाँ विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने लगी हैं। वह अर्थोपार्जन कार्यों में लिप्त होकर स्वावलंबी बन रही है और साथ ही अपने परिवार का भी भरण–पोषण करने में अहम भूमिका अदा कर रही है। परिवार में रहकर भी स्त्री कामकाजी है, अपने नौकरीपेशा और व्यवसायिक क्षेत्र में सफलतापूर्वक कुशलता से कार्य कर रही है। स्त्री के आत्मनिर्भरता का सीधा संबंध शिक्षा से होता है। शिक्षित स्त्री की तरह अशिक्षित स्त्रियाँ भी विभिन्न कार्यों के द्वारा जीविकोपार्जन कर रही हैं।

अलका सरावगी के 'कलि कथा वाया बाईपास' उपन्यास में मारवाडी किशोर बाबू को केंद्र में रखकर गुजरात से कोलकत्ता तक फैले उत्तर भारतीय समाज की व्यथाकथा संवेदनशीलता से दर्शाया है। मारवाड़ी समाज की स्त्रियों की घूटनभरे जीवन का मार्मिक चित्रण है। जिसके केंद्र में किशोर बाबू की विधवा भाभी है। मारवाडी समाज में विधवा स्त्री को बिना किनारी के सफेद साड़ियाँ पहनने के सिवाय और कुछ पहनने का अधिकार नहीं था। किशोर बाबू परंपरावादी सोच के व्यक्ति है। विधवा स्त्री को उसी दयनीय स्थिति में धकेल देना चाहते हैं– "तुम्हारी दिमाग क्या अब एकदम ही खराब हो गया गया है भाभी। उम्र बढ़ने के साथ–साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है पर मुझे लगता है यूं पी. वालों की अक्ल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक–मटक रंग की साड़ी पहनी है। क्या कहेंगे लोग देखकर। कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में।"[4] पुरुषप्रधान व्यवस्था में एक विधवा स्त्री का अच्छे कपड़े से मर्यादा खत्म होती है। बदलते समय के कारण किशोर बाबू अपनी पत्नी में स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास चाहते है परंतु उनकी सारी चेष्टाओं के बाद भी उनकी पत्नी के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाया। इसका कारण वह खुद स्वीकार करती है– "इसलिए कि तुमने मेरी नकेल हमेशा अपने हाथों में कसकर पकड़े रखी। कभी अपने आप कोई निर्णय लेने नहीं दिया चाहे कितनी मामूली से मामूली बात क्यों न हो।"[5] किशोर बाबू ने हमेशा अपनी पत्नी को चाबी की गुड़िया की तरह चलाया है। अपनी पत्नी की काबिलीयत पर कभी भी विश्वास नहीं किया है। मनुष्य की समस्या यही है कि वह किसी बने बनाए सिद्धांत पर पूरा जीवन नहीं चलता है। कई बार निजी स्वार्थों के कारण उसके सिद्धांत बदलते हैं। यह मनुष्य की प्रवृति है।

शिक्षा, विज्ञान और साजाजिक व्यवस्था के परिवर्तन से स्त्री की स्थिति में परिवर्तन आया है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्री अपने अधिकारों प्रति सजग है। जिससे वह प्राचीन रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्त होने लगी है।

कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में– "स्त्री की व्यथा पर आधुनिक काल के सभी रचनाकारों ने लेखनी उठाई है। लोक हृदय और लोक चिंता रचनाकर्ता की सच्ची पहचान है। साहित्य हमारे मनुष्य भाव की रक्षा का प्रयत्न है– जो हमें बेहतर मनुष्य बनाता है– भाव परिष्कार करता है और मनुष्यता की उच्च भूमि पर ले जाकर खड़ा कर देता है।"[6] साहित्य मनुष्य को परिष्कृत करने का काम करता है। मधु कांकरिया ने 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में स्त्री जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं और आयामों को चित्रित किया है। लेखिका इस उपन्यास के माध्यम से कहती है कि उसका विश्वास है कि इस संसार में रोटी तो मिलेगी किंतु उसकी कीमत बोटी देकर चुकाना पड़ता है। लेखिका लिखती है कि– "घर में कोई मर्द होता तो क्या ऐसे बोलने की हिम्मत कर सकता था वह? यह आदमियों की दुनिया है जो रोटी तो देगी पर बोटी नोच लेगी। फटी चदरी–सा यह घर अब तुम्हारे संभले–संभलेगा और मेरे।"[7] इस तरह लेखिका ने स्त्री जीवन की त्रासदी को पाठकों के सामने रखा है।

मिथिलेश्वर ने अपने उपन्यासों में स्त्री जीवन की त्रासदी के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया है। आज के दौर की स्त्री अपना बोझ स्वयं उठा रही है। वह श्रम करके अपने परिवार की आजीविका चला रही है। शिक्षित स्त्री नौकरी करती है और अशिक्षित स्त्री मजदूरी करती है। मजदूरी के बिना जीविका चलाना कठिन होता है। शिक्षित स्त्री अपनी शिक्षा का उपयोग अर्थोपार्जन के लिए करती है। अशिक्षित स्त्री श्रमशील होने के कारण अपने परिवार का पालन–पोषण करती है। 'युद्धस्थल' उपन्यास में मजदूर स्त्री का चित्रण मार्मिक आया है। भरतपुर गांव के रामशरण बहू के घर में दुखन की माँ जूठन माँजने का काम करती है। तब दुखन की माँ श्रम की महत्ता के संबंध में अपने बेटे दुखन से कहती है– "जूठन मांजती हूँ तो कोई चोरी नहीं करता हूँ...कमाकर खाने में कोई बुराई नहीं। अपनी बिरादरी की सभी औरतें तो कमाती ही हैं...तू अकेला कितना कमाएगा? मैं घर में बैठूं और तू कमाता–कमाता मरे, यह मुझसे नहीं देखा जाएगा। मैं अभी काम नहीं छोडूँगी।"[8] लेखक ने स्पष्ट किया है कि गांव की मजदूर स्त्री अपने काम को देखकर कभी हिचकिचाहट का अनुभव नहीं करती।

नासिरा शर्मा कृत 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में महरूख की व्यथाकथा का चित्रण है। महरुख की स्थिति और उसका रुढ़ियों का विरोध करना और उन बंधनों को तोड़कर घुनटभरे माहौल से निकलने हेतु संघर्ष करती है। महरूख शिक्षित स्त्री है। वह अपने चारों ओर के परिवेश से लड़कर जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती है। उपन्यास में रफतभाई अचानक वजीफा लेकर अमेरिका चले जाते है। उनके जाने से पहले सभी लोग महरूख से उसका विवाह कराने के इच्छुक थे। किंतु वह व्यावहारिक दृष्टि से इसे असंभव बताया जाता है और लौटकर आने पर ही विवाह करने का आश्वासन देकर जाता है। यह महरूख के लिए झटके जैसा ही था। उसके अस्तित्व की जड़ों को हिलाता है। बाद में पता चला कि उसने किसी अमेरिकी लड़की से विवाह कर लिया है। महरूख के सामने फिर विवाह का प्रस्ताव रखा जाता है। वह कहती है– "मैं जगह, चीज या मकान नहीं थी, रफत भाई जो वैसी की वैसी ही रहती। मैं इंसान थी, कमजोरियों का पुतला। मैंने आपको जिस भरोसे भेजा था। आप भी वैसे कहाँ रह पाएँ? कुछ चीजें कितनी बेआवाज टूटती है। मैं बेआवाज टूटी थी। किरच–किरच होकर बिखरी थी। बड़ी मुश्किल से अपने को चुना है, समेटा है, जोड़ा है, तब कहीं जीने के काबिल हुई हूँ। मुझसे अब मेरी यह जिंदगी वापस मत छिनिए।"[9] महरूख ठोस जमीन पर जीना चाहती है।

अंतिम रूप में वह अपना निर्णय लेकर कहती है– "मेरी जिंदगी पर सिर्फ मेरा हक है।"[10] रात में सोने से पहले सोचती है कि उसने जो भी निर्णय लिया वह सही है– "महरूख कमरे में बिस्तर पर औंधी पड़ी सोच

रही थी कि जिस महरूख को पूरा खानदान बचपन से मुझपर लादता आया था, वह महरूख मैं नहीं थी। मुझे सांस ही कब किसी ने लेने दी, जो मैं अपने अंदर छिपी लड़की को ढूंढती, समझती, पाती और पहचानती। आज अब मैंने अपने आपको पहचान लिया है, तो उस लड़की को पा लिया, जो मेरे अंदर है, जिसका सही नाम महरूख है और मैं दावे के साथ कह सकती हूँ।"[11] रफत के व्यवहार से उसके मन–मस्तिष्क पर चोट लग जाती है। उससे वह जल्दी बाहर नहीं आती। लेखिका ने महरूख के द्वारा स्त्री जीवन की त्रासदी को पाठक के सामने रखा है।

संदर्भ :–

1. सीमोन द बोउवार – अनुवादक प्रभा खेतान – स्त्री उपेक्षिता, पृ. सं. 121
2. मधु कांकरिया – सेज पर संस्कृत, पृ. सं. 46
3. सिमोन द बाउवार – स्त्री उपेक्षिता (अनु. प्रभा खेतान), पृ. सं. 68
4. अलका सरावगी – कलिकथा वाया बाईपास, पृ. सं. 61
5. अलका सरावगी – कलिकथा वाया बाईपास, पृ. सं. 159
6. कृष्णदत्त पालीवाल – उत्तर आधुनिकता की ओर, पृ. सं. 139
7. मधु कांकरिया – सेज पर संस्कृत, पृ. सं. 50–51
8. मिथिलेश्वर – युद्धस्थल, पृ. सं. 164
9. नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. 117
10. नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. 118
11. नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. 116

मो.नं. 7416289960

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 78-81

अर्थ केंद्रित होते पारस्परिक रिश्तों की त्रासद दास्तान ('दौड़' के विशेष संदर्भ में)

कीर्ति देवी

पीएच.डी. शोधार्थी (हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रवक्ता हिंदी, राजकीय सर्वोदय सह–शिक्षा विद्यालय, रानीखेड़ा, दिल्ली– 110081

सारांश (शोध-सार) :-

20वीं शताब्दी का अंतिम दशक परिवर्तन की बयार लेकर हमारे समक्ष आया है। आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण एवम् बढ़ते व्यापारीकरण ने न केवल समाज, शिक्षा, राजनीति, साहित्य और संस्कृति पर प्रभाव डाला है बल्कि रोजमर्रा के जीवन एवम् पारस्परिक रिश्तों को भी प्रभावित किया है। आज समाज में जीवन की धुरी 'अर्थ' (पैसा) है। सारे सांसारिक कार्य इसी पर टिके हैं। यहाँ तक कि वर्तमान मनुष्य के सम्बन्धों का आधार भी अर्थ ही बन गया है। इस 'अर्थ' की चाह के चलते न केवल भौतिक स्तर पर बल्कि, भावात्मक स्तर पर भी रिश्तों में दूरियाँ आ गईं हैं। रिश्तों में आई इन्हीं दूरियों की पड़ताल करता सन् 2000 में प्रकाशित ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' मानव–सम्बन्धों के आधारभूत परिवर्तन को रेखांकित करता है। अर्थ के पीछे भागता एवम् यांत्रिकता का जीवन जीता युवा–वर्ग किस प्रकार अपने सम्बन्धों से दूर होता जाता है, इसे सशक्त रूप में इस उपन्यास में उभारा गया है।

बीज शब्द :- अर्थ (धन), एकाकीपन, असुरक्षा बोध, भावात्मकता, आर्थिक तंत्र।

मूल आलेख :-

यह उपन्यास एक मध्यमवर्गीय परिवार के चार सदस्यों– रेखा, राकेश, पवन, सघन–के इर्द–गिर्द घूमता है। इसमें पवन एवं सघन आज के युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह युवा वर्ग कामयाबी के पीछे दौड़ लगाता अर्थ (धन) प्राप्ति को अपना एकमात्र लक्ष्य मानकर कार्यक्षेत्र में उतरता हैं किन्तु उसकी इस दौड़ में उसके अपने संबंध पीछे छूट जाते हैं। 'दौड़' में ममता कालिया ने इस कटु सत्य को बखूबी बयान किया है जहाँ माता–पिता बच्चों के सपनों को पूरा करने के लिए जीवन–भर संघर्ष करते हैं किन्तु उन्हीं सपनों के पीछे दौड़ लगाते बच्चे उन्हें एकाकीपन में जीवन बिताने को छोड़ देते हैं। जब पवन सघन को भी नौकरी के लिए अहमदाबाद ले जाने की बात करता है तब रेखा (उनकी माँ) कहती है–

''इसको भी ले जाओगे तो हम दोनों बिल्कुल अकेले रह जायेंगे। वैसे ही यह सीनियर सिटिजन कॉलोनी बनती जा रही है। सबके बच्चे पढ़–लिखकर बाहर चले जा रहे हैं। हर घर में, समझो एक बूढ़ा, एक बूढ़ी, एक कुत्ता और एक कार बस यह रह गया है।''[1]

वेतनवृद्धि न मिलने पर हर साल नौकरी बदलने वाले युवा वर्ग में स्थिरता समाप्त हो गई है। अर्थ (पैसे) के पीछे की दौड़ एवम् 'केरियर' में असुरक्षा बोध के चलते ही यह युवा वर्ग पुरानी नौकरी रहते हुए भी नई नौकरी की तलाश में रहता है। इसके चलते इस पीढ़ी का अपने जन्मस्थान से मोह छूटता जाता है। पवन के निम्न कथन के माध्यम से इस कटु सत्य से अवगत कराया गया है–

''पापा जहाँ हर महीने वेतन मिले, वही जगह अपनी होती है और कोई नहीं।[2]

इस सोच के चलते रिश्तों को भी अर्थ की तुला पर तोला जाने लगा है। रिश्तों में भावात्मकता खत्म हो गई है एवम् भौतिक वस्तुओं ने भावनाओं का स्थान ले लिया है। इसलिए जन्मदिन पर माँ द्वारा ग्रीटिंग कार्ड ना भेजे जाने पर पवन नाराज़ हो जाता है। रेखा का कथन कि ''उन्हें अपने बेटे को प्यार करने का नया तरीका सीखना पड़ेगा।''[3] पारस्परिक संबंधों के बिखरने की प्रक्रिया को दर्शाता है। जहाँ रिश्तों में गर्माहट खत्म होती जा रही है।

हमारे समाज में विवाह संस्थान का बहुत महत्व है। इसमें पति–पत्नी एक दूसरे के सुख–दुख में साथ रहने को प्रतिबद्ध भी होते हैं। यह संबंध भी आज अर्थ पर आधारित हो गया है। आज विवाह एक 'डील' बन गया है जहाँ पैसा देखकर सम्बन्ध जोड़ा जाता है। उपन्यास में पवन भी स्टैला का 'लाखों का कारोबार' देखकर उससे शादी करता है। यहाँ तक की अर्थ के पीछे भागने के कारण उसका व्यक्तिगत जीवन इतना व्यस्त बन गया है कि खुद की शादी तक के लिए उसके पास समय नहीं। पवन अपनी माँ से कहता है–

''हमारे एजेन्डा पर बहुत सारे काम हैं। शादी के लिए हम ज्यादा से ज्घ्यादा चार दिन खाली रख सकते हैं।''[4]

इतना ही नहीं विवाह के तुरंत बाद भी पवन और स्टैला साथ नहीं रह पाते। जहाँ पवन चेन्नई चला जाता है तो स्टैला अहमदाबाद। उन्हें अपने सपनों, अपने भविष्य तथा पैसे की चकाचौंध के आगे रिश्ते–नाते एवम् संबंधों की अहमियत का कोई बोध नहीं होता। रिश्तों के लिए अपने सपनो से समझौता करना उन्हें व्यर्थ की बात लगती है। पवन भी अपने पिता से कहता है– ''मैं अपना कैरियर, अपनी आजादी कभी नहीं छोड़ूँगा।''[5]

वर्तमान समय में रिश्तों में भावात्मकता समाप्त होती जा रही है एवम् उसका स्थान व्यावहारिकता ने ले लिया है। आजकल रिश्ते इंटरनेट और फोन के जरिए निभाए जाने लगे हैं। यहाँ तक कि इसके लिए भी फुर्सत मिलना मुश्किल हो गया है। पवन स्टैला के विषय में कहता है कि– ''यह इतनी व्यस्त रहती है कि इंटरनेट और फोन पर मुझसे बात करने की फुर्सत निकाल ले यही बहुत है।''[6]

अपनी तरक्की और पैसा कमारे की ललक में वर्तमान युवा–पीढ़ी रिश्तों की अहमियत ही भूल गई है। इसलिए उनमें रिश्ते टूटने के स्थान पर नौकरी खोने का भय कहीं ज्यादा है। इसलिए अब वे नौकरियों को ज्यादा

समय दे रहे हैं और रिश्तों को कम। इसका त्रासद परिणाम पवन के इन शब्दों में देखा जा सकता है– ''ढाका चला गया था, वहाँ से मुम्बई उतरा तो सोचा स्टैला को भी देखता चलूँ। वह क्या है उसकी शक्ल भी भूलती जा रही थी।''[7]

वर्तमान दौर में परिवार पर आर्थिक तंत्र हावी हो गया है। रिश्तों के मर्म पर आर्थिक तंत्र के निर्मम प्रहार से परिवार के सदस्यों के बीच दूरी, खालीपन एवम् निराशा बढ़ी है। उपन्यासकार के शब्दों में– ''अकेलेपन के साथ सबसे जानलेवा होते हैं उदासी और पराजय बोध।''[8] परिवार के बुजुर्ग सदस्य इस अकेलेपन का दंश अधिक भोगते हैं। लगभग प्रत्येक महानगर या छोटे कस्बों में ऐसी कॉलोनियाँ मिल जाएँगी जहाँ केवल वृद्धों का ही निवास है। उनके बेटे–बेटी पढ़–लिखकर विदेश या बड़े शहरों में बस जाते हैं और अपने पीछे असुरक्षा बोध से ग्रसित बूढ़े माँ–बाप को छोड़ जाते हैं। इस पीड़ा को उपन्यासकार ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है– ''बच्चों को सुरक्षित भविष्य के लिए तैयार कर हर परिवार के माँ बाप खुद एकदम असुरक्षित जीवन जी रहे थे।''[9]

वर्तमान समाज जितना भौतिक स्तर पर जी रहा है, संवेदना के स्तर पर वह उतना ही निम्नतम स्तर पर जी रहा है। इन मरती हुई संवेदनाओं का कड़वा सच बड़े ही वेदनापूर्ण रूप में ममता कालिया ने 'दौड़' में दिखाया गया है। पैसा कमाने की अंधी दौड़ में युवा वर्ग इतना व्यस्त हो चुका है कि उनके पास अपने माता–पिता की मृत्यु पर दाह–संस्कार करने आने तक का समय नहीं है। उपन्यास में मिस्टर सोनी की दिल का दौरा पड़ने से आकस्मिक मृत्यु होने पर विदेश रह रहे उनके बेटे को दाह–संस्कार करने तक की फुर्सत नहीं होती। वह अपनी माँ को सलाह देता है–

''आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा बना कर दाह संस्कार करवाइए। मेरे लिए तेरह दिन रूकना मुश्किल होगा। आप सब काम पूरे करवा लीजिए।''[10] उपर्युक्त कथन मानवीय संबंधों की त्रासदी को व्यक्त करता है।

अतरू पैसे के पीछे भागने वाली एवं नौकरी को ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य मानने वाली युवा–पीढ़ी अपने कर्तव्यों एवम् रिश्तों से किस प्रकार मुँह मोड़ रही है, 'दौड़' में इसका सशक्त चित्रण हुआ है।

संदर्भ सूची :–

1. दौड़रू ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2000, पृ. 43
2. वही, पृ. 48
3. वही, पृ. 47
4. वही, पृ. 62
5. वही, पृ. 71
6. वही, पृ. 71
7. वही, पृ. 82

8. वही, पृ. 75

9. वही, पृ. 82

10. वही, पृ. 89

सहायक ग्रंथ सूची :–

1. भूमण्डलीकरण और भारत (परिदृश्य और विकल्प) : अमित कुमार सिंह, सामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2010
2. भारत का भूमण्डलीकरण : सम्पादक – अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2007
3. भूमण्डलीकरण और हिंदी उपन्ध्यास – पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2012
4. 21वीं शती का हिंदी उपन्यास : पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2015
5. 21वीं सदी – मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2003

E mail : kkirti576@gmail.com

Phone No- : 9821790673

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 82-85

भारत की संस्कृति, रीति-रिवाज और भारतीय परंपराएँ

Dr. Sajitha J

Asst. Prof Hindi, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Coimbatore.

Dr. S.Swarnalatha

Assoc Prof & Head, Dept of Hindi, Nehru Arts and Science College, CBE

प्रस्तावना :-

भारतीय संस्कृति और परंपराएँ ऐसी चीज़ हैं जो अब पूरी दुनिया में प्रसिद्ध हो गई हैं। हम सभी भारत के रीति–रिवाजों और परंपराओं को बहुत ही विविध और अद्वितीय मानते हैं। लेकिन शायद ही कभी हम इस बात पर विचार करते हैं कि चीज़ें कुछ विशिष्ट तरीकों से क्यों की जाती हैं। भारतीय संस्कृति कई अनोखे रीति–रिवाजों और परंपराओं से भरी है, जो बाहरी लोगों को दिलचस्प लग सकती है। इनमें से अधिकांश की उत्पत्ति प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों और ग्रंथों से हुई है, जिन्होंने हजारों वर्षों से भारत में जीवन का तरीका तय किया है।

भारतीय संस्कृति, परंपराएँ और रीति-रिवाज :-

1. अभिवादन
2. धार्मिक रीति–रिवाज
3. भारत के त्यौहार
4. प्रतीक
5. भोजन
6. पारिवारिक संरचना एवं विवाह
7. परंपरागत वेषभूषा
8. महाकाव्य एवं पौराणिक कथाएँ
9. भाषाएँ

1. अभिवादन :-

नमस्कार - नमस्ते

नमस्ते सबसे लोकप्रिय भारतीय रीति–रिवाजों में से एक है और अब यह केवल भारतीय क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है।

2. त्यौहार एवं धर्म :-

भारत में बड़ी संख्या में त्यौहार मनाए जाते हैं, जिसका मुख्य कारण विविध धर्मों और समूहों की व्यापकता

है। मुसलमान ईद मनाते हैं, ईसाई क्रिसमस और गुड फ्राइडे मनाते हैं, सिख बैसाखी (फसल की कटाई) और अपने गुरुओं का जन्मदिन मनाते हैं और हिंदू दिवाली, होली, मकर सक्रांति मनाते हैं, जैन महावीर जयंती मनाते हैं, बौद्ध मनाते हैं।

3. पारिवारिक संरचना – संयुक्त परिवार :–

भारत में संयुक्त परिवार की अवधारणा मौजूद है, जिसमें पूरा परिवार (माता–पिता, पत्नी, बच्चे और कुछ मामलों में, रिश्तेदार) सभी एक साथ रहते हैं। ऐसा ज्यादातर भारतीय समाज की एकजुट प्रकृति के कारण होता है, और कथित तौर पर दबाव और तनाव से निपटने में भी मदद मिलती है।

4. प्रतीक – उपवास :–

उपवास हिंदू संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। व्रत या उपवास आपकी ईमानदारी और संकल्प को दर्शाने या देवी–देवताओं के प्रति अपना आभार व्यक्त करने का एक तरीका है। पूरे देश में लोग विभिन्न धार्मिक अवसरों के दौरान उपवास रखते हैं। कुछ लोग उस विशिष्ट दिन से जुड़े किसी विशेष भगवान या देवी के पक्ष में सप्ताह के अलग–अलग दिनों में उपवास भी रखते हैं।

5. धार्मिक रीति-रिवाज – पवित्र गाय :–

भारतीय संस्कृति में गाय को एक पवित्र पशु माना जाता है। उन्हें मातृ स्वरूप के रूप में और यह धरती माता की उदारता का चित्रण है। भगवान कृष्ण, जो गाय चराने वाले के रूप में बड़े हुए, को अक्सर गायों और गोपियों के बीच उनकी धुन पर नृत्य करते हुए बांसुरी बजाते हुए चित्रित किया गया है। दिलचस्प बात यह है कि भगवान कृष्ण को 'गोविंदा' या 'गोपाल' के नाम से भी जाना जाता है, जिसका अनुवाद 'गाय का मित्र और रक्षक' होता है। अतः भारतीय संस्कृति एवं धर्म में गाय का विशेष महत्व है।

6. वास्तुकला – मंदिरों के पीछे का विज्ञान :–

अधिकांश मंदिर पृथ्वी की चुंबकीय तरंग रेखाओं के साथ स्थित हैं, जो उपलब्ध सकारात्मक ऊर्जा को अधिकतम करने में मदद करते हैं। मुख्य मूर्ति के नीचे दबी तांबे की प्लेट (जिसे गर्भगृह या मूलस्थान कहा जाता है) इस ऊर्जा को अवशोषित करती है और अपने आसपास के वातावरण में प्रतिध्वनित करती है। मंदिर जाने से अक्सर सकारात्मक दिमाग रखने और सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त करने में मदद मिलती है, जिसके परिणामस्वरूप स्वस्थ कामकाज होता है।

7. विवाह – व्यवस्थित विवाह प्रणाली :–

भारत में व्यवस्थित विवाह की अवधारणा की उत्पत्ति वैदिक काल से ही मानी जाती है। शाही परिवारों के लिए, दुल्हन के लिए 'स्वयंबर' के नाम से जाने वाला एक समारोह आयोजित किया जाता था। पूरे राज्य से उपयुक्त जोड़ियों को आमंत्रित किया गया था ताकि या तो दुल्हन को जीतने के लिए किसी प्रतियोगिता में भाग लिया जा सके, या दुल्हन स्वयं अपना आदर्श पति चुनेगी। आज भी, अरेंज मैरिज की अवधारणा भारतीयों के बीच पसंदीदा बनी हुई है और यह 'भारतीय परंपराओं' का एक अभिन्न अंग है।

8. धार्मिक प्रतीक :–

भारतीय परंपराओं और धर्मग्रंथों में विभिन्न संकेत और प्रतीक मौजूद हैं जिनके कई अर्थ होते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय संदर्भ में स्वास्तिक का प्रयोग एडॉल्फ हिटलर या नाज़ीवाद की ओर इशारा नहीं

करता है। यह विघ्नहर्ता भगवान गणेश का प्रतीक है। स्वास्तिक की भुजाओं के विभिन्न अर्थ हैं। वे चार वेदों, चार नक्षत्रों, या मानव खोज के चार प्राथमिक उद्देश्यों का संकेत देते हैं।

9. परंपराएं एवं रीति-रिवाज – अतिथि देवो भवः :

भारत में 'अतिथि देवो भवः' की कहावत भी चरितार्थ होती है। इसका अर्थ है 'अतिथि भगवान के समान है'। यह हिंदू धर्मग्रंथों से लिया गया एक संस्कृत श्लोक है, जो बाद में 'हिंदू समाज के लिए आचार संहिता' का हिस्सा बन गया क्योंकि भारत की संस्कृति में अतिथि का हमेशा सर्वोच्च महत्व रहा है।

10. भारत की पोशाकें – भारतीय जातीय परिधान :-

भारतीय महिलाओं को अक्सर 'साड़ी' पहने हुए देखा जाता है। साड़ी एक ही कपड़ा है और इसमें सिलाई की जरूरत नहीं होती; इसे बनाना आसान है और पहनना आरामदायक है, साथ ही यह धार्मिक शिष्टाचार का भी पालन करता है।

11. भारतीय नृत्य :-

भारत 'अनेकता में एकता' की भूमि है, और हमारे नृत्य भी अलग नहीं हैं। नृत्य के विभिन्न रूप (लोक या शास्त्रीय के रूप में वर्गीकृत) देश के विभिन्न हिस्सों से उत्पन्न होते हैं, और वे उस विशेष संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने का एक तरीका हैं जिससे वे उत्पन्न होते हैं। आठ शास्त्रीय नृत्य, जिन्हें भारतीय शास्त्रीय नृत्य के रूप में वर्गीकृत किया गया है और जिनका उल्लेख हिंदू संस्कृत पाठ 'नाट्यशास्त्र' (प्रदर्शन कलाओं का एक पाठ) में मिलता है, वे हैं :

1. तमिलनाडु से भरतनाट्यम
2. केरल से कथकली
3. उत्तर, पश्चिम और मध्य भारत से कथक
4. केरल से मोहिनीअट्टम
5. आंध्र प्रदेश से कुचिपुड़ी
6. मणिपुर से मणिपुरी
7. असम से सत्त्रिया।

12. भारतीय भोजन :-

भारतीय भोजन और व्यंजन न केवल भारत की संस्कृति का अभिन्न अंग हैं बल्कि दुनिया भर में भारत की लोकप्रियता के महत्वपूर्ण कारकों में से एक हैं। खाना पकाने की शैली अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग होती है, हालांकि सर्वसम्मति से, भारतीय भोजन मसालों और जड़ी–बूटियों के व्यापक उपयोग के लिए महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा रखता है।

13. धर्मग्रन्थ-महाकाव्य :-

भारतीय साहित्य का पता कविताओं, नाटकों, कहानियों और यहां तक कि स्व–सहायता मार्गदर्शिकाओं के रूप में लिखे गए महान महाकाव्यों में लगाया जा सकता है। सबसे प्रसिद्ध हिंदू महाकाव्य रामायण और महाभारत हैं। वेद व्यास द्वारा लिखित महाभारत, संस्कृत में लिखी गई सबसे लंबी कविता है। ये दोनों महाकाव्य त्याग, निष्ठा, भक्ति और सत्य के मानवीय मूल्यों को उजागर करने के लिए लिखे गए हैं। दोनों कहानियों का

नैतिक बुराई पर अच्छाई की जीत का प्रतीक है।

14. हाथ से खाना :–

हाथों से खाना खाना कई लोगों को अच्छा नहीं लगता। हालाँकि, इसके कई फायदे हैं। उंगलियां गर्मी रिसेप्टर्स होती हैं, गर्म भोजन अंदर डालने पर वे आपके मुंह को जलने से रोकती हैं। आप खाना खाने से पहले तापमान की जांच कर लें। परंपरागत रूप से, खाने के लिए दाहिनी ओर का उपयोग किया जाता है, और बाएं हाथ को गंदा माना जाता है। खाना खाने से पहले व्यक्ति को अपने हाथ साबुन और पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए। यह अभ्यास खाने की प्रक्रिया को बहुत स्वच्छ बनाता है।

15. भाषाएँ :–

भारत सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई रूप से बहुत विविधतापूर्ण है। हिंदी और अंग्रेजी व्यापक रूप से बोली जाती हैं और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए मान्यता प्राप्त हैं। इसके अलावा, भारत के संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त 22 अनुसूचित भाषाएँ हैं। हालाँकि, भारत में 400 से अधिक भाषाएँ और बोलियाँ अभी भी अज्ञात हैं। राज्य में कुछ किलोमीटर की यात्रा से भी बोलियाँ बदल जाती हैं।

निष्कर्ष :–

भारतीय संस्कृति, जिसे अक्सर कई विभिन्न संस्कृतियों का मिश्रण कहा जाता है, पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैली हुई है और कई हजार साल पुराने इतिहास से प्रभावित और आकार ली गई है। भारत के पूरे इतिहास में, भारतीय संस्कृति धार्मिक धर्मों से काफी प्रभावित रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भारतीय संस्कृति महान् एवं विलक्षण– Indian Culture Great and Unique, डॉ. शिवकुमार ओझा।
2. भारतीय कला एवं संस्कृति – नितिन सिंगानिया।

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 86-91

चंद्रकांत देवताले की कविताओं का भाषिक चिंतन

पूजा यादव, शोध छात्रा
डॉ० मुकेश कुमार, शोध निर्देशक
हिंदी विभाग, अरुणोदय यूनिवर्सिटी, ईटानगर (अरुणाचल प्रदेश)

शोध पत्र सारांश :-

कवि चंद्रकांत देवताले समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इनका चिंतन बहुआयामी है। देवताले जी अपनी कविता के सघन बुनावट उसमें निहित राजनीति के निहित संवेदनशील है। इनकी कविताओं में व्यंग तथा जनसाधारण हित की भाषा के दर्शन होते हैं।

इनकी कविताओं में भारतीय के साथ–साथ विदेशी भाषा के दर्शन भी होते हैं, संगीतात्मक राग इनकी भाषा में गूंज उठता है। छोटे–छोटे शब्दों में व्यापकता दिखाई देती है द्य प्रतीकों, बिम्बों, सौंदर्यता के दर्शन होते हैं।

बीज शब्द :- आधुनिकता, संगीतात्मकता, सौंदर्यता, गाँव, भारतीय लोकतंत्र, यथार्थवाद आदि।

"चंद्रकांत देवताले (जन्म– 7 नवंबर, 1936, जौलखेड़ा, बैतूल, मध्य प्रदेशय मृत्यु– 14 अगस्त, 2017) प्रसिद्ध भारतीय कवि एवं साहित्यकार थे। उच्च शिक्षा इंदौर से हुई तथा पी–एच.डी. सागर विश्वविद्यालय, सागर से। साठोत्तरी हिंदी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर देवताले जी उच्च शिक्षा में अध्यापन कार्य से संबद्ध रहे हैं।

देवताले जी की कविता में समय और सन्दर्भ के साथ ताल्लुकात रखने वाली सभी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक प्रवृत्तियाँ समा गई हैं। उनकी कविता में समय के सरोकार हैं, समाज के सरोकार हैं, आधुनिकता के आगामी वर्षों की सभी सर्जनात्मक प्रवृत्तियां इनमें हैं। उत्तर आधुनिकता को भारतीय साहित्यिक सिद्धांत के रूप में न मानने वालों को भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि देवताले जी की कविता में समकालीन समय की सभी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से आप उत्तरआधुनिकता को मानें या न मानें, ये कविताएँ आधुनिक जागरण के परवर्ती विकास के रूप में रूपायित सामाजिक सांस्कृतिक आयामों को अभिहित करने वाली हैं।

वह देश की 24 भाषाओं में विशेष साहित्यिक योगदान के लिए प्रख्यात साहित्यकारों में शामिल थे। चंद्रकांत अपनी कविता की सघन बुनावट और उसमें निहित राजनीतिक संवेदना के लिए जाने जाते थे। वे 'दुनिया का सबसे गरीब आदमी' से लेकर 'बुद्ध के देश में बुश' तक पर कविताएं लिखते थे। देवताले वंचितों की महागाथा के कवि थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं में दलितों, वंचकों, आदिवासियों, शोषितों को जगह दी। उनकी कविताओं में न्याय पक्षधरता के साथ साथ ग्लोबल वार्मिंग जैसी आधुनिक चुनौतियों पर भी विमर्श दिखता है।"[1]

उनकी कविताओं के अनुवाद प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में और कई विदेशी भाषाओं में हुए हैं। देवताले की कविता की जड़ें गाँव—कस्बों और निम्न मध्यवर्ग के जीवन में हैं। उसमें मानव जीवन अपनी विविधता और विडंबनाओं के साथ रहता है। कवि में जहाँ व्यवस्था की कुरूपता के खिलाफ गुस्सा है, वहीं मनुष्यता प्रेम—भाव भी है। वह अपनी बात सीधे और मारक ढंग से कहते हैं। कविता की भाषा में अत्यंत पारदर्शिता और एक विरल संगीतात्मकता दिखाई देती है।

बैतूल में हिंदी और मराठी बोली जाती है, इसलिए उनके काव्य संसार में यह दोनों भाषाएं जीवित थीं। मध्य भारत का वह हिस्सा जो महाराष्ट्र से छूता है, उसमें मराठी भाषा पहली या दूसरी भाषा के रूप में बोली जाती रही है। बैतूल भी ऐसी ही जगह है। अपने प्रिय कवि मुक्तिबोध की तरह देवताले मराठी से आंगन की भाषा की तरह बर्ताव करते थे। यह उनकी कविताओं में बार—बार देखा जा सकता है। वह इंदौर में रहे और इंदौर को अपनी सार्वदेशिकता के कारण मध्य भारत का मुंबई कहा जाता है। यह सार्वदेशिकता उनकी कविताएं भी बयान करती हैं। देवताले काफी पढ़े लिखे इंसान थे।"[2]

युवा कवियों के लेखन का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार है। अलंकार विहीन, आडम्बर विहीन भाषा, जो समकालीन बोध का नग्न साक्षात्कार करती है। कवि आंतरिक उबाल के आवेग में निर्लंकृत भाषा का प्रयोग करता है। सामाजिक ढोंग को फेंककर आडम्बर एवं नंगी खड़ी होने वाली कविता हर एक देश में पनपी है। ये कवि अपनी भाषा से दुहरा आक्रामक बोध प्रकट करते हैं। समाज में पनपने वाले अन्याय तथा काव्य में पूर्व निश्चित आचार संहिता, इन दोनों के प्रति उन्होंने आक्रामक भाव दिखाया है। नई कविता के कुछ कवि भागकर समकालीन कविता में शामिल हो गए। वे देखते—देखते लोकधर्म की प्रतिष्ठा का मार्ग ग्रहण करने लगे। समकालीन कविता में दो—तीन वर्ष पूर्व उत्पन्न हुई कविता जिसमें यौन रूग्णता, कामुक यथार्थ तथा अश्लील सौंदर्यबोध का मानसिक सम्मोहन था। ऐसे समय में ही समकालीन कविता ने लोकधर्म की प्रतिष्ठा का मार्ग ग्रहण कियां जो कविता पहले समाज का प्रतिबिम्ब भाव थी, समकालीन कविता उसे ही सामाजिक संरचना का आकार प्रदान करने का प्रयास करने लगी।

समकालीन कविता के कवियों ने आज की सामाजिक स्थिति, आम आदमी की हालत, हालात से जूझने और संघर्ष की दिशाओं को अभिव्यक्ति दी है। यथास्थिति की स्वाकारोक्ति नहीं, स्थितियों के प्रति व्यंग्य, गहरी छटपटाहट, विद्रोह और आक्रोश के भाव अभिव्यक्त हुए हैं। इस प्रकार जहाँ समकालीन कविता के पूर्व नई कविता ने समाज में व्याप्त स्थितियों के चित्रण मात्र हैं वहीं समकालीन, कविताएँ संरचना को उभारने देखने, टटोलने और अन्वेषित करने का विधान है।

"चन्द्रकांत देवताले के अब तक के समग्र काव्य संग्रहों को देखा जाए तो उनकी काव्य—भाषा अत्यंत सुखद विकास का प्रमाण है। शुरूआती संग्रह 'हड्डियों में छिपा ज्वर' से लेकर 'उजाड़' में संग्रहालयों तक आते—आते देवताले ने भाषा का एक लम्बा अंतराल पार किया है। अपनी अंतरंग रचनाओं में कवि की भाषा अधिक से अधिक पारदर्शी और परिष्कृत हुई है, जिसमें साठ और सत्तर के दशक की सघनता और गठीलापन समय और अनुभव के प्रवाह में मँजकर एक विरल संगीत्मकता तक पहुँचे हैं। चन्द्रकांत देवताले अपनी कविताओं में हमेशा सीधे सम्बोधन की भाषा के कायल रहे हैं। इनकी कविता में बिम्बों और प्रतीकों का भरपूर उपयोग हुआ है। इनके कुछ बिम्ब और कूट शब्द जैसे घोड़ा, पत्थर, चट्टान, चाकू, समुद्र, आकाश, धरती, पृथ्वी, आदि

बार–बार कविताओं में प्रयोग हुए हैं। देवताले कविता की भाषा में शब्द और अर्थ के बीच संघर्ष झेलते–झेलते लहुलुहान होने की स्वीकृति भी करते हैं। अपनी कविता 'रचना प्रक्रिया' में कहा है :–

''हाथों में होते हैं अर्थ
पारे की तरह
और ठीक रेत की मार्निद
मैं रोपना चाहता हूँ
पारे को रेत में
और फिर रेत को
अपने ही भीतर.....।''[3]

कविता देवताले की भाषा में व्यंग्य, फंतासी, नाटकीयता, बिम्ब, प्रतीक एवं कथात्मकता जैसे तत्व दृष्टिगत होते हैं। इनकी भाषा पाठक का आत्मीय रिश्ता कायम करती हुई अनुभूति की हर परत को ऐसे उघाड़कर रख देती है कि अनेक बार तो पाठक यही अनुभव करता है कि कथात्मकता ही भाषा बन गई है। आमतौर पर देवताले की भाषा बोलचाल की भाषा है। 'भूखण्ड तप रहा है' में कथात्मकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है :–

''मक्के की रोटी को कान्दे से चबाते हुए
त्रिभुवन ने चूल्हा फूकती माँ को सुनाया था किस्सा
तभी खबर लेकर आए थे पिता तहसील
से हाँफते कचहरी में हार गए मुकदमा
पुश्तैनी जमीन का आखिरी टुकड़ा
जमींदार के जबड़े में समा गया।''[4]

प्रस्तुत पंक्तियों में सामान्य जनभाषा तथा सीधी–सादी सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। देवताले उन कवियों में से है जिनके लिए कविता की भाषा और जीवन का व्यवहार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। 'लैब्रेडोर' कविता श्रृंखला में चन्द्रकांत देवताले ने सजगता और संघर्ष का एक सर्वथा नया तथा सार्वजनिक माध्यम चुना है। जबकि 'गाँव तो थूक नहीं सकता था मेरी हथेली पर' और 'नागझिरी' जैसी लम्बी कविता को भी देवताले ने भाषा के माध्यम से साधा है।

देवताले ने अपनी कविता में कई जगहों पर भारतीय लोकतंत्र और शासकीय यंत्रणा पर व्यंग्य के माध्यम से कटु टीका–टिप्पणी की है। इतिहास–पुरुष, लोकतंत्र, भारतीय जनता उच्च वर्ग के शासक नेता, उनकी मक्कारी और ढोंग सभी का एक प्रचण्ड चित्र कविता में साकार होता है। लगभग इसी थीम पर लिखी एक कविता है– 'सवारी की प्रतीक्षा के खाली समय में।' देश की जनता का भेड़ चरित्र उजागर करती हुई कविता 'कीचड़ की दीवार' में लोकतंत्र और शासन की स्थिति पर वक्रतापूर्ण टिप्पणी करते हुए कवि ने व्यंग्य का भरपूर उपयोग किया है :–

''दाल मिलों की दीवारों के खंदक में
चूहों ने प्रासाद बना लिए हैं

गन्ना मिल के दरवाजों पर
अनशनकारी अँधेरा फाँक रहे हैं
और कालिदास के चोर दरवाजों को खोलकर
संस्कृति तीसरी शताब्दी का मेक–अप कर रही है।
सभ्यता के इस उफनाते हुए उजाले में
भूमिगत कैंसर के खिलाफ
अपनी एक निहत्थी कविता को लेकर
मैं भी कीचड़ की दीवार पर
कुछ छाप देना चाहता हूँ
कीचड़ के बोगदे में
भोंपू बज रहा है।''[5]

'किफायती अटकलें भी इसी प्रकार का कथ्य प्रकट करती है 'नहीं है ईमान का महकमा कोई', चीख के बारे में, यह जाते दिसम्बर की आवाज है, जैसी कविताओं में भी भाषण–शैली के साथ–साथ व्यंग्य किया गया है। 'वो पाँचों और हम सब' में भरपूर व्यंग्य की बौछार की गई है।

''हमारे लिए सुख के अण्डे की
खोज में
वो पाँचों मुर्गी ढूँढ़ने निकले थे
मुर्गी ढूँढ़ने निकले थे वे
कुछ–कुछ सुनहरे पंखो वाली
सुनहरे पंखो वाली मुर्गी
जो देने वाली थी
सफेद चन्द्रमा जैसा सुख का अण्डा।''[6]

किसी भी काव्यकृति के मनोवैज्ञानिक, सौन्दर्यात्मक विवेचन के लिए उसमें प्रयुक्त प्रतीकों और बिम्बों को विश्लेषित करना आवश्यक होता है। प्रतीक और बिम्ब अर्थ के स्त्रोत होते हैं और साथ ही कवि के संवेदनात्मक उद्देश्य को रूपायित करते हैं। चन्द्रकांत देवताले के प्रतीकों और बिम्बों के विषय में भी यह बात पूर्ण रूप से घटित होती है। उनके प्रतीक और बिम्ब ही उनके अर्थ के स्त्रोत हैं।

चन्द्रकांत देवताले अपनी कविताओं में ऐसे प्रतीकों का निर्माण करते हैं कि उन प्रतीकों के द्वारा हमारे सामने वस्तु स्थिति का चित्र हमारी आँखों के सामने करते हैं। उनकी एक कविता है 'बोपे गाँव' यह गाँव आपातकालीन गाँव है। इस गाँव के आपातकालीन लोगों की स्थिति को वह अपनी कविता में व्यक्त करते हैं। इस कविता में आपातकालीन 'बोपेगाँव' का चित्रण करना उनका लक्ष नहीं बल्कि उसके माध्यम से तमाम आपातकालीन गाँवों की स्थिति का मुआयना करना है याने 'बोपेगाँव' एक प्रतीक के रूप में हमारे सामने आता है :–

तभी दो आदमी

एक मरे जानवर की देह को घसीटकर लाते दिखते हैं
अकाल के कुएँ से निकलकर
जैसे दो मोटों का चमड़ा
आदमी बनकर सूखे में चलने लग गया है
और नजदीक आने पर
जब तुम पूछते हो उनसे
वे कहते हैं यही हैं बोपेगाँव
और दो लकड़ी के हाथ
पत्थरों के चेहरों के बीच
दियासलाई जलाते हैं
तभी एक चूहा दौड़कर आता है
बीड़ी सुलगने के साथ धुआँ
और शिनाख्त के बाहर पड़ी पशु–लाश से
बदबू का भभका उठता है
तुम सोचते हो
कितनी चीजें नहीं हैं
कितनी चीजें मौजूद हैं
क्या यही है बोपे गाँव।''[7]

चन्द्रकांत देवताले ने अपनी रचनाओं का निर्माण मुक्त छन्द में किया है उदाहरण के तौर पर हम उनकी कुछ कविताओं को देख सकते हैं।

''धनुष पर बैठी चिड़िया को वह देखती है
पहली बार दीवार पर
लटका धनुष उसे नागवार लगता था
हमेशा एक हिंसक स्मृति की तरह
गलत जगह और समय में टंगा हुआ बेबात
पर अभी इस पाली रोशनी में
उसे नहीं लगा चिड़िया बाण की तरह छूटकर
फिर जा टकराएगा या टपक पड़ेगी लहुलुहान
पके फल के तरह धनुष के इस खतरनाक पेड़ से।''[8]

मुक्त छन्द के अध्ययन से दो बातें स्पष्ट होती हैं, पहली मुक्त छन्द में भाव प्रसार की निरन्तरता रहती है और दूसरी काव्यानुभूति की सम्प्रेषणीयता के व्याघातों का निवारण होता है। अगर हम एक वाक्य में उसकी व्याख्या करना चाहें तो हम कह सकते हैं 'मुक्त छन्द' वह छन्द है जिसका प्राणतत्त्व 'लय' है।

डॉ० मुकेश कुमार के अनुसार – "चन्द्रकांत देवताले ग्रामीण भाषा के यथार्थवादी कवि हैं।"

निष्कर्ष :–

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि चन्द्रकांत देवताले कथ्य और शिल्प की दृष्टि से सहज, सरल और सुबोध भाषा के कवि हैं। उनकी कविता का समग्र प्रभाव पाठक से मस्तिष्क पर एक विशेष छाप अंकित करता है। सामान्यतः वे जन भाषा के कवि हैं। अतः शब्द शिल्पी की तरह भावानुकूल शब्दों का प्रयोग कविता में करते हैं। इनकी कविता में कहीं–कहीं पर नाटकीयता के साथ–साथ व्यंग्य का पुट भी दृष्टिगत होता है। उनकी भाषा में सपाट बयानी के साथ–साथ सच्चाई का यथार्थ रूप मिलता है। जो पाठक के मन में एक बेचैनी पैदा करता है। चन्द्रकांत देवताले वास्तव में उच्च कोटि के कवि माने जाते हैं।

संदर्भ :–

1. चंद्रकांत देवताले, हिन्दी साहित्यकार– साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हिन्दी भाषा के साहित्यकार। इस श्रेणी में निम्नलिखित 2 उपश्रेणियाँ हैं,
   अज्ञेय, (6 पृ)
   हरिशंकर परसाई, (1 श्र, 3 पृ)
2. चंद्रकांत देवताले की कविताएं इंसानी तमीज की कविताएं हैं (हिंदी) thewirehindi.com
3. चंद्रकांत देवताले, दीवारों पर खून से, पृष्ठ 10
4. चंद्रकांत देवताले, भूखण्ड तप रहा है, पृष्ठ 31
5. चंद्रकांत देवताले, रोशनी के मैदान की तरफ, पृष्ठ 27
6. चंद्रकांत देवताले, रोशनी के मैदान की तरफ, पृष्ठ 41
7. चंद्रकांत देवताले, आग हर चीज में बताई गई थी, पृष्ठ 106–108
8. चंद्रकांत देवताले, आग हर चीज में बताई गई थी, पृष्ठ 13
9. डॉ० मुकेश कुमार, कवि चंद्रकांत देवताले का रचना संसार, पृष्ठ 9

नाम – POOJA YADAV
पता – BUILDING NAME & MAN OPUS] BLDG No- 7] 13TH FLOOR] FLAT 1302] WESTERN& EXPRESS HIGHWAY] KASHIMIRA] NEAR LAXMI MOTORS MIRA ROAD ¼EAST½] THANE& 401107 MAHARASHTRA
ईमेल – yadavpoo0706@gmail-com
मोबाइल संख्या – 9757202627

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 92-97

श्रीमद्भगवद्गीता की अचिन्त्यभेदाभेदवादी टीकाओं में कर्मयोग

डॉ. अंजना शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर,
रीना कुमारी, शोधार्थी
संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, बनस्थली विद्यापीठ।

अचिन्त्यभेदाभेदवादी –

अचिन्त्यभेदाभेद वैष्णव वेदान्त सिद्धान्त है। इसके प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु है। उन्होंने उपदेश द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रकाश अपने अनुयायियों में किए, जिन्हें आधार बनाकर षड्गोस्वामीवृन्द, विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि आचार्यों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। श्रीमद्भगवद्गीता पर विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सारार्थवर्षिणी टीका और बलदेव विद्याभूषण ने गीताभूषण भाष्य लिखा है।

(1) सारार्थवर्षिणी टीका –

गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रकाण्ड पंडित एवं विद्वान् विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा रचित टीका उनके शास्त्रज्ञान का परिचायक ग्रन्थ है। सम्भवतः अपनी टीका का यह नामकरण विश्वनाथ चक्रवर्ती ने गीता के सार अर्थों की वर्षा करने वाली होने के कारण ही किया है। चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य होने के कारण उन्होंने गीता का तात्पर्य सर्वत्र चैतन्य मत के अनुकूल ही प्रतिपादित किया है। इसके अतिरिक्त सर्वत्र सभी साधनों में केवल भक्ति की उत्कृष्टता व भक्ति द्वारा ही मोक्ष व ईश्वर प्राप्ति के बारे में बताया है।

षष्ठेषु योगिनो योग प्रकारविजितात्मनः।
मनसश्ञ्ञ्चलस्यापि नैश्चत्योपाय उच्यते।।

उन्होंने अध्याय के मुख्य विषय का प्रतिपादन अथवा सार प्रत्येक अध्याय के अन्त में निष्कर्ष रूप में श्लोक रूप में प्रस्तुत किया है, यथा–

भक्तानां सर्वतः श्रेष्ठतं पूर्वोक्त तेष्वपि स्फुटम्।
अनन्यभक्तस्येत्येत्यर्थो त्राध्याये व्यञ्जितो भवत।।

वे श्लोक व्याख्या के आरम्भ में भी श्लोक का विषय वर्णित करते हैं, यथा–

''एवम्भूतस्य योगिनोऽपि ज्ञानिन व भक्तयुत्थेन परमात्मज्ञानेनैव मोक्ष इत्याह।''

उन्होंने इसमें स्मृति, श्रुति, पुराण व श्रीमद्भागवत पुराण के अत्यधिक उद्धरणों को उद्धृत किया है। श्रीधरस्वामी चरण, मधुसूदन सरस्वती व रामानुजाचार्य आदि के मतों को भी उद्धृत किया है जो इनके व्यापक

अध्ययन का परिचायक है। इनकी श्रीधरस्वामी चरण व मधुसूदन सरस्वती के प्रति अत्यधिक श्रद्धा है।

टीका की शैली विवेचनात्मक अत्यन्त सरल, सुबोध्य बोधगम्य है। विषय को हृदयगामी बनाने के लिए उन्होंने प्रत्येक भरसक प्रयास किया है। एक स्थान पर तो विषय को सरल बनाने के लिए उन्होंने कथा का वर्णन तक किया है।

(2) गीताभूषणभाष्य –

बलदेव विद्याभूषण विरचित श्रीमद्भगवदगीता का गीताभूषणभाष्य महत्त्वपूर्ण भाष्य है। इसमें उन्होंने गीता के गूढ़ अर्थ को स्पष्ट किया है। कहीं–कहीं विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत सारार्थवर्षिणी की ही एक उपटीका प्रतीत होती है। बलदेव विद्याभूषण ने टीका के उपोद्घात में गीताशास्त्र के अनुबन्ध चतुष्ट्य का उल्लेख किया है। उन्होंने श्रद्धालु, सद्धर्मनिष्ठ तथा जितेन्द्रिय को 'गीता' का अधिकारी बताते हुए उसके तीन सनिष्ठ, परिनिष्ठ व निरपेक्ष भेद माने हैं। इनमें स्वर्गादिलोक की निष्ठा से युक्त हरि अर्चन रूप का आचरण करते हुए अपने धर्म का पालन करने वाला सन्निष्ठ है। लोकसंचित दृष्टि से स्वधर्म का आचरण करते हुए भक्ति में निरत द्वितीय है। सत्य, तप, जपादि द्वारा विशुद्धचित्त हरि में ही एक वाचक भाव सम्बन्ध बताया गया है। चित्त तृतीय निराश्रय बताया है। वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध बताया गया है, जिसमें वाच्य श्रीकृष्ण हैं व वाचक गीताशास्त्र है। वे ही यहाँ विषय हैं। अशेष क्लेश की निवृत्ति के साथ श्रीकृष्ण के साक्षात्कार को प्रयोजन बताया गया है। उन्होंने भी गीता के अष्टादश अध्यायों को कर्मषट्क, भक्तिषट्क व ज्ञानषट्क– तीन षट्कों में विभक्त किया है। उनका मत है कि प्रथम षट्क में आत्मज्ञान को निष्काम साध्य निरूपित किया गया है, मध्य षट्क में परमेश्वर की प्रापणी भक्ति व उसकी महिमा का वर्णन किया गया है तथा अन्त में ईश्वर के स्वरूपादि वर्णन है। इस प्रकार उनका मत है कि गीता के तीनों षट्कों में कर्म, भक्ति व ज्ञान की प्रधानता के कारण ही उनको कर्मषट्क, भक्तिषट्क व ज्ञानषट्क कहा गया है उन्होंने भी विश्वनाथ चक्रवती के समान अध्याय के प्रारम्भ व अन्त के अध्याय का सारांश सूत्र रूप में किया है, जो टीका तात्पर्य बोध में उपादेय है।

निष्काम कर्मयोग –

कर्म शुभ हो या अशुभ – वे बन्धनकारी होते हैं – इस स्थिति में श्रीमद्भगवद्गीता निष्काम कर्म के रूप में ऐसे उपाय का वर्णन करती है, जो व्यक्ति को कर्म करते हुए भी कर्मबन्धन से मुक्त करता है। उसके अनुसार कर्म में ही जीव का अधिकार है, फल में नहीं है। अतः कर्मफल की इच्छा त्यागते हुए कर्म करना चाहिए। यहाँ भाष्यकार ने योगस्थ, फलासक्तित्याग, कर्तत्वाभिमान त्याग व ईश्वरार्पण बुद्धि पर विशेष बल दिया है। उनके मतानुसार निष्काम कर्मयोग में व्यवसायित्मिका बुद्धि होती है। निष्काम कर्म करने वालो एक ही निश्चय वाला होता है कि वह भगवदर्चनरूप निष्कामकर्म द्वारा विशुद्ध चित्त हो, ज्ञान से आत्म याथात्म्य अनुभव प्राप्त करेगा। इस प्रकार उनके अनुसार एक विषयत्व होने से निष्काम बुद्धि उस काम्य–कर्म विषयक बुद्धि से विशिष्ट है, जिसमें पशु, पुत्र, स्वर्ग आदि अनन्त विषय व अनन्त शाखा होनेके कारण अनन्त बुद्धि होती हैं। निष्काम कर्मयोग से ज्ञाननिष्ठा रूप फल प्राप्त होता है और काम्य कर्मों के समान प्रत्यवाय नहीं होता है।

भाष्यकार का मत है कि ज्ञान कर्मयोग के द्वारा ही सिद्ध होता है। कर्मयोग के बिना ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं है। अतः वे ज्ञान प्राप्ति हेतु अशुद्धचित्त ज्ञानी के लिए कर्मसंन्यास उचित नही मानते हैं। उनके मतानुसार व्यक्ति जब तक कर्मों का अनुष्ठान नहीं करेगा, उसका चित्त शुद्ध नहीं होगा और निखिलेन्द्रिय व्यापार रूप

कर्मविरति ज्ञाननिष्ठा को प्राप्त नहीं कर पायेगा। कर्मों के संन्यास से अशुद्ध चित्त को कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

भाष्यकार के अनुसार कर्म संन्यास लौकिक और वैदिक कर्मों का विरोधी नहीं है। क्योंकि व्यक्ति कर्म में परतन्त्र है। वास्तव में वह प्रकृति के गुणों द्वारा राग द्वेषों द्वारा कर्म में प्रवृत्त कराया जाता है। यदि कोई व्यक्ति कर्मों से संन्यास ले भी लेता है तो, वह केवल शास्त्रीय कर्मों का ही त्याग कर पायेगा। वह लौकिक कर्मों का त्याग नहीं कर पायेगा।

भाष्यकार कहते हैं कर्मसंन्यास तथा निष्काम कर्मयोग दोनों ही श्रेयस्कर हैं। परन्तु कर्मसंन्यास की अपेक्षा निष्काम कर्मयोग श्रेष्ठ है।

अब प्रश्न है कर्मयोग क्यों श्रेष्ठ हैं? इसका उत्तर है–

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।।

भाष्यकार कहते हैं चित्तशुद्धि हो जाने के कारण कर्मयोगी नित्य संन्यासी है। संन्यास भेष न ग्रहण करने पर भी वह सभी विषयों को तथा स्वंय को भगवान् के चरणों में समर्पित कर सदा भगवत्–सेवा–आनन्द में निमग्न रहता है। भोगों में आसक्ति नहीं रहने के कारण तथा कर्मफल की आकाक्षां न रहने के कारण वह राग–द्वेषादि से रहित होकर अनायास ही संसार–बन्धन से मुक्त हो जाता है।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।

पवित्र हृदय वाला कर्मयोगी जब कर्म का अनुष्ठान करता है तो चित्तशुद्धि होने पर ज्ञान का उदय होता है। ज्ञानोदय के द्वारा अन्त में मोक्ष प्राप्त होता है, इसलिए कर्मयोग और संन्यास योग दोनों का उद्देश्य एक ही है।

भाष्यकार पंचम अध्याय के पंचम पद्य की व्याख्या में स्पष्ट करते हैं कि यहाँ सांख्य का तात्पर्य ज्ञान और योग का तात्पर्य है– निष्काम कर्म। "सांख्यैः और योगैः इन बहुवचन प्रयोगों से इनका गौरव प्रकाशित किया गया है। इन दोनों के पृथक होने पर भी जो व्यक्ति अपने विवेक द्वारा दोनों को एक ही देखता है, वह नेत्रवान् पण्डित है।

टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती और भाष्यकार बलदेव विद्याभूषण दोनों कहते हैं– सम्यक् चित्त–शुद्धि हुए बिना ज्ञानियों का संन्यास–ग्रहण दुःखद होता है, किन्तु कर्मयोग ही सुखद है। यदि चित्त में वैमनस्य की भावना होती है तो संन्यास दुखदायी है। कर्मयोग द्वारा ही चित्त की दुर्भावना को दूर किया जा सकता है। जहाँ कर्मयोग का अभाव होगा वहाँ संन्यास दुःख प्राप्ति का कारण बन जाता है।

यहाँ यह स्पष्ट है कि चित्तशुद्धि होने के पूर्व संन्यास ग्रहण करने की अपेक्षा निष्काम कर्मयोग ही श्रेष्ठ है।

भाष्यकार कहते हैं – शुद्ध आत्मा का प्राकृत कर्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। निष्काम कर्मयोगी चित्तशुद्धि आदि के क्रम से तत्त्वविद् होते हैं, उस समय वे आत्म–तत्त्व का अनुभव कर दैहिक क्रियाओं को करने पर भी ऐसी उपलब्धि करते हैं कि मैं कुछ भी नहीं करता, मेरे पूर्व संस्कार के अनुरूप ईश्वर की प्रेरणा से जड़देह की

समस्त क्रियाएँ स्वभावतः निष्पन्न हो रही हैं, जड़देह रहने के कारण अभी कर्मों में कुछ कर्त्तापन का भाव दिखने पर भी शरीर के विगत हो जाने पर सिद्धि के समय कर्म में कर्त्तापन भाव पूर्ण रूप से दूर हो जाएगा। ऐसे महात्माओं को कोई भी कर्म संसार–बन्धन में नही डाल सकता।

मिथ्याचार दाम्भिक द्वारा ज्ञान की प्राप्ति अलभ्य है। निष्काम कर्मों के अनुष्ठान न करने के कारण अशुद्ध मन से विषयों का स्मरण करने के कारण ज्ञान के लिए उद्यत होने पर भी उसको ज्ञान लाभ प्राप्त नही हो सकता है। इस प्रकार वागादि नियम क्रिया भी व्यर्थ हैं। अतः भाष्यकार का कथन है अशुद्ध चित्त संन्यासी के लिए आन्तरिक इन्द्रिय निग्रह न होने के कारण कर्म संन्यास व्यर्थ है।

भाष्यकार अशुद्धचित्त संन्यासी की तुलना में आत्मानुभव के लिए प्रवृत्त मन आदि इन्द्रियों को नियंत्रित कर अनासक्त, फलाभिलाषा शून्य होते हुए कर्मेन्द्रियों से कर्मरूप योग का अनुष्ठान करने वाले कर्त्ता गृहस्थ को विशिष्ट मानते हैं क्योंकि उसमें ज्ञान की संभावना है। अशुद्धचित्त को चित्तशुद्धि के लिए स्वविहित कर्म निष्काम भाव से करना चाहिए। औत्सुक्यमात्र से सर्वकर्मसंन्यास से कर्म करना श्रेष्ठ है क्योंकि कर्म क्रमसोपान न्याय से ज्ञान के उत्पादक होते हैं। यदि कोई उत्सुकता मात्र से कर्मों का त्याग कर देता है तो उसके मलिन हृदय में कदापि ज्ञान प्रकाश नहीं हो सकता है।

भाष्यकार निश्चल योगारोहण इच्छुक अभ्यासी के योगारोहण में कर्म को ही कारण कहते हैं क्योंकि चित्तशुद्धि से ही योग में आरोहरण होता है तथा वह चित्तशुद्धि कर्म से ही होती है।

भाष्यकार अशुद्ध चित्त के लिए सर्वकर्मसंन्यास में दोष मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार ज्ञाननिष्ठा के लिए अन्तःकरण शुद्धि आवश्यक है और अन्तःकरण शुद्धि बिना कर्मों के अनुष्ठान संभव नहीं है। इस प्रकार अशुद्ध चित्त के लिए तो ज्ञान निष्ठा प्राप्ति के लिए कर्मों का अनुष्ठान करना अनिवार्य है किन्तु शुद्धान्तकरण योगारूढ़, आत्मरत व भक्त के लिए कर्मों की अपेक्षा नहीं है। भाष्यकार का कहना है कि निष्काम कर्म व ईश्वर उपासना द्वारा स्वच्छ चित्त दर्पण वाले व धर्मभूत ज्ञान से आत्मदर्शन करने वाले के लिए कोई कर्त्तव्य नहीं है।

यहाँ कारण यह है कि आत्मवलोकन अनुष्ठित कर्मों से उसका न कोई फल है और न करने से न कोई क्षति है। भाष्यकार शुद्धचित्त के लिए देवकृत विघ्न के भय से उनको प्रसन्न करने हेतु किये जाने वाले पूजा आदि कर्मों का भी विधान नहीं मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार ज्ञान से पूर्व ही देवकृत विघ्न होते हैं। परन्तु आत्मरति यदि उनका अनुष्ठान न करें तो देवकृत विघ्न उस पर प्रभाव नहीं डाल पाते हैं। भाष्यकार शुद्धचित्त कर्मसंन्यास पूर्वक नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्ति का कथन करते हैं। चित्तशुद्धि पर्यन्त निष्काम शास्त्रविहित कर्मों का विधान प्रतिपादित करते हैं तथा चित्त शुद्धि के पश्चात् कर्म त्याग विधान करते हैं। भाष्यकार अनन्त पाप से मलिन प्रपन्न के लिए पाप विनाश हेतु 'कृच्छादिप्रायश्चिविहित' कर्मों के अनुष्ठान की अपेक्षा प्रपत्ति करने को कहते हैं। इनका मानना है यदि प्रपन्न का हृदय अनन्त पाप से मलिन है तो कृच्छादि के लिए प्रयास करने की आवश्यकता नही हैं, क्योंकि ईश्वर प्रपत्ति ही निखिल दोष विनाशक होती हैं।

भाष्यकार प्रपन्न के लिए विहित कर्मों के त्याग का कथन करते हैं। वे कहते हैं कि प्रपन्न को यह सोचकर शोक नहीं करना चाहिए कि विहित कर्मों के त्याग से इसे प्रत्ययावाय लक्षण पाप होगा। इनके अनुसार वेद निर्देश द्वारा अग्निहोत्रादि का त्याग करने वाले यति को जो प्रत्यवाय होता है, प्रपन्न को उनके त्याग के लिए परेश निर्देश होने से वह प्रत्यवाय नहीं होता है, अपितु यदि वह उनका त्याग नही करता तो ईश्वर के निर्देश का

अतिक्रमण करने पर दोष होता है। अतः उसके द्वारा विहित कर्मों के स्वरूप त्याग में प्रत्यवाय व आपत्ति नहीं है।

इस प्रकार भाष्यकार बलदेव विद्याभूषण ने अशुद्ध चित्त ममुक्षु को कर्म मार्ग का अधिकारी माना है। अन्तःकरण प्राप्ति हेतु साधक के लिए सर्वप्रथम भगवदर्पण निष्काम कर्मयोग की मर्यादा स्थापित की है। अन्तःकरण शुद्धि पश्चात् नैष्कर्म्य सिद्धि हेतु सर्वकर्मसंन्यास का विधान किया है, परन्तु भक्त के लिए उसकी भक्ति ही अन्तःकरण शुद्धि हेतुभूत होने के कारण सर्वकर्मसंन्यास में ही अधिकार कहा है।

कर्मयोग के अन्त में मोक्ष प्राप्त हुआ, तो यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि ज्ञान योग का स्थान कहाँ है? इसी संशयात्मक स्थिति को दूर करने के लिए पंचम अध्याय में बताया गया। ज्ञान योग अर्थात् सांख्य योग और कर्मयोग पृथक् नहीं है। इन दोनों का चरम स्थान 'एक' अर्थात् भक्ति है। कर्मयोग की प्रथम अवस्था में कर्म प्रधान ज्ञान और शेष अवस्था में ज्ञान प्रधान कर्म होता है। जीव स्वभावतः शुद्ध चिन्मय है। माया को भोगने की वासना से जड़बद्ध होकर क्रमशः जड़के साथ एकता रुपी अधोगति प्राप्त किया है। जब तक यह जड़ शरीर है तब तक जड़ीय कर्म अनिवार्य हैं। चित्–चेष्टा ही मोचन का एकमात्र उपाय है। अतः जड़देह यात्रा में शुद्ध चित्–चेष्टा जितनी प्रबल होती है, कर्म–प्रधानता उतनी क्षीण होती है। समदर्शन, विराग, चित्त–चेष्टा का अभ्यास, जड़ीय काम–क्रोध आदि का जय, संशय क्षय आदि साधन करते–करते जड़–निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मसुख–संस्पर्श स्वयं उपस्थित होता है। कर्मयोग के साथ देहयात्रा निर्वाहपूर्वक यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा और समाधिरूप अष्टांगयोग का साधन करते–करते भक्त का संग प्राप्त कर क्रमशः भगवद्भक्ति–सुख का उदय होता है।

सन्दर्भ सूची –

1. सारार्थवर्शिणी, विश्वनाथ चक्रवर्ती 6/प्रस्तावना श्लोक
2. वही, 8/उपसंहार श्लोक
3. वही, 5/29
4. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
   मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते संगो स्त्वकर्मणि।।
   श्रीमद्भगवद्गीता, महर्षिवेदव्यास, 2/47
5. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 6/1
6. वही, 2/40
7. वही, 3 उपसंहार श्लोक
8. वही, 3/4
9. प्रकृतिजैः स्वभाबोद्भवैर्गुणै रागद्वैषदि्भिः, कार्य्यते प्रबर्त्त्यते अवशः पराधीनःसन्।।
   वही, 3/5
10. श्रीमद्भगवद्गीता, महर्षिवेदव्यास, 5/3
11. वही, 5/3
12. वही, 5/4

13. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 5/10

14. स च निरूद्धरागादेरज्ञस्य निष्कामकर्मानुष्ठानेन मनः शुद्धेरनुदयात् श्रोत्राद्यप्रसारेऽप्य– शुद्धत्वान्मनसा तद्विषयाणां स्मरणाज्ज्ञानायोद्यतस्यापि तस्य ज्ञानालाभात मिथ्याचारो व्यर्थबागादिनियमक्रियो दाम्भिक इत्यर्थः।

15. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 3/6

16. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 3/7

17. अकर्मणं औत्सुक्यमात्रेण सर्वकर्म–संन्याससकाशात् कर्मैव ज्यायः प्रशस्ततरं मसोपानन्यायेन ज्ञानोत्पादकत्वात्।

18. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 3/8

19. मुनेर्योगाभ्यासिनो योगं ध्याननिष्ठामारुरुक्षोस्तदारोहे कर्म्म कारणं हृद्विशुद्धिकृत्वात्।

20. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 6/3

21. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 18/18

22. वही, 4/33

23. यस्तु मदुक्तेननिष्कामकर्मणा मदुपासनेन च विमृष्टे चित्तदर्पणे सञ्जातेन धर्मभूतज्ञानेनात्मानम्दर्शतस्य न किंचित, कर्म कर्त्तव्यम्। गीताभूषणभाष्य, 3/17

24. कृतेन तदवलोकनायानुष्ठितेन कर्मणार्थः फलं नैवास्ति। अकृतेन तदवलोकनासाधनेन कर्मणा कश्चनानर्थश्च तदब लोकानक्षति लक्षण इह न भवति।

25. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 3/18

26. अस्यलब्धात्मवलोकस्य विदुषः सर्वभूतेषु देवेषु मानवेषु च मध्ये कश्चिदप्यर्थायात्मरतिनैर्विघ्नाय व्यपाश्रयः कर्मभिः सेव्यो न भवति। ज्ञानोदयात् पूर्व्वमेव देवकृता विघ्नाः तेनात्मरतौ सत्यान्तु न तत्कृतास्ते तत्प्रभावेण संभवन्ति। ''तस्य हन देवाश्च नाभूत्या ईशते आत्मा ह्येषां सम्भबती''ति श्रबणात्। हनेत्यप्यर्थे निपातः। देवा अपि तस्यात्मानुभविनो भ्यूत्यै आत्मरतिक्षतये नेशते, हि यस्मादेषां स आत्मा तद्वत् प्रेष्ठो भवतीत्यर्थः।

27. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 3/18

28. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण 18/66

29. मत्प्रपत्त्यैव निखिलोदोष विनाशात्तदर्थ कृच्छ्रादि प्रयासो मत्पपर्त्तुन भवेदित्युक्तम्।
गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 18/6

30. न च विहितत्यागे प्रत्यबायलक्षणं पापं स्यादिति शोकं मा कुर्व्विति व्याख्येयम्। वेदनिदेशनाग्निहोत्रादित्यागे यतेरिब परेशनिदेशेन तत्त्यागे तत्प्रपत्तुस्तदयोगात्; प्रत्युत्त तन्निदेशातिक्रमे दोषापत्तिः स्यात्। न च स्वरुपतो विहित त्यागे प्रत्यबायापत्तेः।

31. गीताभूषणभाष्य, बलदेवविद्याभूषण, 18/66

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037 SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक पृष्ठ : 98-105

गणेश गनी की कविताओं में पहाड़ी परिवेश

राधा देवी

पीएच० डी० शोधार्थी, हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल शिमला–171005

'कविता' का शाब्दिक अर्थ–काव्यात्मक रचना या फिर कवि की कृति, जिसे शब्दों और भावों के बंधन में बांधा जाता है। कविता के माध्यम से ही तो जीवन का सत्य और सब प्रकार के अनुभवों को व्यक्त किया जा सकता है। कविता साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी कहानी या मनोभावों को कलात्मक रूप से भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। 'परिवेश' शब्द का अर्थ होता है– आसपास का वातावरण। व्यक्ति के चारों ओर व्याप्त वातावरण जिसमें वह जीता जूझता है और जो उसकी संवेदनाओं को छूता है, उसे परिवेश कहते हैं। अमृतराय परिवेश के बारे में लिखते हैं– ''हम परिवेश को ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियों और गतिविधियों से विनिर्मित और पुष्ट एक प्रकार से संपूर्ण वातावरण कह सकते है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति या समाज किसी समय अपने को पाता है।'' परिवेश शब्द व्यक्ति या वस्तु के चारों और के स्थान, स्थिति या माहौल को संदर्भित करता है।

हिमाचल प्रदेश पहाड़ी क्षेत्र होने से यहां जीवन जीना अत्यंत कठिन है। यहां के निवासियों को जीवन–यापन करने के लिए अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। प्रदेश में पहाड़ों के खिसकने, भूस्खलन और प्राकृतिक आपदाओं के कारण लोगों को अनेक प्रकार की मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। गणेश गनी हिंदी कविता के एक महत्त्वपूर्ण रचनाकार है जिन्होंने अपनी कविता के माध्यम से एक नयी पहचान बनायी है। कवि एवं किस्सागो गणेश गनी आज की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले कवियों की भीड़ में सबसे अलग पहचाने जाते हैं। कवि हिमाचल प्रदेश के आदिवासी क्षेत्र पांगी घाटी से सम्बन्धित है। गणेश गनी की कविताएँ अपने पहाड़ी परिवेश के लोक जीवन से जुड़ी हुई हैं। पांगी घाटी से सम्बन्धित गणेश गनी एक शिक्षक हैं। शिक्षक के साथ–साथ आलोचक, कवि, समीक्षक और संपादक भी हैं। एक कुशल अध्यापक के साथ–साथ समाज के अध्येता भी रहे हैं। कवि ने अपनी कविताओं में पहाड़ी जीवन का नज़दीक से साक्षात्कार करवाया है। महानगरीय परिवेश की यथार्थता से कवि अच्छी तरह से परिचित तो है ही साथ ही लोक–संस्कृति के प्रति इनका मोह इन्हें ग्रामीण पृष्ठभूमि से जोड़कर रखता हैं। गणेश गनी हिमाचल के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने हिंदी कविता को हिमाचल के जनजातीय क्षेत्र की परम्परा तक पहुंचाया है। कोई भी रचनाकार अपने समय और समाज से निरपेक्ष नहीं रह सकता है। गणेश गनी वर्तमान समय के कुशल कवि भी हैं और नवीन अवधारणाओं के सर्जक भी है।

हिमाचल प्रदेश का लोक जीवन अनेक प्रकार की कठिनाइयों से भरा हुआ है। यहाँ जीवन की मूलभूत

आवश्यकताओं के लिए भी बहुत संघर्ष करना पड़ता है। भारी बर्फ़बारी के कारण किसानों की फसलें नष्ट हो जाती हैं। लोगों का जीवन जीना दूभर हो जाता है। पहाड़ की सुंदरता देखने में जितनी सुरम्य है जीवन जीना उतना ही कठिन है। 'बच्चे की गुल्लक तक'! कविता पहाड़ी परिवेश की पर्यावरणीय चेतना एवं चिंतन को यर्थाथ ढंग से रेखांकित करती है, जहाँ बर्फ़ की पूर्व की स्थिति भी दर्ज है और बर्फ़ के बाद का निरतंर बदल रहा जीवन पक्ष भी अंकित है –

"हिमपात के बाद
बिल्ली आग के पास बैठी है
कुत्ता सूखे फाहों पर सुस्ता रहा है
छत से बर्फ़ हटाने वाला आदमी सोच रहा है
कि क्यों कई रातों से भला
भालू उसके सपने में नहीं आया
जबकि पहाड़ की कंदरा में
शीतनींद्रा तब टूटेगी
बाहर बर्फ़ पिघल जाऐगी सारी की सारी
भाग्य खुलेगा बसंत जैसा।"

कवि गणेश गनी की कविताएँ लोकधर्मिता से संपृक्त हैं। इनकी कविताएँ पहाड़ी जनजीवन की जिजीविशा, लोकबद्धता, संघर्श व चुनौती को अभिव्यक्त करती हैं। कवि की कविताओं की महत्त्वपूर्ण विशेषता स्मृति हैं, जिसे देख कर लगता है कि वे स्मृतियों के कवि भी हैं। समय और परिस्थितियाँ मनुष्य के जीवन में बहुत से पड़ाव आते हैं कभी सुख तो कभी दुःख और यही उतार–चढ़ाव मनुष्य को जीना सिखाते है। 'पौधे रोपने का मन करता है' कविता में कवि कहते हैं की जब मनुष्य दुखी होता है तो उसे संसार की कोई भी वस्तु प्रिय नहीं लगती हैं–

"इन दिनों
न हँसना अच्छा लगता है
न पृथ्वी पर घूमना।
इन दिनों
न घर अच्छा लगता है
न पृथ्वी पर ठहरना
इन दिनों
बस रोने का मन करता है।"

ग्रामीण जीवन शहरों की अपेक्षा काफी शांतिपूर्ण होता हैं। गाँव व शहर हर व्यक्ति के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। गाँव और शहर वास्तव में एक–दूसरें पर निर्भर होते हैं। गाँव में लोग एक–दूसरें को बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के लोग बहुत ही मनभावन एवं गर्मजोशीपूर्ण होते हैं और हर समय दूसरों की मदद करने के लिए तैयार रहते है। पहाड़ी आदमी का जीवन जल, जंगल और मिट्टी की सौंधी खुशबू में ही व्यतीत

होता है। 'इधर बहुत देर तक गाँव की बात हुई' कविता पहाड़ अथवा ग्राम जन जीवन की वास्तविक छवि को अंकित करती हुई भूगोल, पर्यावरण, खेत–किसान, ग्राम संवेदनाएँ, चिंताएँ, देहातीपन, स्मृतियां, गाय व बैल की स्मृति का वृहत् कोश उपस्थित करती है। जब कोई व्यक्ति गाँव से शहर की ओर जाता है तो उनके बीच किस तरह का संवाद होता है, कवि लिखते हैं–

"इधर बहुत देर तक गाँव की बात हुई
खेतों की बात हुई
पेड़ों की बात हुई
भेड़ ने किस रंग का मेमना जना यह खबर मिली
यह भी कि
बछड़ी अब गाय बन गई है और खूब दूध देती है
माँ कैसे यादों में जीति है यह बात कई बार हुई।"

पहाड़ से उतरने वाले की आँखें सदैव ही ज़मींन की ऊर्जा को महसूस करने की काबिलियत से परीपूर्ण होती है। गाँव का परिवेश शहरों से भिन्न माना जाता है। गाँव का जीवन शुद्ध और शांत माना जाता है क्योंकि गाँव में लोग प्रकृति निकट होते हैं। गाँव की वेशभूषा, रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार, सभ्यता–संस्कृति सब कुछ अलग होता हैं।

गाँव से शहरों की ओर पलायन का सिलसिला कोई नया मसला तो नहीं है। गाँव से शहर की ओर पलायन आज के समय की एक प्रमुख प्रवृत्ति बन चुकी है। वर्तमान समय के नित्त नवीन जीवन मूल्यों के बदलाव व निरंतर भूमंडलीकरण से शहरों की ओर पलायन का मुख्य कारण बेहतर जीवन की तलाश और रोजगार है। 'एक रात का अंतिम पहर' कविता में माँ और पुत्र के आत्मीय अंतर्संबंध, प्रेमनिश्ठा, लगाव, वात्सल्य का सहज व सरल निरूपण हुआ है, जिसकी पृश्ठभूमि में गांव की स्मृतियां भी है और जिम्मेदारियाँ एवं स्वप्न का विस्तृत अर्तंजाल भी है–

"पर एक रात का अंतिम पहर
नहीं भूलता कभी
जब बाबा ने मुझे जगाया था
तुम तो सो ही न पाई थी रात भर
सो भी कैसे पाती
विहान में ही तो करना था
विदा मुझे शहर के लिए।"

अर्थात रोजी–रोटी की तलाश में लोग गाँव को छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे है। गाँव में रोजगार के साधन कम होने से कृषि कार्य में गिरावट आ रही हैं। गाँव से लोग शहर की ओर पालयन करने पर विवश हो रहे हैं। बड़ा बनने की महत्वाकांक्षा में अपने गाँव से दूर रहकर शहरों में रहना पड़ रहा है। यहाँ तक अपना घर, अपना गाँव सब कुछ त्याग देना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्र कृषि आधार होने से वहाँ रहने वाले लोगों को रोजगार प्रदान नहीं होता है। भौतिकता की इस अंधी दौड़ ने गाँव की खूबसूरती को छीन लिया है। इसलिए

कवि गाँव के लोगों और उनके जीवन संघर्ष और जिजीविषा के प्रति चिंतित हैं।

पहाड़ी जीवन बहुत ही अद्‌भुत है। पहाड़ों पर जब बर्फ़ पड़ती है तो उसे देखने दूर–दूर से लाखों सैलानी आते है। किसी के लिए यह दृश्य आनंददायक होता है तो किसी के लिए दुख की बात होती हैं। पर जो इस बर्फ़ के नीचे दबे हुए कई महीनों तक रहते है उनका जीवन यापन दुभर हो जाता है। हिमाचल प्रदेश में बहुत से ऐसे क्षेत्र है जहाँ बर्फ वर्ष भर पड़ती रहती हैं और लोगों का जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। 'ताकि डरावने प्रश्न टाले जा सके' कविता में भारी बर्फबारी के दौरान जीवन की गतिविधि एवं परिस्थिति का यथावत दारुण व करुण दृश्य समस्त परिवेश को सघनता के साथ चित्रित करता है, जिसमें संघर्षशीलता ही जीवन यापन का प्रमुख कारण हैं–

"रात ढलने लगी
मगर हिमपात रुक नहीं रहा
सिर, कंधों और पीठ पर जमी बर्फ़ को झाड़ने के बाद
बर्फ हटाने के लकड़ी के किटाणु
घर के एक कोने में पंक्तिबद्ध खड़े रहकर
अब अभी आग के आसपास बैठ गए है
एक घेरा बनाकर।"

'थोड़ी मिट्टी मांगने आया हूँ!' कविता में पर्यावरण के संरक्षण की चिंता व्यक्त की गई है। पर्यावरण का हमारे दैनिक जीवन से सीधा सम्बन्ध है। कवि प्रकृति के साथ अपना तादात्मय स्थापित करना चाहते हैं। अपनी मिट्टी से जुड़ा रहकर व्यक्ति को जो आनंद और सुकून मिलता है वह कहीं पर भी नहीं मिलता। वर्तमान समय में विकास के नाम पर अंधाधुंध दोहन से प्रकृति को नुकसान पहुंचाया जा रहा है। प्रस्तुत पंक्तियाँ हैं–

"दिन चढ़ते ही उसे लगा कि
अब अपनी साँसें गिरवी रखे
खेत वापिस मिलने तक
उसकी चिंता यह भी है कि
नदी की साँसों को कैसे बचाया जाए
पेड़ों के पास कम से कम
जंगल तो है छुपने के लिए।"

मनुष्य और पर्यावरण एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। नदी, पर्वत, पहाड़, वायु, पेड़–पौधें यह सभी मानव जीवन से जुड़े हुए हैं। लेकिन वर्तमान समय में बढ़ते अवैधानिक विकास के कारण पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया जा रहा है।

गणेश गनी पहाड़ी क्षेत्र में रहे हैं और यह बात उनकी कविताओं में पूर्णरूप से चरितार्थ होती हैं। 'पार की धूप' एक लम्बी कविता है। इस कविता में कवि पीढ़ी के अंतराल को दर्ज न करके एक संवेद्य बना रही है अर्थात दो पीढ़ियों का यहाँ तालमेल और अंतर्संबन्ध दर्शाया गया है। किस तरह सास अपनी नई बहु को संस्कार सिखा रही है। दूसरी ओर, कविता में पहाड़ी नदी के किनारे जंगल में बसे समुदाय के लोग किस तरह से अपना

जीवन यापन करते हैं। उन्हें किस तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ता हैं। पांगी घाटी के लोक–जीवन और मेहनतकश लोगों के जीवन की कथा व्यथा का बखान करती है यह कविता। गाँव में जब पुल बन जायेगा तो लोगों के लिए यह एक अलग आनंदित क्षण होगा, प्रस्तुत कविता में कवि लिखते हैं–

''जब पुल बनेगा
उस पार ठहरा वक़्त आएगा इस पार
तो वह वक़्त होगा
खेतों के सुनहरी होने का
भुन्ने भुट्टे और उबले कद्दू खाने का
कहीं बीत न जाए मौसम बेशकीमती
दादी को यह चिंता खाए जा रही है।"

'घुरेई कहाँ नाचेंगी' कविता में 'घुरेई' के माध्यम से लोक चित्त के द्वारा सौंदर्य बोध उजागर होता है और स्थानीय जनसमाज की मध्यमवर्गीय चेतना का भाव जागृत होता है। मिट्टी के घर हालांकि बाजार के प्रभाव व दवाब से लुप्त होते जा रहे हैं। लेकिन आज वे घर कट चुकी फसल को सुखाने में मदद करते है। मिट्टी से बने घर सिर्फ पानी व बर्फ़ से नहीं बचाते बल्कि बच्चों के लिए ये घर खेलने कुदने की जगह बन जाती है। प्रस्तुत पंक्तियाँ हैं –

"मिट्टी से बनी छतों वाले घर
इन दिनों 'शौर' में कम होते जा रहे हैं
यह छतें केवल हिमपात से ही नहीं बचाती
इन पर जाच लगती है
कटी फसलें सूखती हैं
ये कंधे से कंधा मिलाए
खेल के मैदान बनाती हैं।"

इस कविता में बदलते परिवेश व पर्यावरण के चलते वर्तमान समय में ये दृश्य समाप्त होते जा रहे हैं। गणेश गनी की कविता 'उसकी वीरगाथा' के सन्दर्भ में डॉ दीपक लिखते है– "जब किसी की इच्छाओं को बेहरमी से कुचल दिया जाए तो ऐसी स्थिति में कई बार मनुष्य की भूख और प्यास भी अंत में समाप्त हो जाती है। उस समय हालात ऐसे हो जाते है कि मनुष्य की जिजीविषा तक की मृत्यु हो जाती है। विवेच्य कविता में विपरीत परिस्थितियों में मनुष्य की जिजीविषा को मरते हुए दिखाया गया है।" कविता 'उसकी वीरगाथा' में लिखते है–

''उसे यूँ ही कायर कहा गया!
जबकि इस घटना से पहले
बड़े ही साहस से किया सब सहन
उसने यूँ ही नहीं की आत्महत्या
वो जानता है
मिट्टी नहीं मौसम उगाता है फसल

पर अभी मौसम प्रतिकुल है।''

'जोजी की गिरह–गाँठे', 'घुरेई कहाँ नाचेगी', 'पितर माओट करेंगे' और 'जोबनु' इन कविताओं में पहाड़ी जनजातीय क्षेत्र पांगी घाटी के स्थानीय शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। 'जोजी' शब्द का अर्थ है–ग्रामीण जनजातीय क्षेत्र पांगी घाटी की महिलाओं द्वारा सिर पर पहना जाने वाला पारंपरिक वस्त्र को कहते है। पांगी जनजातिय क्षेत्र होने से वहाँ कठिन भौगोलिक परिस्थितियां के कारण अब भी वह समस्त विश्व से छः महीने तक कटा हुआ रहता है। गाँव का जीवन कवि की कविता में सहसा ही उतर आता है और यह गाँव के प्रति उनका लगाव है। बर्फबारी के समय में घुग्गी नाम पक्षी सर्दियों के दिनों में पूण्टो नामक गाँव में जाती है और अच्छे दिनों में पेघाऊँ नामक गाँव में लौट आती हैं। प्रस्तुत कविता 'जोजी की गिरह–गाँठें' की पंक्तियाँ–

"बर्फबारी के दिनों पूण्टो गई घुग्गी
अच्छे दिनों में पेघाऊँ लौट आई है
वह गा रही है–
हयुंत पूण्टो थी।
बाश पेघाऊँ थी।।"

कवि कहते हैं कि गाँव में गर्मियों के दिनों में लोग खेतीबाड़ी करते हैं और सर्दियों में जब हिमपात होता है तो छह महीने तक जैसे नजरबन्दी का दौर चल रहा है। इन दिनों में मेलें और त्यौहार खूब मनाए जाते है। यही मनोरंजन के साधन भी थे और एक दूसरे के घरों में आने जाने के बहाने भी होते है। सब लोग मिल बाँट कर जीवन जीते है।

अरविंद भट्ट के अनुसार– "गणेश गनी कुल्लू से है, भारत के इतने सुरम्य स्थान का कवि होना इनकी कविताओं में झलकता है। वादियों की ठण्डी हवा, चट्टानों के बीच से निकलता कल–कल, रंग बदलते पहाड़, बादलों की सरगोशीयाँ, यह सब इनकी कविताओं में झलकता है। इन्होंने जो जिया वह इनमें रच बस गया, घुल–सा मिल गया और अब वह शब्दों के रुप में छलक रहा है, सरोबार कर रहा है। अपने गाँव, अपने पूर्वजों और अपनी मिट्टी को जीते हुए गनी जी आज के संदर्भ में भी पैनी नजर रखते हैं। कवि गणेश गनी की हर साँस में गांव बसा हुआ है और वे गांव को भूल नहीं सकते, क्योंकि गांव की हर वस्तु उनको प्रिय लगती है।

विपरीतता के चलते ज्ञान से परिवेश व समय तत्व से संगति व संवेद्य संस्थापन का कार्य मुखर हुआ है। जहाँ परिवेश में रहने वाले बेहद साधारण व्यक्ति या जनसमाज की संघर्षशीलता 'व्यास की उलट दिशा' में गतिमान होने के लिए सामर्थ्यवान भी है और समझौतावादी भी है।

'धूप ऊंचे धारो पर!' कविता से ली गई पंक्तियाँ हैं–

"एक आम आदमी
एकदम साधारण सा
जिसके अधपके हैं सिर और दाड़ी के बाल
वह पहाड़ी से नीचे उतरता है तेज़ी से
और फिर धीरे–धीरे चलता हुआ आता है
सदानीरा ब्यास की उलट दिशा में

वह कहता है मुझसे
तुम भी मेरे साथ चलो
बहाव के विपरीत सदा उदगम की ओर।"

'वह झरने से लौट आया!' कविता में लगातार बदल रही पहाड़ी पर्यावरणीय चेतना का केंद्रीकरण इस कविता में चित्रित हुआ है। इस कविता में 'बाढ़' की भयवहता को भी संकेतित करती है। झरने की निश्छलता को भी अनुभूत करती है तथा खतरे से उत्पन्न होने वाले नुकसान के बारे में भी बताया गया है–

"झरने ने अपनी गति बढ़ा दी है
कि उसके पानी को देखना है
झील में पहुँचकर अपना प्रतिबिंब
जबकि वो जानता है
इन दिनों कुछ रास्ते रूठे हैं
कुछ चाहते है रूठना
कुछ को उम्मीद है
की मनाया भी तो जायेगा इस बीच।"

हालांकि झरने के पानी 'झील में पहुँचकर अपना प्रतिबिंब' देखना तेजी से बदल रही मौसमी हरकतों के कारण नसीब नहीं हो सकता है। 'कुछ रास्ते रूठे हैं' अर्थात पानी के स्वाभाविक बहाव या निंरतरता की गति को लगातार रोककर प्रकृति के मूल स्वरूप से छेडछाड़ की जा रही है। कविता का मूल सारांश पहाड़ी परिवेश की पर्यावरणीय चेतना और भौगोलिक स्थिति के अनुभुत्यात्मक अंश को संवधिर्त करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गणेश गनी की कविता का यथार्थ पहाड़ी जीवन का यथार्थ हैं, जिसमें गतिशीलता और सौंदर्य है। ग्रामीण सभ्यता का विघटन उसकी स्वाभाविक नियति है। मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा है की जहाँ वह है वहां से संतुष्ट नहीं है। इस सभ्यता का शाश्वत नियम विकास और शहरीकरण की अवधारणा से परे नहीं है। कवि में यह समझना मुश्किल है कि वह परिवेश को जीते हैं या परिवेश उनमें जीता है। गणेश गनी की कविता का संघर्ष अनुभूति के स्तर पर भी है और संवेदना की सीमा में भी। अंततः कहा जा सकता हैं की गणेश गनी पहाड़ी परिवेश के एक सशक्त हस्ताक्षर कवि हैं। कवि की कविताएँ पहाड़ी परिवेश की जीवंतता, संजीदगी, सरलता, स्वाभाविकता, सहजता को बेहद सशक्त ढंग से अंकित करती हैं और पहाड़ पर रहने वाले जन समाज की भौगोलिक स्थिति ही नहीं बल्कि संवेदनशीलता एवं संघर्षशीलता के भी विविध पक्ष को उजागर करती है।

संदर्भ–सूची :–

1. अमृतराय, सहचिंतन, इलाहाबाद, सर्जना प्रकाशन, 1967, पृ. 146
2. गणेश गनी, वह साँप–सीढ़ी नहीं खेलता, लखनऊ, लोकोदय प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2019, पृ. 81
3. वही, पृ. 100
4. गणेश गनी, थोड़ा समय निकाल लेना, जयपुर, बोधि प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2022, पृ. 47
5. गणेश गनी, वह साँप–सीढ़ी नहीं खेलता, लखनऊ, लोकोदय प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2019, पृ. 123

6. गणेश गनी, थोड़ा समय निकाल लेना, जयपुर, बोधि प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, पृ. 40–41
7. गणेश गनी, वह साँप–सीढ़ी नहीं खेलता, लखनऊ, लोकोदय प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2019, पृ. 42
8. वही, पृ. 21
9. वही, पृ. 65
10. डॉ पान सिंह (सं०), लोकोत्तर कविः गणेश गनी, नयी दिल्ली, वनिका पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण : 2020, पृ. 65–66
11. गणेश गनी, वह साँप–सीढ़ी नहीं खेलता, लखनऊ, लोकोदय प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2019, पृ. 24
12. गणेश गनी, वह साँप–सीढ़ी नहीं खेलता, लखनऊ, लोकोदय प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2019, पृ. 121
13. डॉ पान सिंह, (सं०), लोकोतर कविः गणेश गनी, नई दिल्ली, वनिका पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण : 2020, पृ. 79
14. गणेश गनी, वह साँप–सीढ़ी नहीं खेलता, लखनऊ, लोकोदय प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2019, पृ. 57
15. वही, पृ. 46

दूरभाष – 8219814195

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 106-110

समकालीन चुनौतियाँ और बसंत त्रिपाठी की कहानियों का रचनात्मक सरोकार

डॉ. राजेश राव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

समकालीन दौर के कुछ चुनिंदा और महत्वपूर्ण कहानीकारों में बसंत त्रिपाठी का नाम लिया जा सकता है। बसंत त्रिपाठी ने अपनी कहानी की दुनिया में एक तरफ रोजमर्रा के जीवन में आने वाली बातों को जगह दी तो दूसरी तरफ समाज, देश और दुनिया को प्रभावित करने वाले मसलों को भी कहानी का विषय बनाया। बसंत त्रिपाठी ने अपनी कहानियों में, पिछले दो दशक में, गाँव के शहर बनने की प्रक्रिया में, मनुष्य के ऊपर प्रभाव डालने वाले संवेदनशील तंतुओं की भी पहचान की है। उन्होंने अपनी कहानियाँ जहाँ एक ओर बड़े परिवर्तन की बात की है तो दूसरी ओर मनुष्य के जीवन में प्रभाव डालने वाली छोटी–छोटी घटनाओं को भी सामने लाने की कोशिश की है। अकारण नहीं है कि बसंत त्रिपाठी एक ओर जहाँ छोटी–छोटी और रोजमर्रा के जीवन को कहानियों का विषय बनाते हैं वहीं दूसरी तरफ प्रकृति और परिस्थितिकी से जुड़े सवाल को भी शामिल करते है।

कह सकते हैं कि बसंत त्रिपाठी का प्रतिनिधि कहानी संग्रह 'शब्द' कई मायने में उपरोक्त विचारों और चिंताओं को समझने में मदद ही नहीं करता है बल्कि अभिव्यक्त भी करता है। इस संग्रह में कुल नौ कहानियां हैं। 'तीन दिन' इस संग्रह की पहली कहानी है। इस कहानी के प्रमुख पात्र प्रो. सिन्हा वनस्पति–विज्ञान के प्रोफेसर हैं। मनुष्य के ऊपर परिस्थितिकी के पड़ने वाले प्रभाव को लेकर गहन चिंतन–मनन और शोध में सक्रिय हैं। महत्वपूर्ण है, आज की परिस्थितिकी को जानना, इस महसूस करना और अपने जाने हुए के प्रति जिम्मेदार बनना। जीव की तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुरूप जीवन को बदलना, जीवन को बचाने के लिए संघर्ष करना। मनष्य या इस संसार में जीव के रूप में जो कुछ भी है, अगर उसने बदली हुई परिस्थितियों में अपने आप को नहीं बदला तो आने वाले समय में जीवन अंतहीन दुखों में बदल जाएगा। जरूरत है सत्य को स्वीकार करना फिर उस स्वीकारे हुए सत्य के साथ तादात्म्य बनाकर आगे बढ़ना। प्रोफेसर सिन्हा के पिताजी द्वितीय विश्व युद्ध के समय एक सैनिक के रूप में लड़े थे। युद्ध के दौरान उनके लापता होने की खबर मिली। सिन्हा की माँ ने कभी भी यह नहीं माना कि वह शहीद हो गए हैं बल्कि उन्होंने पेंशन भी लेने से मना कर दिया– "मैंने तुम्हें कभी शहीद नहीं कहा और न ही अपने सामने किसी को कहने दिया"।[1] वह जब तक जिंदा रहीं अपने पति को याद कर रोती रहीं। पागलपन की हद तक किए जाने वाले उनके इस कार्य ने उनको शेष समाज से अलग कर दिया। वह अपने नात–रिश्तेदारों और दोस्तों से एकदम कट गईं। उनके अकेलेपन और व्यक्तित्व का

प्रभाव बचपन से ही उनके बेटे दामोदर यानी प्रो. सिन्हा पर पड़ा। पारिवारिक प्रभाव के कारण दामोदर (प्रो. सिन्हा) बचपन से ही समाज से कटकर रहने लगे। प्रोफेंसर बनने के बाद भी बचपन से मिले पारिवारिक वातावरण ने उनको कभी भी समाज से जुडध्ने नहीं दिया। यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हुआ। इसका बड़ा कारण है कि परिस्थितिकी के साथ तालमेल ना ही प्रों. सिन्हा की माँ ने किया और ना ही माँ के प्रभाव प्रो. सिन्हा ही निकल सके। इसलिए कहानी का समापन इस वाक्य से समाप्त होता है– ".....यदि उसमें मूव करने की कैपिबिलिटी नहीं है तो उसे नष्ट होना होगा"।[2] 'अतीत के प्रेत' कहानी निर्वासन के कारण मानसिक धरातल पर उपज आए प्रभाव को रेखांकित करती है। निर्वासित व्यक्ति अपनी पूरी जिन्दगी 'वह' और 'आत्म' के द्वन्द्व से गुजरता है। कई बार तो इस द्वन्द्व में उसका सब कुछ समाप्त हो जाता है लेकिन लोग उसकी व्यथा को समझने के बजाए उसके व्यक्तित्व की कमजोरी मान लेते हैं। गोवा की रहने वाली रोजी इस निर्वासन की व्यथा और द्वन्द्व से गुजरती है। वह एक ऐसी समुद्री पौधे की तरह है जो उखड़कर दूसरी जमीन में जीना चाहती थी। वह अपने प्रेमी धनंजय के साथ विवाह करके शिमला आ गई। लेकिन पहाड़ की ऊँचाई और उसकी जिन्दगी के साथ तालमेल नहीं बैठा पाई। रोजी एक दिन धनंजय से कहती है– "तुम्हारे पहाड़ बहुत सुन्दर हैं लेकिन मेरे लिए तो मेरा समुद्र ही सब कुछ है"।[3] रोजी एक तरफ धनंजय से प्यार करती थी तो दूसरी तरफ समुद्र और पहाड़ के जीवन में तालमेल नहीं बैठा पाती है। परिस्थितियों के साथ तालमेल नहीं बिठा पाने के कारण ही रोजी न चाहते हुए भी धीरे–धीरे घुलकर इस जीवन से विदा हो गई। हिंदी–साहित्य में पिता पर अलग–अलग विधाओं में ढेर सारी रचनाएँ लिखी गईं हैं। कहानी विधा इस मामले में प्रतिनिधित्व करता है। लोगों ने अपने पिता को कई तरह से याद किया है। किसी के लिए पिता उनके जीवन की सबसे बड़ी पूँजी हैं तो किसी के लिए संघर्ष के रूप में छवि है। कई बार तो परम्परा और आधुनिकता के रूप में पिता को परम्परा का प्रतीक और पुत्र को आधुनिकता के पर्याय के रूप में देखा गया है। बसंत त्रिपाठी ने अपनी कहानी 'पिता' में पिता के जिस रूप को सामने रखने की कोशिश की है, वह संघर्ष करने वाले पिता की छवि है। पिता जो सभी बच्चों को पढ़ा लिखा कर योग्य बनाया उसके पास बुढ़ापे में एक कायदे का ठिकाना नहीं है। उसका बेटा अमेरिका में नौकरी कर रहा है और जीवन की सांध्य बेला में आज भी उसके पास अपना मकान तक नहीं है। बुढ़ापे में शरीर में कई तरह की बिमारियों ने घर बना लिया है। वह इलाज़ के लिए बेटे पर निर्भर है। जिंदगी में जिसने पाई–पाई जोड़कर अपने जिम्मेदारियों का निर्वाह किया है उसके लिए पैसे का महत्व बहुत ज्यादा है। तभी तो बेटे के द्वारा रेलवे स्टेशन पर पानी की बोतल खरीदने पर भी उसको एतराज है। पिता अपने बेटे से कहता है – 'इसे क्यों ले आए? बेकार में दस रूपये खर्च कर दिये'।[4]

'अन्तिम चित्र' कैदी नम्बर तीन सौ इकहत्तर की कहानी है। उसको फाँसी होनी तय हैं। फाँसी पर चढ़ने के पहली वाली रात में वह चाक की इच्छा व्यक्त करता है। वह अपने कमरे की दिवार पर उस लड़की का चित्र बनाता है, जिसे वह अपने जीवन में सबसे ज्यादा चाहता था। उसके लिए खुदा का मतलब प्रेम है। लघु कलेवर में लिखी गई यह कहानी कैदी के व्यक्तित्व की एक और व्याख्या करती है। 'ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है' कहानी कहना चाहती है कि, धर्म, क्षेत्र, भाषा और जाति की जकड़बन्दी से निकलकर एक अच्छा मनुष्य बनना आज कितना मुश्किल हो गया है। अगर आप सिर्फ मनुष्य बने रहना चाहते हैं तो पग–पग पर आप को

चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। बख्शी और रेहाना के लिए साथ जीना इसलिए मुश्किल हो गया क्योंकि दोनों का धर्म अलग–अलग था। कहानी अपने पूरे विवरण के साथ मौजूद होकर एक और फलसफे को व्यक्त करती है– "जहां सफलता का मतलब कहीं पहुँचकर वहीं बने रहना नहीं होता बल्कि कई बार किसी पसंदीदा रास्ते पर जीवन भर चलना भी सफलता होती है"।[5] रेहाना के नहीं रहने पर बख्शी ने फिर से संगीत–साधना को अपने जीवन का मूल्य बना लिया। भले ही उसको वैसी सफलता नहीं मिली लेकिन संगीत उसके लिए सफलता नहीं सार्थकता का प्रश्न था। 'पन्द्रह ग्राम वजन' इस संग्रह की बेहद महत्वपूर्ण कहानी है। यह कहानी जहाँ एक ओर लेखक और प्रकाशक के बीच के सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है तो दूसरी ओर प्रकाशन और लेखन की दूसरी दुश्वारियों की ओर भी ध्यान आकर्षित करती है। लेखन की दुनिया में आए नए लोगों से कुछ सवाल भी करती है तथा लेखकों के बीच की प्रतियोगिताओं और छीना–झपटी की ओर भी इशारा करती है। लेखन की दुनिया में बन रही वैचारिक गिरोहबंदी पर बात करना जरूरी है। 21वीं शताब्दी में किस तरह अपने–अपने लेखक समूह तैयार हो रहे हैं– "दो और दिलचस्प गलियाँ थीं। एक का नाम स्त्री गली था और दूसरे का नाम था दलित गली "।[6] कहानीकार ने साहित्य की दुनिया जोगिरोगबंदी है उसको एक तरह से मंडी का नाम दिया है जिसमें सबकी अपनी–अपनी दुकाने हैं। विचारों के अनुसार लोग बंटे हुए हैं। इसलिए कहानीकार ने व्यंग्य करते हुए एक जगह लिखा है– "कहने को तो वह एक मंडी ही थी लेकिन हर गली अपने आप में एक जुदा दुनिया थी"।[7] साहित्य और साहित्यकार का कार्य जनसरोकार से जुड़कर रहना होता है। लेकिन आज के समय में साहित्य की दुनिया अधिकांश साहित्यकार ऐसे आयें हैं जिनके लिए साहित्य आगे बढ़ने का एक मौका मात्र है। वह साहित्य को व्यापक जनसरोकार से न जोड़कर इसको फाँसने से जोड़कर देखता है– "पिछली सात कहानियों को फाँसने में ज्यादा दिक्कत नहीं हुई थी"।[8] कह सकते हैं कि जब–जब साहित्य अपने मूल सरोकार से दूर होती है तब–तब वह एक ऐसे बाजघर में तब्दील होती है जहाँ वह जनता के मुद्दे और रचनात्मक सरोकार से धीरे–धीरे दूर होती चली जाती है। दूसरी तरफ कहानी यह भी कहना चाहती है कि आज के समय में अधिकांश प्रकाशकों का व्यक्तित्य पूरी तरह से परिवर्तित हो चुका है। वह लेखक के परिश्रम या रचना की गुणवत्ता की तरफ नहीं जाकर, अपना सारा ध्यान पैसे कमाने पर लगाए हुए है।

'शब्द' कहानी भाषा के सवाल को लेकर सामने आती है। भारत में मध्य वर्ग के उदय के बाद कुछ लोग अपनी सम्भ्रांतता और श्रेष्ठता दिखाने के लिए दिखावट के लिए अग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं। तब यह भाषा का सवाल कम होकर विमर्श का सवाल बन जाता है। जहाँ हम अपनी भाषा के सवाल को बार–बार उठाने के बावजूद अग्रेजी भाषा के जाल से आज तक निकल नहीं पाए हैं। इसके कारणों की पड़ताल करते हुए पाते हैं कि, हम भारतीय लोग औपनिवेशिक दासता से आज तक मुक्त ही नहीं हो पाए हैं। सवाल अग्रेजी का नहीं होकर अपनी भारतीय भाषाओं का है। आज सबसे बड़ी जरूरत अपनी भारतीय भाषाओं को मजबूत करने की है। अपनी भाषा मजबूत होने से, अपनी संस्कृति का विकास होता है। ज्यों–ज्यों हम अपनी भाषा छोड़ते चले जाते हैं त्यों त्यों अपनी संस्कृति से भी दूर होते जाते हैं। इसलिए भाषा का प्रश्न अपनी पहचान का भी प्रश्न है। जो लोग अंग्रेजी के समर्थन में यह कहते हैं कि, अग्रेजी से विकास का प्रश्न जुड़ा हुआ है, उनसे पूछा जाना चाहिए कि जिन देशों में अंग्रेजी का प्रचलन नहीं है क्या वह देश विकसित नहीं है। बल्कि कई देश आज के समय में प्रथम

पंक्ति में हैं जहाँ अग्रेजी नहीं बल्कि वहां के देश की अपनी भाषा में बोलचाल से लेकर नौकरी, पढ़ाई–लिखाई आदि की जा रही है। और इससे उनका विकास किसी भी तरह से प्रभावित नहीं हुआ है। यह कहानी सम्भ्रान्ता के प्रदर्शन के लिए वर्चस्वशाली भाषा के प्रयोग पर जहां प्रश्न उठाती है वहीं भाषा के शुद्धतावादी नजरिए को लेकर सजग भी है। 'मैं' और 'वह' के बीच भागती यह कहानी संवाद शैली में लिखी गई है। वह इस बात को भी उठाती है कि– "नये शब्दों को लेना अच्छी बात है, लेकिन अपने शब्दों को छोडघ देना कैसे अच्छी बात हो सकती है?"।[9] जब अपनी ही परम्परा में इतने शब्द हैं तो क्यों न उनका भी प्रयोग करें? वह संस्कृत, मराठी, गुजराती किसी भी भाषा का शब्द हो सकता है।

'फन्दा' आज के समय की बेहद महत्वपूर्ण विषय पर लिखी गई कहानी है। आज देश के बड़े हिस्से के किसानों की हालत ठीक नहीं है। विदर्भ के किसानों की स्थिति इस मायने में देश के किसानों से अलग नहीं है। इन आत्महत्याओं के पीछे अनेक कारण हैं। बीज, खाद, फसल की आसान खरीद, बेहतर जीवन का स्वप्न, बीमा योजनाएं और कर्ज के जाल में मध्यवर्ती किसान फंस जाते हैं। सरकारी–गैर सरकारी फरमानों को सच मानकर बैंकों–महाजनों के नए चक्रवात में फँसे हुए किसानों को जब तक सच्चाई का पता चलता है तब तक बहुत देर हो चुकी रहती है। इसमें भी बड़े किसान तो किसी तरह बच भी जाते हैं लेकिन छोटे किसान बेमौत मारे जाते हैं। इस कहानी का एक पात्र देवाजी सरोदे समझदार और जुझारू किसान था। जब विदर्भ के किसान एक–एक कर आत्महत्या कर रहे थे, उस समय में भी देवाजी डटकर खड़ा था और बात करने पर यही कहता कि, 'वह अपने बच्चों से बहुत प्यार करता है 'लेकिन एक दिन खबर आती है– "वर्धा जिले में ही समुद्रपुर गाँव के देवाजी सरोदे ने कल रात फाँसी लगाकर अपनी जान दे दी"।[10]

'घुन' इस संग्रह की एक और उम्दा कहानी है। गाँव से मुम्बई तक का सफर साहिब सिंह के लिए आसान नहीं था। लेकिन अपने मेहनत और लगन के चलते विज्ञापन–फिल्म बनाने में वह शोहरत और पैसा सब हासिल करता है। अपनी काबिलियत से कम समय में ऐसे मुकाम पर पहुँचता है जिसके कारण गाँव से लेकर मुम्बई जैसे शहर में चर्चा विषय बन जाता है। साहिब को भी लगता था कि, कारपोरेट का क्षेत्र सिर्फ सफलता को सलाम करता है। लेकिन जब जाति का सवाल यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ती तब उसे गाँव की उस सडांध की याद ताजा हो गई जो वर्षों से उसे घुन की तरह खाए जा रही थी–––किर्र–किर्र–किर्र। साहिब को लगता है कि, यह जाति का घुन कभी उसका पीछा नहीं छोड़ेगी। चाहे वह किसी भी दुनिया में पहुँच जाए और कितना भी सफल हो जाए।

बसंत त्रिपाठी की कहानियों में 21वीं सदी की बहसों को कथा के माध्यम से पढ़ा जा सकता है। इनकी कहानियों में दुहराव न होकर संवेदना के अलग–अलग तंतुओं को समझने की कोशिश दिखाई देती है। उनकी कहानियों में एक ओर जहाँ बदलते समय में मनुष्य के बने रहने के सवाल को उठाने की कोशिश दिखाई देती है तो दूसरी ओर प्रेम के लिए सब कुछ कुर्बान कर देने का त्याग भी। उन्होंने भारतीय समाज व्यवस्था में चल रहे भाषा के विमर्श को उठाने की जद्दोजहद की है तो दूसरी ओर कॉरपोरेट क्षेत्र में सफलता हासिल करने के बावजूद जाति के दंश को झेलने वाले एक व्यक्ति की पीड़ा को भी सामने लाने की कोशिश की है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि बसंत त्रिपाठी का कहानी संसार विविधता लिए हुए है और कहानियों

की यह विविधता मनुष्य के गहरे सामाजिक सरोकार से जुड़ी हुई है।

संदर्भ :-

1. शब्द (कहानी संग्रह), बसंत त्रिपाठी, प्रथम संस्करण –2016, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ–11, ISBN 978-93-263-5449-3
2. वही, पृष्ठ –25
3. वही, पृष्ठ –41
4. वही, पृष्ठ –46
5. वही, पृष्ठ –53
6. वही, पृष्ठ–131
7. वही, पृष्ठ–130
8. वही, पृष्ठ –131
9. वही, पृष्ठ–124
10. वही, पृष्ठ–90

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 111-115

आज के समाज में 'चकाचौंध' का सामाजिक और आर्थिक यथार्थ

संदीप कुमार
पी–एच.डी, शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

सारांशः :–

'चकाचौंध' उपन्यास की रचना 2008 में हरियाणवी साहित्यकार राजबीर सिंह धनखड़ के द्वारा में की गई। यह उपन्यास 'चाल जमाने की', 'किस्मत का खेल', 'चाह चौधर की' की कड़ी में इनका चौथा उपन्यास है। राजबीर सिंह धनखड़ ने हरियाणा साहित्य व हिंदी जगत में अपनी अलग पहचान बनाई है और साहित्य में अमूल्य योगदान दिया है। इसके लिए उनको हरियाणा साहित्य अकादमी ने 'पंडित लखमीचन्द' पुरस्कार से सम्मानित किया है।

इस उपन्यास के अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व आधुनिक बोध को दिखाया गया है। इसमें पैसों के साथ–साथ मानवीय मूल्यों में गिरावट देखी जा सकती है। इस उपन्यास में सांस्कृतिक यथार्थ से भी रूबरू करवाया गया है। भारतीय संस्कृति में शिक्षालय को मंदिर का रूप माना गया है। शिक्षक को भगवान का रूप माना जाता है। इस उपन्यास में निर्मला और शिक्षक दोनों ही अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं। वे सारी हदों को पार करते हैं। शिक्षक ने अपने युग में शिक्षा को व्यापार बना दिया है। शिक्षा का मूल्य लगातार गिरता जा रहा है। जो भविष्य को अंधकार व मूल्यहीनता की तरफ धकेलता जा रहा है, जो आगे चलकर यह भयंकर रूप धारण करेगा। धनखड़ ने इस उपन्यास में भ्रष्टाचार को भी दिखाया है जो एक महत्वपूर्ण समस्या समाज के सामने बनी हुई है। उपन्यास की भाषा प्रभावपूर्ण है।

मुख्य शब्द :– शिक्षा, शिक्षक, समाज, चकाचौंध, लालच, जाति, संबंध।

परिचय :–

'चकाचौंध' उपन्यास में हम सामाजिक यथार्थ की बात करें तो उसमें स्त्री के प्रति जो दृष्टिकोण समाज रखता है। वह बड़ी ही दयनीय है। पुरुष अपनी सोच को नहीं बल्कि वह स्त्री किस तरह के कपड़े पहनती है और किस तरह की बात करती है वह उसी पर नजर दौड़ाता है। समाज का माहौल लगातार बिगड़ता जा रहा है जैसे की लगातार बलात्कार और छेड़छाड़ की घटनाएं बढ़ती जा रही है। समाज उन लड़कियों के कपड़ों को जिम्मेदार मानता है और अपनी जिम्मेदारी से हाथ पीछे हटा लेता है। राजबीर सिंह धनखड़ ने भी अपने उपन्यासों में भी इसका वर्णन किया है– "इब या छोरी निर्मला छह साल की होगी। इसका नाम किते स्कूल म्हं लिक्खवाआ।

नाम तो म्हं इसका लिखवा आऊं पर आजकल स्कूलां के माहौल नै देक्खदे होड़ डर सा लाग्गै सै। एक दिन के अखबार म्हं तो लिक्ख राक्खी थी अक मासुम–मासुम सी छोरियां न पास करण का लालच देकै मास्टर उल्टे काम करदे सै"।[1] आज का समाज स्त्री के लिए सुरक्षित नहीं है सरकार भी नये–नये कानून बना रही है फिर भी सरकार के सारे दाव असफल हो रहे है। समाज में ये घटनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और स्थिति दयनीय होती जा रही है। आज का माहौल बिगड़ता जा रहा है। जब निर्मला ट्यूशन पर जाती है तो उसके पिता उसके साथ जाते है। रिश्तों की आज समाज में कोई प्रवाह नहीं कर रहा है। हर कोई रिश्तों को शर्मसार कर रहे हैं, चाहे वो चाचा–भतीजी हो, चाची–भतीजा हो या फिर गुरु–शिष्या हो। हर कोई अपनी वासना की लत में भरे दिखाई दे रहे है। हर दिन अखबारों में खबर आती है कि पिता ने बेटी के साथ दुष्कर्म किया, बेटे ने पिता की हत्या कर दी। आधुनिकता ने समय को बाहरी आवरण से आधुनिक बनाया परंतु इस चकाचौंध ने रिश्तों को तोड़ना सिखाया। सभी अपनी स्वार्थ पूर्ति में लगे हुए हैं। आज के युग में जानवरों और मनुष्य में कोई असर नहीं रह गया।

जिस तरह जानवरों के बच्चे जवान होने के बाद अपनी माँ और बहन के रिश्तों को भूल जाते हैं। वैसे ही आज के समय में ये इंसान कर रहे हैं। हम शिक्षा के क्षेत्र को भी खुद ही खत्म कर रहे हैं। जैसे एक बाप अपनी बेटी या बेटे को पेपर में नकल करवाता है तो वह बच्चा जिंदगी में आगे कैसे बढ़ेगा। ये उन बच्चों के साथ गलत होता है और कही ना कही उनमें उनके बाप ही जिम्मेदार होता है क्योंकि इस निकम्मे काम के लिए उनका बाप ही साथ दे रहा है और सभी मापदंडों को तोड़ रहा है। राजबीर सिंह धनखड़ ने शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग किया है। वह बताना चाहता है कि अकेला प्रशासन ही इसका जिम्मेदार नहीं है। बल्कि वे माता–पिता भी हैं। जो अपने को गलत काम करने से रोकते नहीं हैं। क्योंकि हर बुराई के साथ दोनों पक्षों का हाथ जरूर है। यहाँ उन्होंने खुद लिखा है, "बस लोगा नै नकल करवाण की आदतै पड़गी। पाच्छली बरियाँ म्हारे याडै गाम म्हं भी नकल करवाण आल्यां का मेला सा भरया था।"[2] इस उपन्यास के इस पहलू पर ध्यान दिया गया है कि हम किस तरह से अपने भविष्य को अंदर ही अंदर खोखला कर रहे हैं और देश में अपंग राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं। जो वर्तमान के साथ भविष्य को भी दिमक की तरह चाट रहा है।

हम उस भविष्य का निर्माण कर रहे है कि वह अपने पैरों पर दो कदम भी नहीं चल पायेगा। राजबीर सिंह धनखड़ ने शिक्षा व्यवस्था और समाज पर करार प्रहार किया है जो कि समाज के लिए एक अभिशाप बनकर सामने आ रहा है। उन्होंने भ्रष्टाचार पर भी दृष्टि डाली है कि शिक्षा व्यवस्था के समय में चाहे वह पुलिस कर्मचारी हो या स्कूल का कोई कर्मचारी हो। सभी भ्रष्टाचार में लिप्त पाये जाते है और बच्चों तक पर्ची पहुंचाते है। जब कानून को बनाने वाले ही कानून को तोड़गे तो देश किस दिशा में जा रहा है ये आप अनुमान लगा सकते है और अब किसी चीज का मूल्य है तो वह है पैसा। इसके लिए मनुष्य किसी भी हद तक गिर सकता है और किसी प्रकार कि शर्मिंदगी नहीं होगी "आज काल तो सारे कै रिश्वत खोरी चाल री सै। ज्यब ताही इस छोरी के पर्चे चाल रे सै जब ताही तू इसकी गेल्या ही जाया कर। पाँच–पाँच न० की मदद जै सारे पर्चा म्हं होगी वा भी भतेरी।"[3] इन्ही गलत कार्यों का साथ देने से इसका खामियाजा निर्मला को कॉलेज में भुगतना पड़ता है। वह चंद न० के लिए अपनी मर्यादा को तोड़ती है और उन शिक्षकों को भी बढ़ावा देती है। जिनका कोई आधार नहीं होता। उन जैसे चंद शिक्षकों ने पूरी शिक्षा व्यवस्था को गंदा कर रखा है जो शिक्षक के नाम पर धब्बा

है। इन जैसों को शिक्षा और समाज व्यवस्था से निकल फैंकना चाहिए। उनके खिलाफ सख्त कार्यवाही करनी चाहिए जिससे दूसरे भी इसे काम करने से कतराएं।

इस उपन्यास में जातिवाद का भी उल्लेख हुआ है। लोकेश हरिजन जाति का होता है और अपने आपको ब्राह्मण बताता है। क्योंकि वह निर्मला से शादी करना चाहता है। इस तरह मनुष्य भी जातिवाद से जकड़ा हुआ है, जो अपनी जाति को छुपाने के लिए झूठ का सहारा लेता है। जो की आगे चलकर सारे रिश्तों को खत्म कर देता है। निर्मला का चरित्र विकास शहर से शुरू होता है। शहर में संपति बनाने के लिए निर्मला और उसका पति दोनों सुबह से रात तक ट्यूशन देने लगे,कुछ ही समय में कोठी बना ली, कार ले ली और सभी सुख सुविधाओं से संपन हो गए। उनका बेटा राहुल कुसंगति मे पड़ कर शराब और सिगरेट पीने लगा। पैसों की चकाचौंध में सुरेश और निर्मला की आँखे इतनी चौंधया गई की उन्हे ये भी नहीं पता चला की उनका बेटा राहुल शराब पीकर घर आने लग गया। राहुल को आई.टी.एम. में दस लाख रुपये देकर दाखिल दिलाया और वहाँ पर स्मैक पीने लगा। पुलिस ने उसे स्मैक के साथ पकड़ लिया। जब घर सूचना की तो सुरेश को इतना गहरा आघात लगा कि वह हार्ट–अटेक से मर गया। हम कह सकते हैं कि पैसे की चकाचौंध आदमी को ले डुबती है। इस उपन्यास में ज्ञान की कदर न कर के सिफारिसों से नौकरी लग जाते हैं। आजकल के युवा दिन रात मेहनत कर के भी सफल नहीं हो पाते ″आज काल काबलियत नै कोई ना पूच्छदा। पीसे के आग्गै काबलियत भी न्यूअ खंडी खंडी हान्ड़ै सै। इसका मतलब तै सौ का तोड़ तो यू होया अक आजकहाल तो पीसे का ए बोलबाला सै। पीसे के आग्गै सभ कुछ बिकज्या सै। ज्यांहे तै बस पीसा धोरै होणा चाहिए फेर किसै दूसरी चीज की जरूरत कोन्या।″[4]

आज के युग में ज्ञान की जरूरत नहीं,बल्कि पैसों की आवश्यकता है लोगों की सोच ये हो गई है कि अगर आज के दिन आदमी के पास पैसे हैं तो सब कुछ है वह हर चीज जैसे– न्याय, नौकरी और किसी को नीचा दिखना ये सब पैसों से ही खरीदे जा सकते है। बस आज के दिन पैसा ही सब कुछ है। लोग समाज में पैसों को ही अहमियत देते हैं। जिस के पास है उससे अच्छा व्यवहार करते हैं चाहे वे गाँव के समाज में हो, चाहे यारे–प्यारे की रिश्तेदारी में हो लोग पैसों के चक्कर में इतने अंधे हो गये हैं कि वे गरीब लोगों को अपने पैरों की जुत्ती भी नहीं समझते हैं। इनके साथ साथ राजनीति भी पूरी तरह से गंदी हो चुकी है। चुनाव के समय में राजनेता जनता के पैर पकड़ते है। जैसे ही चुनाव खत्म होते हैं तो जनता को अपने पैसों के बल पर नचाने लगते हैं। फिर जनता की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। आज का समाज भी अपनी भी उसी दिशा में जा रहा है। वह चारों तरफ से अराजकता के महोल से घिरा हुआ है। आज की चकाचौंध से समाज इतना नीचे गिर चुका है कि अगर किसी के साथ कोई घटना हो जाये तो दूसरा उसे देखने भी नहीं जायेगा। इन सब बातों से आप देख सकते हैं कि हमारा देश और समाज किस ओर प्रगति कर रहा है।

राजबीर सिंह धनखड़ ने सामाजिक यथार्थ और धार्मिक यथार्थ को अपने अन्य उपन्यास 'किस्मत का खेल' में भी दिखाया है, किस तरह दहेज और धार्मिक लड़ाई दंगे समाज को अंदर से दीमक की तरह चाट रहे हैं जो कि समाज के वर्तमान के साथ–साथ भविष्य को भी अंधकारमय बना रहा है। इस उपन्यास में मौजी (किसान) पात्र केंद्रीय है सारा उपन्यास इसी के इर्द–गिर्द घुमता है। इस समस्या में लड़का दहेज की मांग न कर के स्वयं लड़की दीपिका अपने पिता से दहेज की मांग करती है। ″बाबू उणकी ओड़ तै दहेज की कोई मांग ना या गाड़ी

देण आली बात तै म्हं ए कहरी सूं...... इब पीसयां का जुगाड़ करना थारा काम सै या मेरी कोई सिर दर्दी कोन्या।"[5]

दूसरी तरफ इस उपन्यास में धार्मिक लड़ाई दंगे समाज का यथार्थ दिखते है जो सभ्य समाज को पतन की और ले जाता है और भाईचारे को भी बिगाड़ रहा है जिससे समाज और राष्ट्र दोनों को नुकसान उठान पड़ रहा है। इस उपन्यास में लेखक धर्म के प्रति समान भाव रखने के लिए प्रेरित करना चाहता है। इस उपन्यास में दीपिका हिन्दू लड़की, हेनरी जोसफ एक ईसाई युवक होने पर जब दीपिका पूछती है कि तुम शादी करने के उपरांत त्योहारों को कैसे मनावोगे। हमें धर्म बदलना पड़ेगा........। इस पर जोसेफ कहता है– "धर्म बदलण की जरूरतै के सै, हिन्दू अर ईसाई दोन्नू त्योहारा नै कट्ठे ए मनाया करेगें।"[6] ऐसा करने पर अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा मिलेगा। इसके अलावा देश में धर्म के नाम पर हो रहे झगड़े से भी छुटकारा मिलकर अमन–चैन स्थापित होगा।

लेखक ने अपनी साहित्य दुनियाँ में एक मध्यमवर्गीय परिवार में दाम्पत्य संबंधों के विघटन की समस्या को लिया है। इस समस्या का कोई कारण न होने पर भी केवल अहम की टकराहट के कारण दाम्पत्य संबंध टूट जाते है। उन्होंने आजकल गिरते नैतिक आचरण का वर्णन किया है जोकि आजकल एक ज्वलंत समस्या हो गई है। पहले की तरह आज का युवक अपने पड़ोस, गाँव गुहानड इत्यादि की लड़कियों को अपनी बहन न समझ कर केवल भूखे भेड़िये की भांति अपनी हवस की पूर्ति के लिए ललाहित रहता है। इन युवकों में उच्च विद्यालय तथा राष्ट्र के निर्माता कहे जाने वाले शिक्षकों का नैतिक आचरण इतना गिर चुका है कि अपनी बेटी की उम्र की छात्राओ से छेड़छाड़ तथा हवस की पूर्ति जैसा घिनौना कार्य करते है। ये कहानी आज कल यहाँ तक सीमित नहीं है, राजबीर सिंह धनखड़ ने एक वैश्या का जीकर करते हुए उसके जीवन पर व्यंग्य किया है और कहा है कि हमारे समाज में वैश्याओं को किन नजरों से देखा जाता है, ये सब को पता है लेकिन उनके वैश्य बनने का हाथ कही ना कही हमारे समाज और परिवार के ही है, आज कल लोग भलाई के लिए काम नहीं करते, अपना उल्लू सीधा करने के लिए करते है या अपनी हवस पूरी करने के लिए करते हैं।

राजबीर सिंह धनखड़ का एक उपन्यास 'बेटी' है, जिसमें उसने एक वैश्या के जीवन के बारे में बताया है कि उसने किन–किन परेशानियों का सामना किया है, जिस कारण वह वैश्या बनी। "पहले तो मन्नै मेरे चाचा के घर जाने से इन्कार कर दिया। पर मेरी माँ नै इस डर से कभी मेरी बेटी का ऐसा सुन्दर रिश्ता टूट न जाए। मुझे पीट कर चाचा के पास भेज दिया। फिर क्या हुआ? और क्या होणा था उस माणस की खाल म्हं हवस के भेड़िये ने अपनी हवस की पूर्ति के लिए मुझे नोच डाला। उसनै अपनी बेटी के साथ ऐसा घिनोंना काम करते हुए शर्म नहीं आई। उसनै चाचा जैसे संबंध को भी कलंकित कर दिया और फिर जिससे मेरी शादी की उसनै भी थोड़े दिन अपणी हवस पूर्ति की। मैं पति समझ कै उसकै साथ खुश थी पर उसनै भी कुछ दिन बाद एक कोठे की मालकिन को बेच दी।"[7] मतलब अपने ही लोग अपनी हवस को पूरा करने के लिए अपने ही परिवार के बच्चों के साथ किस तरह की घिनोंनी हरकत करते है और अपने सारे रिश्तों को भूल कर, सारी पारिवारिक मर्यादाओं को तोड़कर कैसे खुद के ही खून के प्यासे बने हुए है और किस तरह से जीवन का सर्वनाश कर रहे है।

हम कह सकते है कि राजबीर सिंह धनखड़ ने सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक यथार्थ से समाज को रूबरू करवाया है कि पुलिस प्रशासन, शिक्षा व्यवस्था व समाज के अन्य पक्षों में बुराई अपने पैर पसार रही है

जो मानव जाती को उत्थान पर ले जाने की बजाय विघटन की तरफ ले जा रही है। शिक्षा व्यवस्था को मंदिर से कम नहीं जाना जाता और शिक्षक को मंदिर के पुजारी से तुलना की जाती है जो विद्यार्थियों को सभ्य मनुष्य बनाने का प्रयत्न करता है। परन्तु आज वही भगवान अपने भगत से घिनोंनी हरकत करता है और अपनी मर्यादा से गिर चुका है। चकाचौंध उपन्यास ने ये साबित किया है और दूसरी तरफ इस व्यवस्था में भ्रष्टाचार को भी साबित किया है कि विद्यार्थी किस हद तक गिर सकते है। मैं इस बात का बिल्कुल समर्थक नहीं करता कि शिक्षक मर्यादा से गिर रहा है बल्कि विद्यार्थी भी अपनी मर्यादा से ज्यादा गिर चुके हैं। दूसरी तरफ की बात की जाए तो 'किस्मत का खेल' उपन्यास में धार्मिक एकता को बनाये रखने के लिए प्रयास किया है जो अन्तर्जातीय विवाह करके सभ्य समाज की स्थापना करने का प्रयास किया है और इन की भाषा भी प्रवाहपूर्ण रही है।

संदर्भ सूची :-

1. धनखड़, डॉ० राजबीर सिंह, चकाचौंध, निर्मला पब्लिकेशन ए–139 गली न. 3, कबीर नगर शाहदरा, दिल्ली, संस्करण– 2007, पृ०– 12
2. वही, पृ०– 22
3. वही, पृ०– 23
4. वही, पृ०– 123
5. धनखड़, डॉ० राजबीर सिंह, किस्मत का खेल, डी. एस. बुक्स डिस्ट्रीब्यूटर, साइंस कॉलेज के सामने, अशोक राजपथ, पटना, संस्करण– 2009, पृ०– 96
6. वही, पृ०– 99
7. धनखड़, डॉ० राजबीर सिंह, बेटी, लक्ष्मी प्रकाशन, जी–30/बी, गली नं. 4 गंगा विहार, दिल्ली, संस्करण– 2009, पृ०– 27

गाँव व डाक– गुढ़ा कैमल, तहसील– कनीना,
जिला– महेंद्रगढ़ (हरियाणा) 123027
मो. 8053167200
sandeepyadav15121992@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक पृष्ठ : 116-120

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र के उपन्यास लेखन में बिम्बात्मक शैली का प्रभावी चित्रण

विनोद कुमार गुप्ता, शोधार्थी
डॉ० आदित्य कुमार गुप्त, शोध निर्देशक एवं सह आचार्य,
हिन्दी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा।

मानव जीवन के बाहर एवं आंतरिक पक्ष के पारखी यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने अपने उपन्यासों में समाज के प्रत्येक वर्ग की जीवन पद्धति एवं विचार श्रृंखला का प्रभावी चित्रण करते हुए अपने लेखन कौशल का लोहा पाठकों को मनवाया है। 'चन्द्र' ने अपने उपन्यासों में प्रकृति चित्रण के साथ–साथ मानव के मनोभावों के अंकन में बिम्बात्मक शैली का प्रयोग करते हुए दृश्यों का सजीव चित्रण किया है। प्राकृतिक दृश्यों के बिम्ब उपस्थित करने में मानवीकरण अलंकार का सहारा लिया तो मानव के मनोभावों एवं कार्यों के बिम्ब विधान में रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग करते हुए दृश्य बिम्बों की सृष्टि की है। बिम्बात्मक शैली के प्रयोग से आपके उपन्यास पाठकों का ध्यान आकर्षण कर एक जिज्ञासा मन में जागृत करते हैं।

अपने 'तृष्णा' उपन्यास में प्रकृति के मनोरम दृश्य का चित्रण करते हुए चन्द्र लिखते है ''राख के रंग में आसमान निर्मल हो गया था। नभ–गंगा के कूल पर कोई–कोई बादल का टुकड़ा उस पापी मनुष्य की याद दिला रहा था। जो अपने जीवन के महापापों को एकान्त में धोने के लिए पावनगंगा में स्नान हेतु आया हो। पवन का हल्का झोंका भी आ–जा रहा था।''[1]

इसी प्रकार जब 'वीणा' के घर में खाने के भी लाने पड़ने लगते है और 'उमेश' भी पढ़ाई के कार्य से बाहर चला जाता है तो 'चन्द्र' 'वीणा' की मानसिक स्थिति का प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए लिखते हैं– ''साँझ का अलसाया वातावरण छा रहा था। पश्चिम में अरुणिमा की दहकती आभा फूट रही थी उसमें एक मेघ–खंड ऐसा लग रहा था, जैसे कोई नाव किसी भयानक, आग में जल रही हो।''[2]

कथानक आगे बढ़ता है, उमेश की मृत्यु हो जाती है और वीणा सरजू वकील के यहाँ आया बनकर जाती है। वीणा अपने अतीत को भूलना चाहती है लेकिन अतीत की बातें याद आ जाती है उसका मन दु:ख से भर जाता है। साँझ के समय प्रकृति के मनोरम दृश्य को देखकर उसका मन प्रसन्नता से भर जाता है–

''संध्या का सूर्य प्रकृति के आग्रह से क्षितिज का चुम्बन ले रहा था। अनासक्त क्षितिज का प्रगाढ़ आलिंगन अनावृत–अनातुर दैवी मिलन की तरह अपनी अनुपम लालिमा बिखेर रही थी।''[3]

प्रभात के समय का चित्र खींचते हुए 'चन्द्र' ने मनोहारी दृश्य बिम्ब चित्रित किया है– ''प्रभात की स्वर्णिम

किरणें ऊँचे–ऊंचे मकानों की दीवारों का चुम्बन लेती हुई नाच रही थीं। अनाम ने सूरज की ओर पड़ने वाली खिड़की को खोला ताकि धूप कमरे में आ जाए।''[4]

प्रकृति के साथ–साथ मानवीय वार्तालाप के कथानकों का सृजन करते हुए चन्द्र ने दृश्य बिम्ब खींचे है–

''क्षितिज के काले भाल पर कोहनूर हीरे के सदृश सूरज रूपी बिन्दी दीप्त हुई। अनाम तुरन्त दैनिक कार्यवाही से निवृत होकर इन्दु के घर की ओर चला। इतने सवेरे–सवेरे अनाम को देखकर इन्दु को विस्मय हुआ। वह उसे चाय का एक प्याला देती हुई बोली, 'तुम्हारी आँखों से लगता है कि तुम रात–भर नहीं सोए।[5]

अनाम अपने कमरे में बैठा है उसके आसपास का वातावरण अस्त व्यस्त है। 'चन्द्र' ने शब्द चित्र खींचा है– ''उसके सामने एक कापी पड़ी है और कापी के पास एक दवात, जिसकी स्याही सूख गयी थी, जैसे कई दिनों से इसका उपयोग नहीं हुआ है और यह केवल मेज की शोभा के लिए ही रखी हो। दो–चार हिन्दी की पुस्तकें और दो–चार अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यास बेतरतीब पड़े हुए थे। भूरे रंग के टेबल क्लॉथ पर कहीं–कहीं हल्के स्याही के छोटे–छोटे धब्बे थे, जो नये नहीं जान पड़ते थे।"[6]

चंन्द्र ने चित्रमयी भाषा का प्रयोग करते हुए 'आदमी बैसाखी पर' उपन्यास की पात्र 'वरदा' के शरीर का शब्दों के माध्यम से ऐसा वर्णन किया है कि पाठक के सामने उसकी शारीरिक बनावट सजीव हो उठती है–

''वरदा– एक निम्न मध्य वर्ग की कुंवारी बंगालिन कन्या! काली पर जरा मांसल। छोटे–छोटे पाँव चीनियों की तरह, जैसे वरदा के माँ–बाप ने भी उसे जन्मते ही लोहे के जूते पहना दिए हों। आँखे बड़ी–बड़ी गहरी और काली। बालश्यामल घटाओं की तरह घने और काले और उसकी कमर तक नीचे फैले हुए। आठवीं कक्षा में पढ़ती थी। उम्र चौदह–पन्द्रह पर शरीर का फैलाव पूर्ण युवती का सा विवाह के योग्य।''[7]

इसी प्रकार एक बार वरदा 'अनाम के समक्ष साड़ी पहनकर आती है तो 'चन्द्र' वर्णन करते हुए लिखते है– ''इस बार वरदा ने शांति निकेतन की साड़ी पहन रखी थी और चेहरे पर पाउडर मल कर उसने अपने हाथों और चेहरे के रंग में काफी फर्क डाल लिया था।"[8]

चंन्द्रा ने अपनी लेखनी को अपने मनोभावों के अनुसार गतिमान किया है 'अमोलक बाबू' की कलकत्ता की कोठी का 'शब्द चित्र' प्रस्तुत करते हुए वे लिखते है– ''अमोलक बाबू की कलकत्ता में अपनी कोठी थी। विशाल पाषाणों की छाती को विदीर्ण करके वह कलात्मक सर्जना निपुण कलाकारों की प्रतीक जान पड़ती थी। कोठी के दो विशाल द्वारा थे। उन दो विशाल द्वारों को बाद कोठी का तीसरा द्वार था जिसके आगे संगमरमर के दो छोटे हाथी बने हुए थे। इन हाथियों की सबसे बड़ी विशेषता यह भी कि ताजमहल की प्राचीरों पर जिस प्रकार विभिन्न रंग के पत्थरों की नक्काशी की गई है ठीक उसी प्रकार इन हाथियों के विभिन्न अंगों की सर्जना की गई थी। हाथियों के बाद दरवाजों के प्राचीरों को खोखला करके द्वार के दोनों ओर दो पत्थर के दरबान निर्मित थे। भीतर घुसते ही शीशे का एक अद्भु त झाड़फानुस लटक रहा था। आंगन भी संगमरमर का बना था। आँगन की दीवार लाल रंग के पत्थर की भाँति थी।[9]

रेगिस्तानी क्षेत्र में आने वाले भूतोलिए का वर्णन 'चन्द्र' ने इतना प्रभावी किया है कि पाठक के समक्ष धूलभरा बवण्डर सजीव हो उठता है– ''बाहर कोई भूतोलिया (बवन्डर) भयंकर–चक्कर लगाता हुआ रेत, कागज के टुकड़े, सूखी पत्तियों को लिए अन्तरीक्ष की ओर उड़ रहा था। 'अचालक, भूतोलिये का एक हिस्सा लावारिस सा सेठानी के कमरे में घुस गया। पलभर के लिए उसने कमरे में भूचाल– सा ला दिया। कई खिलौने पटरियों

पर रखे थे, वे गिर गये। धूल ही धूल कमरे में फैल गई।"[10]

इसी प्रकार– चाँदा की दादी 'गवरा' के रहने के स्थान का वर्णन बिम्बात्मक शैली में करते हुए 'चंन्द्र' दृश्य बिम्ब प्रस्तुत करते हैं–

'''उसकी दादी गवरा जो घर में रहकर भी घर से कटी–कटी रहती थी। कच्चे घर के आगे जो नोरा (खुली जमीन) पड़ता था, उस नौरे के दरवाजा के पास ही उसने कच्ची सालकी बना रखी थी। उसमें दरवाजा नहीं था। उस सालकी में एक कोने में पानी की मटकी, एक खाट, खाट पर तरह–तरह के कपड़ों की बनी रलकी। रलकी की सिलाई काफी महीन और कलात्मक होती थी। छोटी–छोटी सिलाई से एक गोलाकार व चौखाने टांके बड़े ही अच्छे लगते थे। लकड़ी की एक पुरानी खूंटी पर एक बटुआ लटका रहता था। उस बटुवे में सुई–धागा, एक छोटा सा चाकू, एक कतिया (छोटी कैची) रखा रहती थी। एक छोटा सा आला था, उस आले में एक बोदा लंहगा पड़ा था। एक कोने में कैर की लाठी पड़ी थी जिसकी चिपचिपाहट से लगता था कि इसे काफी तेल पिलाया हुआ है।"[11]

मन्दिर व उसके आसपास का शब्द चित्र बनाते हुए 'चन्द्र' लिखते है– ''मन्दिर पर फटी हुई ध्वज लहरा रही थी। भैरव का मन्दिर था। उसके पर बेर की घनी झाड़ियाँ थी। दो तीन 'आंक' भी उगे हुए थे। दूर रेत में फोग की झाड़ियाँ दिखाई दे रही थी।''[12]

प्रकृति चित्रण करते हुए 'चंन्द्र' मन मस्तिष्क में प्रस्तुत वातावरण को सदृश कर देते हैं, वे लिखते है कि– ''पावस का चन्द्रमाँ नीले आकाश में चमक रहा था। ठंडापन बढ़ गया था। सारा गगन एकदम धुला–धुला लग रहा था। कुएँ के पास उगे खेजड़े नहाये–नहाये से लग रहे थे। हवा काफी ठंडी चल रही थी।"[13]

चन्द्रमाँ की बादलों में लुकाछिपी के दृश्य का वर्णन करते हुए 'चन्द्र' लिखते है– बादल का एक टुकड़ा लावारिस सा पवन–रथ पर आरुढ़ होकर आया और चाँद को ढँक गया। पलभर के लिए अँधेरा छा गया।''[14] इसी प्रकार बादल और धूप की लुकाछिपी के दृश्य का अंकन करते हुए 'चन्द्र' लिखते है– ''दोपहर की गर्म हवा क्षण–भर चल कर इस तरह रुक गयी थी मानों सावल के अम्बर में श्वेत बादलों को अपलक होकर देखना चाहती हो। कभी–कभी बादलों के छोटे–छोटे टुकड़े मिलकर प्रचण्ड सूर्य की ढँक लेते थे तो धुंधला सा छा जाता था।''[15]

बिजली चमकना, बादलों का गरजना एवं वर्षा होने के मनोरम दृश्य का चित्रण करते हुए 'चन्द्र' लिखते हैं– ''चिन्ता की प्रखरता से अभिभूत उसे घटाओं के बीच दीप्त दामिनी ने चौका दिया था। बूंदो का वर्षण प्रारंभ हो गया था। एकाध बूँद उस पर भी पड़ जाती थी। बिजली तड़प रही थी, घन गरज रहे थे और बाहर सड़क पर दो–चार बच्चे स्नान कर रहे थे।''[16]

महाकवि राहुल के भव्य भवन का वर्णन करते हुए 'चन्द्र' बिम्बात्मक शैली काम में लेते हैं– ''नगरपति की ओर से प्रदत्त राहुल का अपना भव्य कलात्मक भवन था जिसके चारों ओर एक रमणीय उपवन था। उपवन के परकोटे की प्राचीरों पर मंजुल लतिकाएँ छिटक रही थी। भाँति–भाँति के पुष्प उपवन में विकसित थे, जिससे समीर सौरभमय हो रहा था।"[17]

इसी प्रकार वासवदत्ता की उद्विग्नता एवं रात्री के समय का मनोहारी चित्रण करते हुए 'चन्द्र' लिखते है– ''पवन शांत था। वातावरण निस्पंद था। रजनी के नयन अश्रूपूर्ण थे तारे पीड़ा के छाले बनकर वासवदत्ता को

दुःख देने लग गए थे। काली यवनिका फटने के लिए आतुर हो रही थी।''[18]

प्रकृति का मानवीकरण करते हुए 'चन्द्र' दृश्य बिम्ब का निर्माण करते हैं– ''मारुति के अदृश्य झूले पर चढ़कर मन–मयूर मतवाले हिचकोले ले रहा था।''[19]

चेहरे को देखकर मन में उठ रहे भावों का चित्रण करते हुए 'चन्द्र' लिखते है– ''उसने देखा और देखकर समझा कि आज इस शारदीय पूर्णिमा–सी सुधामयी मोहिनी के मुख पर व्यथा का विपुल विषाद घोर आन्दोलन कर रहा है। ह्रदय भयंकर विस्फोट करने वाला है, ये उसके नयन बता रहे थे।''[20]

रजनी के आगमन, आकाश में चाँद व तारें तथा चाँदनी का वर्णन करते हुए 'चन्द्र' लिखते है कि– "रजनी का आगमन हो चुका था। तारों भरे नीलाम्बर के मध्य निशाचर अपनी सम्पूर्ण कलाओं से दीप्त हो रहा था। उसकी ज्योत्स्ना से वासवदत्ता का कक्ष क्षीर के सदृश्य श्वेत लग रहा था।''[21]

इसी प्रकार 'बड़ा आदमी' उपन्यास में रेलगाड़ी के दृश्य का चित्रण करते हुए दृश्य बिम्ब का निर्माण करते हैं– ''भयंकर आग की लपटों से पूर्व दिशा जल उठी। रेलगाड़ी विशाल अजगर की तरह पृथ्वी पर चल रही थी। उसकी गति इतनी धीमी थी मानों बड़ा अजगर अपने पेट में अनेकों इन्सानों को समाविष्ट किए हुए रेंगता हुआ चल रहा हो।"[22]

सूर्योदय के समय का चित्र शब्दों के माध्यम से खींचते हुए 'चन्द्र' लिखते है कि "अब सूर्य का गोला क्षितिज पर तेजी से घूमता हुआ दिखलाई पड़ने लगा था। उसके समीप विस्तृत अरुण आभा में तैरते बादलों के टुकड़े किनारों से एक हल्का ताम्र–पीत प्रभाव देने लग गए थे।"[23]

'बड़ा आदमी' उपन्यास के पात्र सम्पत के हुलिए का शब्दचित्र खींचते हुए 'चन्द्र' लिखते है ''कंकाल मात्र! विस्तृत वर्णन इस प्रकार हो सकता है, धंसी हुई आँखें, उभरी हुई गालों की हड्डियाँ, काला रंग, गले के चारों और उभरी हुई नसें। सूराख की तरह घिनौना मुंह। लकड़ियों की तरह हाथ–पाँव। आप समझ लीजिए, प्रत्यक्ष रूप में प्रेतात्मा।"[24]

राजा भगवानदास के वस्त्रादि का वर्णन करते हुए 'चन्द्र' लिखते हैं– ''राजा भगवान दास ने पीतवर्णी पीताम्बर पहन रखा था। पीताम्बर रेशमी था और उसकी किनारे हल्के रंग की थी। राज भगवानदास के बलिष्ठ शरीर पर मोटा जनेऊ लटक रहा था।''[25]

रात्रि कालीन दृश्य का चित्रण करते हुए 'चन्द्र' लिखते हैं– "सुहागिन लुगाई की सतरंगी चुनरी की तरह नीला–नीला आकाश लग रहा था। कृष्ण भक्त था। इसलिए अंधेरे की दीप्त चादर धोरों और नदी पर फैली हुई थी। सारा नगर सन्नाटों में डूबा हुआ सोया था।"[26]

निष्कर्ष : 'चन्द्र' ने अपने उपन्यासों में कथानक को प्रभावशाली बनाने के लिए बिम्बात्मक शैली का प्रभावी प्रयोग किया है। आपकी बिम्बात्मक योजना सफल रही है। 'चन्द्र' ने दृश्य बिम्ब, श्रुत बिम्ब, एवं ध्वनि बिम्बों का सफल चित्रण किया है। आपने मानवीकरण अलंकार का सहारा लेते हुए सुबह, दोपहर, शाम. रात्रि व दिवस के प्राकृतिक चित्रण में रुचि ले है।

सन्दर्भ-सूची :-

1. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – तृष्णा पृ. 19

2. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – तृष्णा पृ. 47
3. यादघ्वेन्द्र शर्मा 'चन्द्रा' – तृष्णा पृ. 66
4. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – आदमी बैसाखी पर पृ. 34
5. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – आदमी बैसाखी पर पृ. 83
6. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – आदमी बैसाखी पर पृ. 09
7. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – आदमी बैसाखी पर पृ. 11
8. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – आदमी बैसाखी पर पृ. 11
9. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – आँचल में दूध : आँखों में पानी पृ. 29
10. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – चाँदा सेठानी पृ. 14
11. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – चाँदा सेठानी पृ. 38
12. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – चाँदा सेठानी पृ. 45
13. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – चाँदा सेठानी पृ. 86
14. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – चाँदा सेठानी पृ. 88
15. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – तृष्णा पृ. 09
16. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – तृष्णा पृ. 09
17. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – संन्यासी और सुन्दरी पृ. 27
18. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – संन्यासी और सुन्दरी पृ. 99
19. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – संन्यासी और सुन्दरी पृ. 52
20. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – संन्यासी और सुन्दरी पृ. 62
21. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – संन्यासी और सुन्दरी पृ. 93
22. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – बड़ा आदमी पृ. 5
23. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – बड़ा आदमी पृ. 5
24. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – बड़ा आदमी पृ. 17, 18
25. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – हीरा और पन्नी पृ. 6
26. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' – हीरा और पन्नी पृ. 19

विनोद कुमार गुप्ता पुत्र श्री रामगोपाल गुप्ता
फलौदी सदन वेयर हाउस के पास
महावीर नगर रामगंज मण्डी
जिला कोटा (राज.) 326519
मोबाइल न. 9772897758
ईमेल– vkgupta7475@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक पृष्ठ : 121-127

कबीर का जीवन दर्शन

डॉ दुर्गेश कुमार शर्मा
पी.एम. कॉलेज, असिस्टेंट प्रोफेसर, अलीगढ़।

कबीर दास जी के जीवन के बारे में अलग–अलग विचार विपरीत तथ्य और कई कथाएं हैं ऐसा माना जाता है कि कबीर दास जी का जन्म बड़े चमत्कारिक रूप से हुआ था उसकी माता एक ब्राह्मण विधवा थी जो अपने प्रेमी के साथ एक प्रसिद्ध तपस्वी के तीर्थ यात्रा पर गई थी उनके समर्पण से प्रभावित होकर तपस्वी ने उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा कि जल्द ही एक बेटे को जन्म देगी। बेटे का जन्म होने के बाद बदनामी से बचने के लिए कबीर की मां ने उन्हें (प्रेमी) छोड़ दिया क्योंकि उनकी शादी नहीं हुई थी। जिसको उस ब्रह्माणी ने जन्म के उपरांत ही नदी में बहा दिया था। कबीर दास जी के जीवन के बारे में कई किदवन्तीया अलग–अलग रूप से कबीर दास जी का जीवन दर्शाती है। कबीरदास जी का जीवन के बारे में स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता कबीरदास जी का जीवन जो भी है वह किदवन्तीयों के अनुसार ही रचा गया है। कबीर साहब का जन्म कब हुआ, यह ठीक–ठीक ज्ञात नहीं है। परन्तु ऐसा माना जाता है कि उनका जन्म 14वीं–15वीं शताब्दी में काशी (वर्तमान वाराणसी) में हुआ था। कबीर चरित्र बोध एवं 'कबीर कसौटी' ग्रन्थों के आधार पर कबीर का जन्म सम्वत् 1455 में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को काशी में हुआ था। कबीर का जन्म 1398 में काशी के पास मगहर नामक स्थान पर हुआ था। माना जाता है लहरतारा नामक नदी के किनारे वे नीरू और नीमा नामक जुलाहा दंपत्ति को मिले थे। मैं यहाँ पर उपलब्ध तथ्यों के आधार पर कबीर का जीवन परिचय देने की चेष्टा करूँगा। कबीर द्वारा कही गई निम्न पंक्तियाँ –

'गुरू प्रसादी जयदेव नामा भक्ति के प्रेम इनहीं हैं जाना।'

इन पंक्तियों में दो ऐतिहासिक संतो जयदेव और नामदेव का उल्लेख हैं। जयदेव का समय 1170 ई. है। ये राजा लक्षणसेन के दरबार को सुशोभित करते थे। आचार्य शुक्ल ने नामदेव का जन्म सन् 1270 माना है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कबीर का जन्म इन दोनों के बाद हुआ। अर्थात 1270 ई. के बाद कबीर का जन्म मानना चाहिए। कबीर ने रामानन्द का आदर के साथ स्मरण किया है। कबीर की निम्न पंक्तियों इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है 'रामानन्द राम रस माते कहहि कबीर हम कहि कहि थाके। रामानन्द जी को कबीर का गुरू बतलाया गया है। अतः कबीर का जन्म रामान्नद के बहुत बाद होना चाहिए। रामानन्द का समय (1382 से 1448 ई.) माना जाता हैं। पीपा जी ने कबीर का वर्णन किया है–

'भगति प्रताप राज्य वे कारण जिन जन आप पठाया। नाम कबीर सब परकास्या तहाँ पीपे कछु पाया।।'

परशुराम चतुर्वेदी ने पीपा का जन्म काल सं. 1465–1475 लगभग माना हैं। अतः कबीर जी पीपा के

पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। सिकन्दर लोदी के सम्बन्ध में कहै पदों से सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। सन् 1755 में प्रियदास द्वारा लिखी गई नाभादास के भक्तमाल की टीका से यह स्पष्ट होता है कि कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। 'प्रभाव फेरि उपज्यों अभाव द्विज आयो पातसाह सौ सिकन्दर सुनाव हैं। प्रियादास ने भक्तमाल टीका में सिकन्दर लोदी और कबीर में संघर्ष दिखलाया हैं। उसी टीका में एक टिप्पणी देते हुए श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद ने लिखा है यह प्रभाव देखकर ब्राह्मणों के हृदय में पुनः मत्सर उत्पन्न हुआ। वे सब काशी राज को भी कबीर के वश में जानकर बादशाह सिकन्दर लोदी के पास जो आगरे से काशी आया या पहुँचे।' इतिहास ग्रन्थकारों के अनुसार इनका समय 1488–89 से 1517 तक है। सिकन्दर 1494 में काशी जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि कबीर सन् 499 तक विद्यमान थे। उस समय तक वे गुरू की पदवी प्राप्त कर चुके थे तथा हिन्दू और मुसलमानों पर तीक्ष्ण प्रहार भी करने लगे थे। कबीर के जीवन से सम्बन्धित्त विवरण अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, किन्तु उनमें सबसे महत्वपूर्ण कबीर चरित्र बोध है। इसमें कबीर का जन्म चौदह सौ पचपन विक्रमी, जेष्ठ सुदी पूर्णिमा. सोमवार लिखा है।' डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने एस. आर. पिल्ले की 'इण्डियन क्रानालोजी' के आधार पर गणित करके यह स्पष्ट किया है कि सं. 1455 की जेष्ठ पूर्णिमा को सोमवार ही पड़ता हैं। कबीर पंथियों में निम्न पद बड़ा प्रसिद्ध हैं –

'चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूर्णमासी प्रकट भए।
धन गरजै दामिनी दमके बरषै झर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिलै तंह कबीर भानु प्रगट भए।।'

इसी पद के आधार पर बाबू श्याम सुन्दरदास ने गए का अर्थ व्यतीत हो जाना लगाकर इनका जन्म 1456 सिद्ध करने का प्रयास किया है, परन्तु डॉ. माला प्रसाद का तर्क अधिक प्रमाणिक हैं कि 1456 की जेष्ठ पूर्णिमा को सोमवार नहीं पड़ता है। सोमवार 1455 जेष्ठ सुदी पूर्णिमा को ही पड़ता है। इसलिए निसंकोच कबीर का जन्म 1455 जेष्ठ सुदी पूर्णिमा, सोमवार को ही माना जाना चाहिए। इनका समय संवत् 1645 निर्धारित किया गया हैं। यह अनुमान पर आधृत है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तुत हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण में अनन्तदास को संवत 1645 के लगभग वर्तमान बताया गया है। इसी के आसपास उन्होंने कबीर साहब की परिचयी लिखी होगी। इन अनुमान के आधार पर परिचयी का समय संवत् 1645 माना गया है। कबीर का नाम भी विचित्र हैं। इसका अर्थ बढ़ा या श्रेष्ठ हैं। यह अरबी भाषा का शब्द हैं। भारत के धार्मिक साहित्य में यह नाम अमर हो चुका है। यही इनका प्रसिद्ध नाम रहा है। कहीं–कहीं आदर सूचक शब्दों के माध्यम से 'कबीरदास' कबीर साहब नाम उनके हिन्दू शिष्यों ने प्रयोग किया और कबीर साहब उनके मुसलमान शिष्यों ने। डॉ. श्याम सुन्दर दास ने कहीं–कहीं 'कबीरदास' का प्रयोग किया है। और परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर साहब का प्रयोग किया है लेकिन डॉ. बड़थ्थेवाल और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने केवल कबीर नाम का ही प्रयोग किया है। यही इनका प्रसिद्ध नाम हैं।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने शंका उठाई हैं। कबीर का उनके माता–पिता का दिया हुआ नामकरण था? और फिर स्वयं ही समाधान करते हुए कहा है–यह असंभव नहीं हैं कि वे मुसलमान कुल में उत्पन्न थे, इसलिए कबीर उनके नाम का सर्वप्रमुख अंग रहा हो। कबीर कसौटी में कहा गया है कि मुसलमानी प्रथा के अनुसार बालक

कबीर का नामकरण करने के लिए काजी को बुलाया गया। काजी ने जब कुरान खोला तो उसमें चार नाम निकले कबीर, अकबर, कुन, किब्रिया। इसमें पहला शब्द, कबीर, ईश्वर–बोधक था और अन्य उसी के समानार्थी थे। इसीलिए दूसरे काजियों को भी बुलाया गया और उचित नाम प्राप्त करने के लिए फिर से प्रयत्न किया गया। इस बार भी चार नाम निकले जिन्द खिजर, पीर और श्हक, फिर वही संकट सामने आया। इनमें भी पहला और चौथा नाम ईश्वर–बोधक था और शेष दो एक मामूली जुलाहै के लड़के के लिए आवश्यकता से अधिक गौरव बोधक थे। अतः काजियों ने निर्णय दिया कि बच्चे को मार डाला जाये। इस पर बच्चा स्वयं बोल पड़ा में शरीर रहित और सभी बंधनों से मुक्त था। मैने स्वेच्छा से यह शरीर धारण किया है। इस शरीर में मैं कबीर कहा जाऊँगा। यह कथा कबीर की दिव्य उत्पति सिद्ध करने के लिए कल्पित की गयी होगी। किन्तु इसमें इतना सत्य अवश्य है कि कबीर को कबीर (श्रेष्ठ, महान) कहें जाने का आरम्भ में काजियों ने विरोध किया होगा। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 'कबीरा' की व्यत्पतिः कवि–कब्बि–काव्य़डा' से सिद्ध करते हुए इससे हल्के ढंग का काव्य अर्थ लिया है। मुमकिन हैं आरम्भ में उच्चवर्गीय लोग कबीर की उवियों को हीन दृष्टि से देखते रहे हों और उन्हें 'कबीर' (अर्थात–हल्की बात कहने वाला) कहते रहे हों, किन्तु बाद में उनकी भक्ति से प्रभावित होकर उन्हें कबीर (श्रेष्ठ, महान) कहने लगे हों। कबीरदास ने अपनी एक साखी में यह कहा है कि मैं किसी लायक नहीं था, जो कुछ किया, भगवान ने किया। उन्हीं की कृपा से 'कबीर' (साधारण रचना करने वाला) 'कबीर' (श्रेष्ठ, महान्) हो गया।

कबीर दास जी का विवाह :–

कबीर दास जी का विवाह बचपन में ही कर दिया गया था कबीर दास जी की पत्नी का नाम लोई था कबीर की स्त्रियों के सम्बन्ध में मतभेद हैं, कबीर पंथियों के अनुसार कबीर अविवाहित थे। उनके अनुसार 'लोई उनकी शिष्यायी, पत्नी नहीं। किन्तु अन्तः साक्ष्य लोई को उनकी पत्नी ही सिद्ध करते हैं।' देजिए –

'हम तुम बीच भयो नहीं कोई। तुमहि सुकंत नारि हम सोई।
कहत कबीर सुन हुरे लोई। अब तुमरी परतीती न होई।।'

डॉ. रामकुमार वर्मा तथा डॉ. त्रिगुणायत ने कबीर की दो पत्नियों स्वीकार की है। कबीर की पहली पत्नी घर वारी और लोकाचार को मानने वाली थी और घूँघट निकालती थी। कबीर इस थोथे लोकाचार का विरोध करते थे। इसीलिए दूसरी पत्नी को चेतावनी देते हुए कहते हैं–

'रहुरी बहुरिया घूँघट जानि कादै।
अंत की बार लहँगीन आदै।
घूँघट काढ़ि गई तेरी आगे।
उनकी गैल तोहि जन लागे।
घूँघट काढ़े की इहाँ बढ़ाई।
दिन दस पाँच बहु भले आई।
घूँघट तेरौ तौपरि साचौ।
हरि गुन गाबत कूदहि अरू नाचौ।।'

लगता है, पहली पत्नी कबीर को रूचिकर नहीं थी। इसीलिए वे दूसरी पत्नी ले आए। पहली उन्हें संसार में लगाने वाली थी, दूसरी उन्हें ईश्वर भजन में प्रेरित करती थी इसीलिए कबीर कहते हैं –

'अबकी घरनि घरि जा दिन में, पीष सू बांन बन्यू रे।
कहैं कबीर भाग बपुरी को, आई रू राम सुन्यूं रे।।

छोटी (धनिया) के बाद में वह मर गई थी। घर आने पर बड़ी (लोई) ने किसी और को पति स्वीकार कर लिया और इस प्रकार कबीर की दो पत्नियाँ सवतः सिद्ध होती हैं। उर्वशी सूरती के अनुसार इस प्रसंग पर उनकी दो पत्नियों का रहस्य समझना आवश्यक है। इस प्राप्त विवरण से एक बात निश्चित होती है कि उनकी एक ही पत्नी थी और उनके नाम तीन थे– पालन पिता द्वारा धनिया नामकरण हुआ और उसे लोई दुलारवश कहते रहें। साधुओं ने उसे प्रसन्न होकर 'रामजनिया' कहकर उसके भक्त हृदय की सराहना की। यदि कबीर के द्वारा दो पत्नियों का उल्लेख मान लिया जाय, तो वह अध्यात्मपरक व्याख्या से स्पष्ट होता है और भ्रांति का निवारण कर देता हैं। कबीर ने माया याने सांसारिक चितवृत्ति को जीव की पत्नी कहा हैं जो साधना में बाधा डालती है और श्रद्धा उसकी दूसरी पत्नी है जो परमात्मा मिलन में सहायक हैं। कबीर दास जी के एक पुत्र और एक पुत्री भी थी पुत्र का नाम कमाल था और पुत्री का नाम कमाली था यह उनकी रचनाओं द्वारा प्रमाणित होता है कि पुत्र का नाम कमाल था ऐसा माना जाता है। जन–श्रुति के अनुसार कबीर के घर एक पुत्र और एक पुत्री थी। जिनके नाम क्रमशः कमाल और कमाली थे। पंथ वालो के अनुसार ये उनके सगे लड़का–लड़की नहीं थे, अपितु कबीर ने अपनी करामात से मुर्दे बच्चे जिन्दा किए थे, जो उन्हीं के साथ रहते थे। कबीर का अधिकांश समय सत्संग में व्यतीत होता था। इसलिए कबीर अपने करघे पर ध्यान नहीं दे पाते थे और जो कमाते थे, उसे साधु–संतों की सेवा में ही खर्च कर देते थे। इसके विपरीत पुत्र कमाल माता की प्रसन्नता के लिए धन संग्रह करता था, साधु सेवा के लिए नहीं। इससे कबीर बड़े दुखी हुए और उन्होंने कहा :–

''बूड़ा वंश कबीर का, उपज्यो पूत कमाल। हरि का सिमरन छांडिके ले आया घर माल।।''

लेकिन डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं कि कबीर इसलिए असन्तुष्ट थे कि वह सगुणोपासकों की श्रेणी में सम्मिलित हो गया था। डॉ. मोहन सिंह आदि कुछ विद्वान कबीर के दो लड़के और दो लड़कियों मानते है। जिनके नाम कमाल, जमाल, कमाली, और जमाली थे। कमाल और जमाली के स्थान पर निहाल और निहाली नाम भी बताए गए हैं।

कबीर की शिक्षा-दीक्षा :-

कबीर के सभी आलोचकों ने उन्हें अनपढ़ बताया है। इस सन्दर्भ में प्रायः सभी विद्वानों ने उनके अन्तः साक्ष्यों का उल्लेख किया है। मसि कागद छुयां नहीं, कलम गहि नहीं हाथ तथा 'विद्या पढ़ें बाद नहीं जानूँ।' इन दोनों उक्तियों से प्रायः सभी विद्वानों ने यह आशय ग्रहण किया है कि कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे। किन्तु इनमें यह ध्वनित भी होता है कबीर ने बावन अक्षर वाली वर्ण माला तथा तत्कालीन व्याकरण, न्याय, दर्शन, मीमांसा आदि का अध्ययन नहीं किया। यह भी सत्य हो सकता है कि इतनी छोटी जाती में उत्पन्न होने के कारण और निर्धनता के कारण कबीर किसी विद्यालय में या किसी मस्जिद में जाकर पढ़ने में असमर्थ रहे हो। किन्तु प्रखर बुद्धि, मेधावी कबीर ने कभी तो अक्षर बोध की बात सोची होगी। विनम्रतावश कबीर ने 'मसिकागद वाली बात कही होगी ऐसा अनुमान कर लेना अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसके अतिरिक्त सत्संग से कबीर ने सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्र का जो ज्ञान प्राप्त किया वह बेजोड़ रहा हैं। बड़े–बड़े दार्शनिक व उच्च विचारक भी कबीर दर्शन के कायल हो जाते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक, संकेत, प्रखर व्यंग्य और चुटुल प्रयोग का कोई सानी नहीं हैं।

अतः कबीर वाणी का अभिधेय अर्थ जब सही नहीं हैं तो उसके द्वारा प्रयुक्त मसि कागद का अभिधेय अर्थ लगाकर उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करना अन्याय होगा। इसलिए हम तो यही मानते हैं कि तत्कालीन युग के पढ़े–लिखे लोगों की श्रेणी तक कबीर शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके, किन्तु अनपढ़ नहीं थे। यदि उनकी इन उक्तियों को विनम्रता प्रदर्शन मान लिया जाए तो समस्या का समाधान भी उपस्थित हो जाता है।

गुरू :–

कबीर दास जी काशी के गंगा घाट के किनारे रहा करते थे ऐसा कहा जाता है कि कबीर दास जी गंगा घाट के किनारे बैठे हुए थे तभी वहां पर गुरु रामानंद जी स्नान कर रहे थे रामानंद की नजर कबीर दास पर पड़ी जिसके कारण कबीर के मुंह से राम शब्द निकल पड़ा इसी राम शब्द को सुनकर गुरु रामानंद अत्यधिक प्रसन्न हुए तभी से रामानंद ने कबीर दास जी को अपना शिष्य बना लिया। कबीर के समर्थक और पंथीय लोगों का यह मानना है कबीर समर्थ थे उन्हें गुरू की आवश्यकता नाम मात्र के लिए पड़ी थी, क्योंकि लोग उन्हें निगुरा कहकर उनकी वाणी का आदर नहीं करते। किन्तु हमारी दृष्टि में कबीर ने गुरू की आवश्यकता अनुभव की और किसी प्रकार तत्कालीन प्रसिद्ध संत रामानन्द को अपना गुरू बना लिया, किन्तु डॉ. मोहनसिंह, बैस्क्ट साहब डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी रामानन्द को कबीर का गुरु नहीं मानते हैं। कुछ विद्वानों ने शेखतकी को कबीर का गुरु माना है, किन्तु अन्तः साक्ष्य शेख तकी को सामान्य फकीर से अधिक नहीं मानते, बल्कि कबीर का प्रतिद्वन्द्वि स्वीकार करते हैं। देखिए –

नाना नाच नचाय कै नाटे नट का मेष।
घर–घर अविनासी अहँ, सुनहु तकी तुम शेष।।
शेख तकी तब कहें रिसाई, है कोई बाँध कबीरा भाई।।
शेख तकी तब मीजै हाथा, सूखे मुंह नहिं आवै बाता।।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि शेख तकी कबीर के गुरू नहीं हो सकते। कबीर जैसा व्यक्ति जो गुरू को परमात्मा से भी ऊँचा मानता हो, वह अपने गुरू के प्रति ऐसी भाषा का प्रयोग भी कभी नहीं कर सकता। पं. रामचन्द्र शुक्ल का निर्णय भी अवलोकनीय हैं 'कबीर ही शेखतकी को उपदेश देते जान पड़ते हैं।' रामानन्द को कबीर का गुरू मानने के पीछे एक तो जनश्रुति का आधार है और दूसरा रामानन्द चेताये रामानन्द राम रस भाते, कहहि कबीर हम कहि–कहि थाके के अन्त साक्ष्य भी रामानन्द को ही कबीर का गुरु स्वीकार करते हैं। डॉ. मंडारकर, मिस्टर मॅकालिक, पं. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. श्याम सुन्दर दास, डॉ. बड़थ्थवाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी इन सभी विद्वानों ने जनश्रुति को असिद्ध करने वाले प्रमाणों के अभाव में रामानन्द को ही कबीर का गुरू स्वीकार किया हैं। उन्हें शिक्षा दी इस प्रकार कबीर दास जी के गुरु श्री रामानंद जी थे गुरु रामानंद जी ने कबीर दास को ज्ञान और भक्ति के दर्शन कराएं तथा उनके ज्ञान को विकसित करने में गुरु रामानंद जी ने भूमिका निभाई।

स्वयं कबीर का यह कथन :–

काशी में परगट भये, हैं रामानन्द चेताये।

इससे इनके गुरु का नाम भी पता चलता है कि प्रसिद्ध वैष्णव सन्त आचार्य रामानन्द से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। गुरुमन्त्र के रूप में इन्हें 'राम' नाम मिला, जो इनकी समग्र भावी साधना का आधार बना।

कबीर दास जी की प्रमुख रचना :-

वैसे तो कबीर दास जी की अनेक रचनाएं लिखी हुई है लेकिन कबीर दास जी के मुख्य रचनाएं :– (1) कबीर की साखियां (2) सबद (3) रमणी प्रमुख रचनाएं हैं।

कबीर की साखियां :- इस रचना में ज्यादातर कबीर दास जी की शिक्षाओं का उल्लेख मिलता है और उसके सिद्धांतों का वर्णन इस रचना में बखूबी से किया गया है।

सबद – कबीर दास जी की सर्वोत्तम रचनाओं में से एक है इस रचना में कबीर दास जी के प्रेम और अंतरंग साधना का वर्णन खूबसूरती से किया गया है।

रमणी – इसमें कबीर दास जी के ने अपने कुछ दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचारों की व्याख्या का वर्णन किया गया है इस रचना को कबीर दास जी ने चौपाई छंद में लिखा है।

कबीर दास जी की अन्य रचनाएं मोको कहां, रहना नहिं देस बिराना है, दिवाने मन, भजन बिना दुख पैहौ, राम बिनु तन को ताप न जाई, हाँ रे! नसरल हटिया उसरी गेलै रे दइवा, बीत गये दिन भजन बिना रे, चेत करु जोगी, बिलैया मारै मटकी। कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे। उन्होंने अपनी वाणी से स्वयं ही कहा है 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गयो नहिं हाथ।' जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने अपनी रचनाओं को नहीं लिखा। इसके पश्चात भी उनकी वाणी से कहे गए अनमोल वचनों के संग्रह रूप का कई प्रमुख ग्रंथो में उल्लेख मिलता है। ऐसा माना जाता है कि बाद में उनके शिष्यों ने उनके वचनो का संग्रह 'बीजक' में किया।

संत कबीर दास जी को कई भाषाओं का ज्ञान था वे साधु–संतों के साथ कई जगह भ्रमण पर जाते रहते थे इसलिए उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान हो गया था। इसके साथ ही कबीरदास अपने विचारो और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए स्थानीय भाषा के शब्दों का इस्तेमाल करते थे। जिसे स्थानीय लोग उनकी वचनो को भली भांति समझ जाते थे। बता दें कि कबीर दास जी की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भी कहा जाता है।

कबीर दास जी के प्रसिद्ध दोहे :-

यहाँ संत कबीर दास जी के जीवन परिचय के साथ ही उनके कुछ लोकप्रिय अनमोल विचारों के बारे में भी बताया जा रहा है। जिन्हें आप नीचे दिए गए बिंदुओं में देख सकते हैं :–

'माटी कहे कुमार से, तू क्या रोंदे मोहे। एक दिन ऐसा आएगा, मैं रोंदुंगी तोहे।'
'पाथर पूजे हरी मिले, तो मै पूजू पहाड़! घर की चक्की कोई न पूजे, जाको पीस खाए संसार!!'
'गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागू पाय। बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो मिलाय।।'
'यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। शीश दियो जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।'
'उजला कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाहिं। एकै हरि के नाव बिन, बाँधे जमपुरि जाहिं।।'
'निंदक नियेरे राखिये, आँगन कुटी छावायें। बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुहाए।'
'प्रेम न बारी उपजे, प्रेम न हाट बिकाए। राजा प्रजा जो ही रुचे, सिस दे ही ले जाए।'
'जो घट प्रेम न संचारे, जो घट जान सामान। जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिनु प्राण।'
'मैं–मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसो भाजि। कब लग राखौ हे सखी, रूई लपेटी आगि।।'
'चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोये। दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोए।'
'तीरथ गए से एक फल, संत मिले फल चार। सतगुरु मिले अनेक फल, कहे कबीर विचार।'

'जिनके नौबति बाजती, मैंगल बंधते बारि। एकै हरि के नाव बिन, गए जनम सब हारि।।'
'कबीर' नौबत आपणी, दिन दस लेहु बजाइ। ए पुर पाटन, ए गली, बहुरि न देखै आइ।।'
'ऐसी वाणी बोलिए मन का आप खोये। औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होए।।'

कबीर दास जी की मृत्यु :-

कबीर दास जी ने अपना सारा जीवन काशी में रहकर ही लोगों के कल्याण के लिए और सामाजिक बुराइयों और कुरुतियों का अंत करने के लिए लगा दिया। मृत्यु के समय कबीरदास जी मगहर चले गए जो कि उत्तर प्रदेश में पड़ता है ऐसा कहा जाता है कि उस समय मगहर में रहने वाले लोगों को नर्क की प्राप्ति होती थी कबीर दास जी ने इसी अंधविश्वास को झूठा साबित करने के लिए मगहर चले गए कबीर दास जी की मृत्यु के समय मगहर चले गए ताकि समाज में फैली हुई अंधविश्वास को जड़ से रोका जा सके। कबीर के उपर्युक्त अन्तः साक्ष्य इस बात का संकेत करते हैं कि उन्होंने अपने समकालीन राजाओं का संकेत ही दिया है। राणा कुम्भा (1433 से 1468 ई.) तथा राणा संग्राम सिंह सांगा (1508—1527 ई.) राणा कुम्भा मेवाड़ के प्रतापी शासकों में से था। उसने अनेक बार मालवा और गुजरात के मुस्लिम सुल्तानों को धूल चटाई और मालवा के सुल्तान को पराजित करने की स्मृति में चित्तौड़ में एक विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया।' राणा सांगा इस राज्य का दूसरा पराक्रमी और प्रतापशाली शासक हुआ। उसके समय में मेवाड़ राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर था।

कहा जाता है कि उसने दिल्ली तथा मालवा के सुल्तानों को 18 बार पराजय दी थी। वह एक अद्वितीय सेनानी तथा महान् योद्धा था। ये दोनो राणा ही कबीर के समसामयिक थे। यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कबीर राणा की अद्वितीय विजयों से उसकी वीरता की गाथाओं से भली—भाँति परिचित थे। अतः उपर्युक्त साखियों 1515 या 1516 के आस—पास रची गई होंगी। इसी सम्बन्ध में डॉ. सरनाम सिंह शर्मा लिखते हैं कि 'जिस समय कबीर ने राणा के सन्दर्भ से अपनी वाणी को उद्घाटित किया उस समय तक राणा को प्रभूत विजय गौरव मिल चुका होगा और यह समय उसके सिंहासनारूढ़ होने के काफी बाद का होना चाहिए। इस प्रकार हम सम्बन्धित साखियों के रचना—काल तक जा पहुँचते हैं। जो सन् 1515 या 1516 ई. के आसपास होना चाहिए। कबीर दास जी 120 साल की उम्र में सन 1518 में देहांत हो गया उनके संपूर्ण जीवन लीला समाप्त हो गई कबीर दास जी ने समाज को अनेक संदेश दे गए।

'जसराणा गढ़ में लिखी सुमिर ले करतार। राजा राणा छत्रपति सावधान किन होई।।'

संदर्भ सूची :-

1. https://www.simpletarika.com/2023/01/blog&
2. https://www.studyfry.com/kabir&das&ka&jivan&parichay
3. https://www.hindikiduniya.com/biography/kabir&das/

जवाहर नगर, सुरक्षा विहार, जीटी रोड, अलीगढ़।
मोबाईल — 9411880204
Email - durgeshsharma0204@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 128-131

महाभारत और पर्यावरण संरक्षण : एक अनुशीलन

डॉ. पूजा शर्मा
प्रवक्ता, विद्युत कन्या इंटर कॉलेज, कासिमपुर अलीगढ़।

शोधसार :–

पर्यावरण हमारे चारों ओर व्याप्त वह परिवेश है जो हमारे जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात भी रहता है, अर्थात् वह वातावरण जो किसी जीव के उद्‌भव, पोषण और विकास के लिए समान जीवन दशाओं का निर्माण करता है, पर्यावरण कहलाता है। इस आधार पर पर्यावरण का अर्थ केवल प्रकृति के भौगोलिक स्वरूप से ही नहीं लगाया जा सकता, अपितु पर्यावरण का अर्थ उन समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों जैसे– आचार–विचार, रीति–रिवाज, संस्कार, परम्पराओं आदि के समुच्चय से भी है, जिनसे मानव जीवन प्रभावित होता है। अस्तु महाभारत के परिप्रेक्ष्य में इन्ही पर्यावरणीय घटकों पर प्रकाश डालना यहाँ अपेक्षित हैं।

महाभारत पर्यावरण :–

पर्यावरण शब्द 'परि' तथा आङ् उपसर्गपूर्वक वृङ् आवरणे धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। परि शब्द का अर्थ है– चारों ओर, इधर–उधर, इर्दगिर्द आदि। आवरण शब्द का अर्थ है– ढकना, छिपाना तथा आच्छादित करना अर्थात् फैला हुआ (वृङ् धातु के अर्थ में)। अतः पर्यावरण शब्द का अर्थ है– परितः आवृणोति आच्छादयति इति पर्यावरणम्–अर्थात् हमारे चारों ओर व्याप्त वह आवरण जिससे हम प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष रूप से घिरे हुए हैं और जिससे हम प्रभावित भी होते हैं, पर्यावरण कहलाता है। "पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्त्व वाले पारस्परिक क्रियाशील तन्त्रों से इसकी रचना होती है। ये तन्त्र अलग–अलग तथा सामूहिक रूप से विभिन्न रूपों में परस्पर संबद्ध होते हैं, जिनका समग्र रूप पर्यावरण कहलाता है। अतः पर्यावरण को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **अजैविक पर्यावरण :–**

भौतिक पर्यावरण को अजैविक पर्यावरण कहते हैं। इसमें अजैविक तत्त्व, जैसे– जल, वायु, स्थल, मृदा ऊर्जा आदि सम्मिलित हैं।

2. **जैविक पर्यावरण :–**

जैविक पर्यावरण के अन्तर्गत समस्त जीवधारी आते हैं। इसमें मानव, वनस्पति, पशु–पक्षी, सरीसृप, कीट–पतंग आदि सभी सम्मिलित हैं।

3. **सांस्कृतिक पर्यावरण :–**

"पृथ्वी पर मानव–निर्मित पर्यावरण सांस्कृतिक पर्यावरण कहलाता है। इसके अन्तर्गत नृजात, भाषा, धर्म,

रीति–रिवाज एवं जीवन शैली आदि सम्मिलित होते हैं। सांस्कृतिक पर्यावरण में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ भी सम्मिलित होती हैं।

पर्यावरण किसी निश्चित तन्त्र को नहीं कहा जा सकता है। यह जैविक तथा अजैविक संघटकों का मिश्रित रूप है। "पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के अनुसार पर्यावरण के अन्तर्गत सभी भौतिक तथा जैविक पदार्थों और उसके आपसी सम्बन्धों को सम्मिलित किया जाता है।

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी :-

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी दो भिन्न पारिभाषिक शब्द हैं। इनमें पर्यावरण शब्द का आशय उस प्राकृतिक परिवेश से है, जो हमें चारों ओर से घेरे रखता है। इस प्राकृतिक परिवेश में हम जन्म लेते हैं, पोषित होते हैं, विकसित होते हैं तथा अपने पर्यावरण से अन्तःक्रिया करते हैं। दूसरी ओर पारिस्थितिकी जीवों तथा उनके पर्यावरण के सम्बन्धों का वैज्ञानिक अध्ययन है। प्रसिद्ध अमेरिकी वैज्ञानिक यूजीन पी. ओडम (Eugene P. Odumn) ने पारिस्थितिकी को परिभाषित करते हुए कहा है कि "Ecology deals with the study of interrelationship between biotic and abiotic components of nature as well as relation among individuals of the biotic components" अर्थात् प्रकृति में पाए जाने वाले जैविक अवयवों के अलग–अलग/व्यक्तिगत पारस्परिक सम्बन्धों के साथ–साथ सभी जैविक अवयवों का अजैविक अवययों के सम्बन्ध के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं। इस प्रकार "विभिन्न जीवों का उनके भौतिक एवं जैविक पर्यावरण के साथ सम्बन्ध के अध्ययय को पारिस्थितिकी कहते हैं।

निश्चित ही पर्यावरण उन प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा जीवीय तन्त्रों का समुच्चय है, जो जीव जगत् के सभी प्राणियों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करता है। पर्यावरण इस पृथ्वी पर जीवन को जीवन्त रूप में परिवर्तित करता है। इसके विभिन्न तथ्य संस्कृत साहित्य में यत्र–तत्र प्रकीर्ण है। भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा प्राचीन काल से ही प्रकृति प्रेमी रही है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों एवं प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में सर्वत्र प्रकृति के प्रति सेवाभाव, संरक्षण भाव एवं एवं सौंदर्य भाव को प्रदर्शित किया गया है। वहां प्रकृति के पल्लव पल्लव को संजोने की बात कही गई है। रामायण एवं महाभारत दोनों ही ग्रंथों में पर्यावरणीय संचेतना देखने को मिलती है। पर्यावरण के संरक्षण के हित विभिन्न प्रकार के उपायों का वर्णन वहां पर प्राप्त होता है। यही नहीं मानव मात्र की व्यवहारिक जीवन शैली में भी पर्यावरण संरक्षण के सूत्र देखने को मिल जाते हैं अतः महाभारत में भी पर्यावरण संरक्षण को लेकर के गंभीर संचेतना देखने को मिलती है।

महाभारत में पर्यावरण संरक्षण के तथ्य :-

महाभारत न केवल इतिहास है, न केवल पुराण ही अथवा न केवल धर्मग्रन्थ ही है, अपितु वह एक ऐसा बृहत्काय महाकाव्य है, जिसे विश्वकोष कहा गया है। यही कारण है कि महाभारत में विविध पर्यावरणीय घटकों के संरक्षण सम्बन्धी अनेक दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। महाभारत के सृष्टि सम्बन्धी विवेचनों में आध्यात्मिक, भौतिक आनुवांशिक एकता और समानता का प्रतिपादन किया गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से एक ही परम शक्ति सम्पूर्ण संसार का मूल कारण है और नानारूपात्मक जगत् एकसूत्र में पिरोई गई मणियों के समान उस परम शक्ति से ओत–प्रोत है–

"बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।"

महाभारत में एक परमतत्व से पचभूतों की क्रमिक उत्पत्ति, पक्षभूतों से समस्त भौतिक जगत् का विकास

तथा स्थावर—जनम सभी प्राणियों की पञ्चभूतात्मकता का विन्यास करते हुए भौतिक जगत् की मूलभूत समानता स्थापित की गयी है। आनुवांशिक रूप से सभी देव दिव्य जातियाँ, मानव, पशु, पक्षी, सरीसृप, वनस्पति इत्यादि मूलतः ब्रह्मा की सन्तति है, अतः एक ही परिवार के सदस्य हैं। महाभारत में अनेक उपाख्यान वर्णित हैं, जो महाभारतकार की पर्यावरणीय सम्बन्धी चेतना को उद्भासित करते हैं।

वन एवं वनस्पति–संरक्षण :–

'वन हमारा जीवन' इस उक्ति की सार्थकता महाभारत में सिद्ध होती है। यहाँ वृक्षों को पुत्र' कहकर उनके संरक्षण का स्पष्ट निर्देश दिया गया है। द्वैतवन में पुष्पों फलों की अनेक विकसित प्रजातियाँ थीं।" कानन वन नाना प्रकार के वृक्षों की बहुतायत से सम्पन्न था। यहाँ कोई भी वृक्ष ऐसा नहीं था जिस पर काँटे हों और जो खिले हुए पुष्पों से युक्त न हो। ''काम्यक वन में स्वादिष्ट फल—पुष्पों की बहुतायत थी तथा अनेक प्रकार के विभिन्न जातियों के वृक्ष इस वन की शोभा को और अधिक बढ़ा रहे थे। 'गन्धमादन पर्वत पर कदलीवन को हरी—भरी घासों तथा कल्ववृक्ष से सम्पन्न बताया गया है।' नन्दन वन में पवित्र गन्ध तथा मनोहर रूप—वर्ण वाले वृक्ष असंख्य पुष्पों से आच्छादित बताये गए हैं। महाभारत में वर्णित वनीय क्षेत्रों के विस्तृत उल्लेख वृक्षों की उपयोगिता तथा उनको संरक्षित रखने के भाव को उद्भासित करते हैं।

वनों में निवास करने वाली वनवासी जनजातियाँ वन संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। महाभारत में किरात जनजाति के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है कि यह जाति हिमालय की कन्दराओं में निवास करती थी तथा उदरपूर्ति के लिए वनों पर आश्रित थी 'फलमूलाशना ये च किराताश्चर्म्मवाससः।" वनीय जनजातियों—खस, एकासन, अर्ह, प्रदर, दीर्घवेणु, पारद, कुलिन्द, तंगण तथा परतंगण इत्यादि का अधिकांश समय वनों में ही बीतता था, फिर चाहे वह वृक्षों की शीतल छाया में बैठना हो अथवा विश्राम आदि करना। इन जातियों का सम्पूर्ण जीवन वनों में ही व्यतीत होता था तथा जीवन की सभी आवश्यकताएं वनों पर निर्भर होने के कारण ये जन—जातियाँ निःसन्देह वनों का संरक्षण भी करती थी।

महाभारतकार का कथन है कि वन तथा वनस्पतियों के संरक्षण के लिए वन्यजीवों का संरक्षण किया जाना चाहिए। व्याघ्रादि के अभाव में वनों का रक्षण सम्भव नहीं है तथा वनों के अतिरिक्त व्याघ्रादि अन्यत्र नहीं रह सकते हैं। वस्तुतः ये एक—दूसरे को पूरकता प्रदान करते हुए एक—दूसरे का रक्षण करते हैं। सिंह आदि वन्यजीवों के होने से ही कोई वनों का विनाश नहीं कर पाता और इसी प्रकार वनों के न रहने से वन्य जीवों का भी अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है कि वन के बाहर व्याघ्र भी सुरक्षित नहीं रहता है और मृत्यु का ग्रास बन जाता है तथा व्याघ्रविहीन वन का कटान हो जाता है। वन तथा जीव एक—दूसरे के पूरक होते हैं, अतः इनका संरक्षण किया जाना चाहिए—

"निर्वनो बध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम्।
तस्माद व्याघ्रो वनं रक्षेद चनं व्याघ्रं च पालयेत्।।

महाभारत में विशेष रूप से मुनियों के आश्रमों तथा राजाओं के उपवनों उद्यानों आदि में – वृक्ष—वनस्पतियों के संरक्षण—संवर्धन के उल्लेख प्राप्त होते हैं। महर्षि श्वेतकेतु का आश्रम सदा फल देने वाले वृक्षों से हरा—भरा रहता था। रेम्भु ऋषि का आश्रम सदा पुष्पों से युक्त रहने वाले वृक्षों से सुशोभित था।' महर्षि दधीच का आश्रम अनेक प्रकार के वृक्षों तथा लताओं से आवृत्त बताया गया है। 'महर्षि कण्व का आश्रम जिस वन में था। वह

अतिशय मनोरम था।

वृक्ष पारिस्थितिकी तन्त्र का एक मुख्य अवयव हैं, जो इस तन्त्र को सुचारू रूप से सञ्चालित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। महर्षि वेदव्यास इस तथ्य से पूर्णतः परिचित थे, इसीलिए वे कहते हैं कि कोई भी लता वृक्ष का आश्रय लिए बिना वृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकती है। 119 अर्थात् वृक्षों के नाश से पर्यावरणीय तन्त्र भी प्रभावित होते हैं। इसीलिए पर्णों और फलों से सम्पन्न केवल एक वृक्ष को भी चौत्य माना गया है।

निष्कर्ष :–

सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत् सिंहा विनश्येयुश्च ऋते वने इत्यादि। महाभारत में अनेक ऐसे भी उपाख्यान वर्णित हैं, जो महाभारतकार की पर्यावरण–सम्बन्धी चेतना को उद्भासित करते हैं। वनपर्व का मत्स्योपाख्यान जहाँ प्रलय के पश्चात् मत्स्य (जलचर जीव) के रूप में जीवन के प्रारम्भ होने की चर्चा करता है, वहीं दूसरी ओर शिवि–उपाख्यान शरणागत कपोत की बाज से रक्षा हेतु राजा शिवि का देहदान प्राणी संरक्षण का अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत करता है। महाभारत के पुण्य कार्य धार्मिक कर्मकाण्ड मात्र नहीं है। युद्धजन्य विनाश की पूर्ति हेतु वृक्षारोपण, तडाग– निर्माणादि कार्यों को वहाँ धर्ममूलक स्वर्गदायक पवित्र कर्म कहा गया है– तस्मात तडागं कुर्वीत आरामाश्च रोपयेत्।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. महाभारत (सम्पूर्ण) : साहित्याचार्य पण्डित रामनारायण शास्त्री पाण्डेय, गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमन्महाभारतम् (चतुर्धरवंशावतंसश्रीमन्नीलकण्ठविरचितभारतभावदीपाख्यटीकया समेतम्) : नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1988
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013
4. ऋग्वेद संहिता : पं. श्रीराम आचार्य शर्मा, युगनिर्माण योजना ट्रस्ट, मथुरा, 2015

पता :

जवाहर नगर सुरक्षा विहार जीटी रोड अलीगढ़।

pari74sharma@gmail.com, 9457270204

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक पृष्ठ : 132-135

भारतीय साहित्य और महिला सशक्तिकरण

डॉ. गीता राजवंश
श्रीनगर पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड।

आज चहुँ ओर महिला सशक्तीकरण की बात चल रही है, हर तरफ महिला जागरूकता, स्त्री–विमर्श जैसे विषय पर चर्चाएँ आम हैं। आखिर, यह महिला सशक्तीकरण है क्या और भारतीय साहित्य में उनका क्या योगदान है? इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय'साहित्य में महिला सशक्तीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें महिलाएँ शक्तिशाली बनती है, अपने जीवन से जुड़े सभी फैसले स्वयं ले सकती है, परिवार–समाज में अच्छी तरह से रह सकती है। अतः समाज में उनके अधिकारों के लिए उन्हें जागरूककरना ही 'महिला सशक्तीकरण' है।

इसका अर्थ "सशक्त भारत माता" है। इससे एक शिक्षित महिला अपने आसपास की महिलाओं की शिक्षा को बढ़ाते हुए अपने बच्चों के लिए एक बेहतर मार्गदर्शक साबित होती है। इसका उद्देश्य स्त्री–विमर्श और उनमें आत्मविश्वास का संचार करना है। "यदि महिला सशक्तीकरण की शुरुआत की बात की जाए तो संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 8 मार्च, 1975 को अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस से मानी जाती हैं, अब यदि साहित्य की बात करें तो सुप्रसिद्ध भारतीय साहित्यकार छायावाद काल से स्त्री–विमर्श का जन्म माना गया है।" भारतीय हिंदी साहित्य के छायावादी प्रमुख साहित्यकारों में सर्वोपरि नाम महादेवी वर्मा का आता है। उनकी कविताओं में वेदना के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। उनकी रचना 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नारी सशक्तीकरण का सुंदर उदाहरण है, जिसमें उन्होंने नारी–जागरण एवं मुक्ति के प्रश्न को उठाया है।

सन 1960 ई. के आसपास भारतीय महिला सशक्तीकरण ने जोर पकडा जिसमें मुख्यतः चार लेखिकाओं के नाम हैं– उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती, शिवानी और मन्नू भण्डारी। इन्होंने नारी मन के अंर्तद्वन्द्वों और स्वयं पर बीती घटनाओं को लिखना शुरू किया, जो आज स्त्री–विमर्श के रूप में एक ज्वलंत मुद्दा बन गया है। इस विषय ने आठवें दशक तक आते–आते एक आन्दोलन का रूप ले लिया जो शक्तिशाली सिद्ध हुआ। नारी संघर्ष का अधिकांश इतिहास जागरूक होती हुई स्त्री का अपना रचा हुआ इतिहास है। नगरों एवं महानगरों में शिक्षित एवं नवचेतना युक्त महिलाओं का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया था जो समाज के विविध क्षेत्र में अपनी कार्य क्षमता प्रमाणित करने के लिए उत्सुक था।

आज हिंदी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा तक आते–आते अन्य महिला लेखिकाओं ने जिसमें "चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, दिप्ती खण्डेलवाल, प्रभा खेतान, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, मंजुला भगत, मृणाल पाण्डेय, कृष्णा अग्निहोत्री, सूर्यबाला, क्षमा शर्मा, नीलम कुलश्रेष्ठ, मुक्ता रमणिका गुप्ता आदि के साहित्य ने पितृसत्ता समाज को झकझोर कर रख दिया है तथा नारी मन में छिपी शक्तियों को पहचानकर नारी की कुण्ठा, दिशाहीनता और अनेक

समस्याओं का विश्लेषण किया।"

इनके अतिरिक्त, प्रेमचंद से लेकर राजेंद्र यादव तक अनेक पुरूष लेखकों ने भी स्त्री समस्या को अपने लेखन का विषय बनाया परंतु उन्होंने उस स्त्री के उस रूप में नहीं लिखा जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओं ने लिखा है। साहित्य में नारी–मुक्ति को लेकर स्त्री–विमर्श की गूंज 1960 ई. में पाश्चात्य जगत से शुरू होकर विश्वव्यापी बन गई।

स्त्री और पुरूष दोनों काही एक दूसरे के बिना अस्तित्व नहीं है, यह जानते हुए भी पुरूष समाज ने नारी समाज को अपनी बराबरी से वंचित रखा। इसी पक्षपात ने शिक्षित महिलाओं को आंदोलन करने को विवश किया, जो आज भारतीय महिला सशक्तीकरण के रूप में सबके सामने है। आदिकाल से ही महिलाओं की दशा सोचनीय रही। एक बार स्वामी विवेकानंद ने कहा था, "महिलाओं की स्थिति को सुधारे बिना विश्व कल्याण की सम्भावना नहीं की जा सकती है। पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं है।"

इसी विषय को आगे बढ़ते हुए लेखिका सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह स्वाति बूंद, खारे मोती और 'यह तुम भी जानों' चर्चित रहे हैं। इनकी कविता स्त्री–जीवन की सत्यता को प्रस्तुत कर रही है,''माँ–बाप ने पैदा किया था गूंगा परिवेश ने लंगड़ा बना दिया, चलती रही परिपाटी पर बैसाखियाँ चरमराती हैं, अधिक बोझ से अकुलाकर विस्कारित मन हुंकारता है, बैसाखियों को तोड़ दूँ।"

हिंदी गद्यकार तथा कवि रघुवीर सहाय जी ने नारी जीवन की वास्तविकता को दर्शाते हुए उसे 'बेचारी' कहकर उसकी दयनीय स्थिति का उजागर किया, जो अपने अधिकारों के लिए लड़ नहीं पाती। अपने काव्य में उन्होंने स्वतंत्रता के बाद स्त्री–जीवन की अनेक समस्याओं पर लिखा। जिस देश में स्त्री वैदिक काल में "'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमंते देवता" कहा जाता था आज वही वह शोषण का शिकार हो रही है। इसी परिप्रेक्ष्य में कवि रघुवीर सहाय जी ने कहा है, "नारी बेचारी है पुरूष की मारी तन से क्षुदित है, लपक कर – झपककर अंत में चित्त है।"

भारत सरकार ने सन 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में घोषित किया। महिला अब अपने अधिकारों को लेकर रहेगी। यही लड़ाई स्त्री–विमर्श या महिला सशक्तीकरण के रूप में दिखाई देती है। उसकी दशा पर समाज सुधारकों द्वारा भी चिंतन किया गया, उन्होनें हर सम्भव स्थितियों को सुधारने का प्रयास किया, जिससे नारी की स्थिति में बदलाव संभव हो सका। अनेक सरकारी संगठनों जैसे, ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोयायटी, रामकृष्ण मिशन ने नारी शिक्षा पर पुरजोर बल दिया। स्त्रियों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप उनका अशिक्षित होना था।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में उसके स्त्रीवादी विचारों को फलने–फूलने का सुअवसर मिला। भूमण्डलीकरण ने अपनी अच्छाईयों एवं बुराइयों के साथ सभी वर्ग की शिक्षित "महिलाओं को घर से बाहर निकलने का अवसर दिया, परिणामस्वरूप उसने सभी क्षेत्रों में अपनी दावेदारी सुनिश्चित की और स्वाललम्बन की दिशा में उसके प्रयास निरंतर जारी हैं। नारी अस्तित्व को लेकर अपने–अपने समय पर कई विद्वानों ने चिंता व्यक्त की है। इसमें जहाँ एक ओर गोस्वामी तुलसीदास जी ने, "ढ़ोल गवार, शूद्र, पशु, नारी–सकल ताड़ना के अधिकारी" कहकर नारी को प्रताड़ना का पात्र समझा है तो वहीं राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने, "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आँखों में पानी" कहकर नारी की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त

की। जयशंकर प्रसाद ने, "नारी तुम केवल श्रद्धा हो" कहा है तो शेक्सपियर ने, "दुर्बलता तुम्हारा नाम ही नारी है" कहकर नारी अस्तित्व को बताया है।"

नारी से अनेक प्रश्नों से जुड़ी सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक विवशता एवं उससे उत्पन्न मनः स्थिति का अनेक स्तरों पर चित्रण हुआ है। साठ के दशक तथा महिला के संघर्ष का अधिकांश इतिहास जागरूक होती हुई स्त्री का अपना रचा हुआ इतिहास है। आज नगरों एवं महानगरों में नवचेतन स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया है जो समाज के विविध क्षेत्रों में अपनी कार्य क्षमता प्रमाणित करने के लिए उत्सुक है। सभी लेखिकाओं ने अपने—अपने साहित्य में नारी मन की समस्याओं पर विस्तार से लिखा है।

उनमें अमृता प्रीतम के रसीदी टिकट, कृष्णा सोबती—मित्रों मरजानी, मन्नू भण्डारी—आपका बंटी, चित्रा मुद्‌गल—आबां एवं एक जमीन अपनी, मृदुला गर्ग—कठ गुलाब, मैत्रेयी पुष्पा—चाक एवं अल्मा कबूतरी, राजीसेठ का तत्सम, मेहरून्निसा परवेज का अकेला पलाश, कुसुम अंचल के अपनी—अपनी यात्रा, ममता कालिया—बेघर, शैलेश मटियानी की बावन नदियों का संगम, उषा प्रियम्वदा के पचपन खम्बे, लाल दीवारें, दीप्ति खण्डेलवाल के प्रतिध्वनियाँ में नारी संघर्ष को देखा व अनुभव किया जा सकता है।

डॉ. ज्योति किरण ने इस विषय में कथन है,"इस समाज में जब स्त्रियाँ अपने विवेक से कार्य करती है तब मर्यादाहीन समझी जाती है। जब वह अपनी इच्छाओं—अरमानों के लिए आत्मविश्वास के साथ लड़ती हैं तब परिवार—समाज के लिए चुनौती बन जाती है, परंतु आज स्थिति बदल चुकी है, हर क्षेत्र का द्वार महिलाओं के लिए खुला है।"

वे हर जगह प्रवेश पाने लगी हैं, जमीं से आसमां तक, पृथ्वी से चाँद तक उनकी पहुँच है। कोई उड़ान उनके लिए ऐसी नहीं, जहाँ आसमान खत्म हो और उनकी सीमा बांधी जा सके। राजनेता तो वे है ही, देश की मीडिया, बॉलीवुड और विभिन्न प्रचार माध्यमों में भी छाई हुई है। गणतंत्र की इसी ताकत ने नारियों को वह शक्ति सौंपी है जिसके कारण आज किसी भी दल का नीति घोषणा पत्र बिना स्त्रियों की बात किए, उनकी सुविधाओं—सुरक्षा की घोषणा किए पूरा नहीं होता। आज वह साहित्य, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में सकुशल अपनी भागीदारी दे रही है। वह पुरूष की तरह स्वतंत्रता चाहती है। इसीलिए पारम्परिक बेड़ियों को तोड़ना चाहती है।

अतः नारी आदिकाल से ही पीड़ित—शोषित रही है पुरूष प्रधान समाज ने मान—मर्यादा की आड़ में सदा उसे दबाकर रखना चाहा, कभी घर का इज्जत कहकर तो कभी देवी कहकर चार दीवारों के अंदर कैद ही रखा। भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री समाज को हमेशा अंधकारमय जीवन जीने को विवश किया है, लेकिन आज वह चेतनशील है जिसे अच्छे—बुरे का ज्ञान है। आज महिला के सशक्त होने से स्थिति बदली हुई है। नारी मुक्ति से जुड़े अनेक प्रश्न सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक विवशता से उत्पन्न नारी की मनोस्थिति का चित्रण अनेक स्तरों पर हो रहा है। महिलाओं को चाहिए विश्वास, सक्रिय सहयोग, उनकी गतिविधियों की समीक्षा और भी बहुत कुछ।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। साहित्यकार किसी भी देश—समाज में व्याप्त रीति—रिवाजों, मान्यताओं, परंपराओं को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। साहित्य से ही किसी राष्ट्र का इतिहास, संस्कृति और सभ्यता की जानकारी प्राप्त होती है। व्यक्ति किसी भी स्थिति में समाज से अलग नहीं रह सकता

क्योंकि इसके बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं। उसका समाज में रहकर ही सर्वांगीण विकास संभव है। समाज को दिशा साहित्य से प्राप्त होती है। उपर्युक्त लेखकों का साहित्य वर्तमान का प्रतिबिंब है। इनके साहित्य में साधारण व्यक्ति के जीवन को विभिन्न परिस्थितियों में देखा जा सकता है।

संदर्भ सूची :-

1. यादव उषा, स्त्री विमर्श और महिला उपन्यास लेखन, यश पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2020 पृ0 सं0 9
2. सिन्हा डॉ. सुरेश, हिंदी कहानी उद्‌भव एवं विकास, पृ. सं. 11
3. यादव उषा, स्त्री लेखन विमर्श और महिला उपन्यास लेखन, यश पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2020 पृ0 सं0 38
4. प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई अंक, 1996
5. यादव उषा स्त्री लेखन विमर्श और महिला उपन्यास लेखन, उषा यादव, यश पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2020 पृ0 सं0 38
6. सिन्हा डॉ. सुरेश, हिंदी कहानी उद्‌भव एवं विकास, पृ. सं. 16
7. सिन्हा मृदुला अतिशय, मृदुला सिन्हा का साहित्य विश्लेषण, डॉ. रविंद्रनाथ मिश्र, अनामिका पब्लिशर्स, नयी दिल्ली, 2017 पृ0 सं0 43
8. यादव उषा स्त्री लेखन विमर्श और महिला उपन्यास लेखन, उषा यादव, यश पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2020 पृ0 सं0 9
9. सिन्हा डॉ. सुरेश, हिंदी कहानी उद्‌भव एवं विकास, पृ. सं. 17
10. यादव उषा, स्त्री लेखन विमर्श और महिला उपन्यास लेखन, यश पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2020 पृ0 सं0 33
11. वही...पृ0 सं0 56

मोबाइल–7310639895

gitarajvanshi@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 136-139

महात्मा गाँधी और ग्रामीण अर्थतंत्र

केशव कुमार बर्नवाल
शोध छात्र, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय (छपरा)

महात्मा गाँधी ने एक आदर्श भारतीय गाँव के बारे में लिखते है कि गाँव इस तरह बसाया और बनाया जाना चाहिए, जिससे वह संपूर्णतया निरोग रह सके। उसके झोपड़ों और मकानों में काफी प्रकाश और वायु–आ–जा सके। ये ऐसी चीजों से बने हो, जो पांच मील की सीमा के अन्दर उपलब्ध हो सकती हो। हर मकान के आस–पास या आगे–पीछे इतना बड़ा आँगन हो, जिसमें गृहस्त अपने लिए साग–भाजी लगा सके और अपने पशुओं को रख सके। अपनी जरुरत के अनुसार गाँव में कुएँ हो, जिनमें गाँव के सब आदमी पानी भर सके। सबके लिए प्रार्थना घर या मंदिर हो, सार्वजनिक सभा वगैरा के लिए अलग स्थान हो, गाँव की अपनी गोचर भूमि हो, सुहकारी ढंग की एक गोशाला हो, ऐसी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएं हो, जिनमें औद्योगिक शिक्षा सर्व–प्रधान वस्तु हो और गाँव के अपने मामलों का निपटारा करने के लिए एक ग्राम पंचायत भी हो। अपनी जरूरतों के लिए अनाज, साग–भाजी, फल, खादी, खुद गाँव में ही पैदा हो। व्यापारी दृष्टि से काम में आने लायक अखुट साधन–सामग्री हर गाँव में भले ही न हो, पर स्थानीय उपयोग और लाभ के लिए तो हर गाँव में है।[1] महात्मा गाँधी आगे कहते हैं कि यदि मेरा स्वप्न पूरा हो जाय तो भारत के सात (7) लाख गाँवों में से हर एक गाँव समृद्ध प्रजातंत्र बन जायेगा। उस प्रजातंत्र का कोई व्यक्ति अनपढ़ नहीं रहेगा। काम के आभाव में कोई बेकार न रहेगा, बल्कि किसी न किसी कमाऊ धंधे में लगा रहेगा। गाँधी आगे कहते हैं कि मेरी कल्पना की ग्रामीण अर्थतंत्र शोषण का पूरा वहिष्कार करती है।[2]

बहरहाल, क्या भारत के गाँव हमेशा वैसा ही थे जैसे कि वे आज हैं। इस प्रशन का पर पड़ताल करना आवश्यक है। हमारी पुरानी सभ्यता जिस पर हम इतना अभिमान करते हैं, अन्वेषण आवश्यक है। प्राचीन ग्रामीण अर्थतंत्र की यह पद्धति आर्यों की शासन–व्यवस्था की बुनियाद थी। प्राचीन काल से भारत एक कृषि प्रधान देश है। अतः भारत में ग्रामीण समाज और कृषि का प्रधानता रही है। यह प्राचीन ग्रामीण समाज अनेक राजवंशो तथा साम्राज्यों के पतन के पश्चात् भी जीवित है। आज के भारतीय गाँव और प्राचीन भारतीय गाँव में अंतर है। प्राचीन काल में प्रत्येक गाँव स्वयं एक पूर्ण इकाई होती थी, जिसकी मुख्य आजीविका का साधन कृषि था। देश अनेक आत्मनिर्भर गाँवों में विभक्त था। प्राचीन काल में आवागमन के साधनों के अभाव के कारण प्रत्येक गाँव अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए आत्मनिर्भर होता था। प्रत्येक गाँव के सभी वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व एंव शुद्र रहा करते थे। जिनके द्वारा सभी सामाजिक, धार्मिक एंव आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी।[3] उस काल में व्यक्तियों की आवश्यकताओं कम होने के कारण बाजार का स्वरूप भी स्थानीय था। सारांशत प्राचीन काल में

ग्राम्य जीवन आत्मनिर्भर, सहयोगी और जनतंत्रीय था। ग्रामीण समस्याओं एंव कार्यों के प्रबंधन तथा संचालन सामूहिक तौर पर ग्राम पंचायतों द्वारा हुआ करता था। उद्योग धंधो में लगे लोग भी सहायक धंधों के रूप में कृषि कार्य करते थे। तीर्थ स्थानों, राजधानियों, व्यापार केन्द्रों आदि में छोटे–छोटे नगर थे, जिनका जीवन भी कृषि से प्रभावित था। बड़े–बड़े नगरों में कुछ उद्योग विकसित अवस्था में था। इन उद्योगों द्वारा ललित कला अथवा विलासिता की वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। इस कलात्मक वस्तुओं का देश के धनिक वर्ग तन्ना राजवंशों में बहुत मांग थी। प्राचीन काल का विदेशी व्यापार भी विकसित अवस्था में था। निर्यात वस्तुओं में ढांके की मलमल, सूती रेशमी वस्त्र, उनी शाल–दुशाले, सोने चाँदी की वस्तुएं एवं रंग मसाले आदि थे। प्राचीन काल में भारत का सीरिया, अरब, फारस, इटली, फरांस आदि यूरोपीय देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। वस्तुतः प्राचीन ग्राम्य जीवन अनेक बाहय आक्रमणों, राजनितिक उथल–पुथल, शासकों के सतत् परिवर्तन के पश्चात् भी संशोधित रूप में आज भी विद्यमान है।[4]

मुगलकाल में भारतीयों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। आर्थिक ढांचा अनुचित तथा दोषपूर्ण था। मुगल भारत में राजा, नवाब, जमींदार, सरकारी कर्मचारी, वर्ग की समृद्धि और सामान्य जनता की निर्धनता के मध्य स्पष्ट खाई थी। सारांशतः मुलगकालीन भारत की आर्थिक विशेषता थी कि उपर्याप्त उत्पादन और दोषपूर्ण वितरण। 1707 ई० में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य परनोन्मुख हो गयी। औरंगजेब से लेकर ब्रिटिश राज्य की स्थापना तक के काल का भारतीय इतिहास विद्रोह, गृहयुद्ध और बाहय आक्रमण से परिपूर्ण था। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली ने देश पर आक्रमण कर देश के कोष से बहुत बड़ी राशि को लूटा। अनुमान लगाया जाता है कि 1739 ई० में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण कर अपने साथ मुद्रा, रत्न एंव बहुमूल्य धातुओं के रूप में लगभग 30 से 60 मिलियन पौण्ड लुट कर ले गया। राजनितिक अशान्ति के फलस्वरूप देश के धन जन की अपार क्षति तथा आर्थिक विनाश हुआ।[5]

भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के साथ आर्थिक विनाश की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। 1757 ई० में प्लासी तथा 1764 ई० में बक्सर के युद्ध में विजय के उपरान्त 1765 ई० के इलाहाबाद की संधि द्वारा शाहआलम ने क्लाइव को बंगाल की दिवानी सौंप दी थी अर्थात् अंग्रेजों को राजस्व एकत्र करने का अधिकार दे दिया गया। अंग्रेजों की लूट–खसोट की नीति ने लगभग एक शताब्दी के अन्तर्गत भारत के ग्रामीण तथा नगरीय हस्तशिल्पों एंव उद्योगों के साथ–साथ पृथक एंव आत्मनिर्भर गाँवों का आर्थिक संगठन ध्वस्त कर दिया। ब्रिटिश सरकार की उद्योग तथा कृषि के प्रति उदासीनता पूर्ण नीति ने उनकी आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। सरकार द्वारा भूमि व्यवस्था में किये गए परिवर्तन ने कृषि की उन्नति में बाधा पहुंचाती। इसी प्रकार अंग्रेजों की स्वार्थपूर्ण औद्योगिक नीति से भारतीय परम्परागत उद्योग धंधे नष्ट हो गए। सरकार ने न केवल कृषि तथा उद्योग के प्रति उदासीनता पूर्ण नीति अपनायी वरन् उद्योगों के प्रति विरोधी रुख अपनाया। 19वीं शताब्दी में भारत में सूती वस्त्र, पटसन, सीमेंट, लोहा–इस्पात, चीनी आदि उद्योगों का पतनआरंभ हो गया था परन्तु सरकार की ओर से इन उद्योगों को कोई प्रोत्साहन नही दिया गया। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय अर्थव्यवस्था जड़तापूर्ण स्थिति में रही। श्री रमेशचन्द्र दत्त ने 1903 ई० में ठीक ही लिखा है कि 'यदि उद्योग पंगु हो जाएँ' यदि कृषि पर अत्यधिक कर भार हो और यदि देश के राजस्व का एक तिहाई देश के बाहर चला जाय तो विश्व का कोई भी देश स्थायी रूप से दरिद्र और अकाल ग्रस्त हो जायेगा। यदि ऐसी परिस्थितियों में भारत विकास

कर लेता तो यह एक महान आश्चर्य होता। अतः भारत ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के कारण ही दरिद्र हुआ।[6]

भारतीय ग्राम अर्थव्यवस्था का सबसे प्रमुख पक्ष यह था कि ग्रामों में आत्मनिर्भर तथा आत्मशासी समुदाय रहते थे। भारतीय ग्राम अपने आप में एक छोटे संसार के रूप में काम करते थे जिनका बाह्य संसार के साथ बहुत कम सम्बन्ध होता था। ग्राम– अर्थ–व्यवस्था आत्मनिर्वाही होती थी।[7] कृषक के घरों में सूत काटा जाता था और ग्राम के ही जुलाहे से उसका बढ़िया कपड़ा बन जाता था। अन्य आर्थिक आवश्यकताएं बढ़ई, सुनार, कुम्हार, तेली इत्यादि पूरा कर देते थे और उसके बदले में उन्हें उपज का कुछ भाग मिल जाता था। यह सब परम्परागत पद्धति के अनुसार चलता था। भूमि पर दबाव अधिक नहीं था क्योंकि उद्योग धंधे बहुत थे। ग्राम की भूमि कृषक समाज की होती थी और प्रत्येक कृषक कुटुम्ब के पास कुछ न कुछ भूमि होती थी जनसंख्या थोड़ी थी, भूमि अधिक थी, अतएव भूमि का क्रय विक्रय नहीं होता था।[8] गाँव सामाजिक संरचना के प्रमुख अंग थे। कम्पनी राज की स्थापना के पूर्व वे आर्थिक दृष्टि से आत्म–निर्भर थे। ग्रामीणों की छोटी बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति गाँव के अन्दर बनी वस्तुओं और ग्रामीणों द्वारा उपजाये गए अनाजों से ही हो जाती थी। अभाव होने पर एक गाँव के लोग दूसरे गाँव से सामान मंगा लेते थे। अतः अगल–बगल के गाँव एक दुसरे की आवश्यकता की पूर्ति कर देते थे। अगर एक दो गाँवो की कोई चीज नहीं मिलती थी तो वह चीज गाँव में लगने वाली साप्ताहिक हाटों से प्राप्त कर ली जाति थी। तो वह अगर कोई ऐसी चीज जो ग्रामीण हाटों में भी नही मिलती थी उसे वार्षिक मेलो में ले लिया जाता था।[9] मिट्टी के भाड़ सोने चाँदी के आभूषण, लकड़ी के सामान, चमड़े की वस्तुएं, तेल, मूर्ति, आदि गाँव में ही तैयार की जाती थी।

अतः भारतीय ग्राम छोटे–छोटे गणराज्य की तरह थे जो अपनी आवश्यकता की हर वस्तु स्वयं पैदा कर लेते थे। कच्चे माल गाँवों को नजदीक में ही मिल जाते थे। गाँव के अपने ही क्षेत्र में उगे हुए जंगल की लकड़ी का औजारों तथा मकान बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था। रुई देश के कई भागों में प्राप्त थी। जिन वस्तुओं का उत्पादन होता था, उनमें अधिकांश की खपत गाँव में ही हो जाती थी, जो बचता वह सप्ताह में एक बार होने वाले ग्रामीण मेलो में बेंचा जा सकता था। गाँव संपूर्णतः स्वपर्याप्त थे। खपत के बाद अवशेष सामानों को बेचकर ग्रामीण भू–राजस्व देते थे। उनके पास अतिरिक्त सामानों की खरीद के लिए पैसे नहीं रह पाते थे। गाँव धन संग्रह नहीं कर सके।[10] इसका कारण यह था कि वे कई ऐसे तत्वों के शिकार थे जिसके फलस्वरूप अधिक मुनाफा कमाने के लिए अथवा अधिक समान बेचने के लिए समान नहीं बाच पाते थे। आत्मनिर्भर रहते हुए भी वे पूंजी के आभाव में थे। इसके अतिरिक्त ग्रामीणों में जातिगत बन्धनों की सुदृढ़ता प्राप्त थी और उनका व्यापार लगभग नगण्य ही था। गाँव के कुलीन की मृत्यु होने पर उसकी सम्पति उसके उतराधिकारी को नहीं मिलती थी और उस पर राज्य कब्जा जमा लेता था। ऐसी स्थिति में गाँव में धनी वर्ग पैदा नही हो सका।[11]

सन्दर्भ सूचि :–

1. गांधी जी (संग्राहक आर. के. प्रभु), पंचायत राज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1959, पृ. 18.
2. वही, पृ. 19.
3. गाँधी, एम. कें, ग्राम स्वराज्य, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2011, पृ. 14.
4. दत्त, रमेश चंद, इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग–2 पृ. 13.

5. चटर्जी, अशोक कुमार एंव सिंह, देवेश कुमार, भारत का आर्थिक इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004, पृ. 283.
6. पाण्डेय, धनपति, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, पटना, 1992, पृ. 03.
7. ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग–2 प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 2007 पृ. 163.
8. पाण्डेय, धनपति, पूर्वोक्त, पृ. 05.
9. ताराचंद– भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, प्रकाशन विभाग, खंड–2 नई दिल्ली, वर्ष–2007, पृ. 265.
10. दत्त, रजनीपाम, भारत वर्तमान और भावी, पीपुल्स पब्लिशिंग हॉउस, नई दिल्ली, 1982, पृ. 41.
11. मिश्र गिरीश, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली 1997, पृ. 144.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 10-11
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 140-146

नमिता सिंह के कथासाहित्य में मीडिया और राजनीति की भूमिका

फूला देवी
पी–एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला।

सारांश :–

भारत जैसे लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली संपन्न देश की वैधानिक व्यवस्था मुख्यतः तीन स्तंभों– विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका पर आधारित है जबकि पत्रकारिता को लोकतंत्र केचौथे स्तंभ का दर्जा प्राप्त है। इन चारों स्तंभों की सुदृढ़ता एक मजबूत लोकतंत्र की स्थापना करती है। मीडिया जनसाधारण और सरकार के मध्य एक ऐसे सेतु का कार्य करता है जो सामाजिक प्रणाली को पारदर्शिता प्रदान करने में अहम भूमिका निभाता है। हमारी प्रशासनिक प्रणाली में जब मीडिया और राजनीति का यह संबंध इतनी प्रभावी भूमिका में रहता है तो समाज का दर्पण कहलाने वाला साहित्य इन दोनों के सामंजस्य को कैसे नजरअंदाज कर सकता है। साहित्य का कोई भी पक्ष मीडिया के प्रभाव से अछूता नहीं रह गया है, इसलिए साहित्य में राजनीति और मीडिया की पृष्ठभूमि का चित्रण आरंभ से ही होता आ रहा है और नमिता सिंह का कथा साहित्य भी इसी आलोक में परखा जा सकता है।

बीज–शब्द– उठापटक, निर्वहण, कत्लगाह, कटघरे, लबादा, हुनरमंद, विज्ञापित, खोल, कोर–कसर, मनोयोग।

आमुख :–

संचार के क्षेत्र में एक लंबी यात्रा तय करने के पश्चात मीडिया ने आज जो स्वरूप प्राप्त किया है, वह मानव की सोचने–समझने की शक्ति का ही नतीजा है। इसके भीतर साहित्य व राजनीति के क्रियाकलापों व परस्पर संबंधों का लेखा–जोखा देते मुद्रित कागज से लेकर डिजिटल डेटा तक कुछ भी शामिल हो सकता है। सामान्यतः यह रेडियो, टेलीविजन, समाचार–पत्र, इंटरनेट आदि संचार के सभी माध्यमों को संदर्भित करता है। हम जानते हैं कि मानव के अंतरू बाह्य संबंध मीडिया के साथ तकनीक, व्यवसाय तथा लोकतंत्र के मध्य आपसी गठजोड़ के कारण जुडे हुए हैं। समाज में तकनीक के उपयोग व आधुनिकीकरण से मीडिया के स्वरूप में जैसे–जैसे बदलाव आया, मानव के सोचने–समझने के तरीके में भी अंतर आया है। अनंत बड़घणे के शब्दों में, "भारत जैसे दुनिया के इतने बड़े देश में मीडिया की भूमिका अहम है क्योंकि यहाँ लोकतंत्र है जो लोक प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है। मीडिया उसके कार्य पर नजर रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। वह लोक प्रतिनिधि के अच्छे कार्य की सराहना करता है या उसके द्वारा किये गये गलत कार्य को भी जनता के सामने

लाने का कार्य करता है।"[1] मीडिया देश और विश्व के मध्य संप्रेषण का एक माध्यम मात्र नहीं बल्कि वह देश के लोक प्रतिनिधियों में लोकतान्त्रिक मूल्यों को जागृत करने में भी सहायक होता है। इसके अतिरिक्त वह उनके नैतिक–अनैतिक कार्यों का लेखा–जोखा भी रखता है। साहित्य ने मीडिया के इस सशक्त रूप को पारदर्शिता प्रदान करने में अहम भूमिका अदा की है। साहित्य मानव जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति मानी गई है। देखा जाये तो वह आज मानवीय समाज का संरक्षक, पथ–प्रदर्शक तथा मूल्यों का निर्धारक बन कर उभरा है परंतु मीडिया की तुलना में साहित्य की पहुँच सीमित है। इसलिए उसके सराहनीय उद्देश्य की पहुँच का दायरा बढ़ाने में मीडिया सहयोगी बन कर सामने आया है। पंडित बन्ने के मतानुसार, "साहित्य का काम जीवनानुभव को संवेदना में बदलना है। मीडिया उसी अनुभव को सूचना में बदल देता है।"[2] साहित्य ने मानव की मूल भावनाओं का परिष्कार किया है तो मीडिया ने उन मानवीय संवेदनाओं को विस्तार दिया है। मीडिया और साहित्य के इस सांमजस्य से लोग वैचारिक रूप से ज्यादा सजग और सशक्त हो रहे हैं क्योंकि मीडिया समाज को दिशा ही नहीं देता बल्कि उसकी दशा को भी तय करता है।

साहित्य और मीडिया का स्वस्थ संबंध एक स्वस्थ समाज का निर्मायक है लेकिन इसके लिए पहले यह आवश्यक है कि ये दोनों अपने मूल स्वरूप में बने रहें। साहित्य आज भी जनहित के अपने लक्ष्य के प्रति सजग रहकर कर्मशील है लेकिन आधुनिक जीवन की बदलती धारा ने मीडिया को उसके मूल से कहीं भटका दिया है। मीडिया आज समाज के लिए अपनी वह अपेक्षित उपयोगी भूमिका निभाने में चूक रहा है। स्मिता मिश्र अपना मत व्यक्त करते हुए कहती हैं– "साहित्य कुल मिलाकर अभी अपने ईमान पर टिका है। उसमें अपने समय और समाज में व्याप्त पूँजीवाद तथा उपनिवेशवाद की गजालत के विरुद्ध एक गहरी नाराजगी है और वह मानव मूल्यों में बुनियादी तौर पर विश्वास रखता है। राजनीति और व्यावसायिक लाभ उठाने वाले अखबारों को साहित्य का यह ताप पसंद नहीं आता और उससे उन्हें किसी का लाभ नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए उसे अपने भीतर से बाहर की ओर ठेलते जा रहे हैं।"[3] मीडिया अपने स्वार्थ के लिए बेशक साहित्य के ताप को अधिमान न दे लेकिन साहित्य मीडिया की ताकत को बखूबी समझता है। इसलिए मीडिया के वर्तमान स्वरूप का विश्लेषण कर समाज के प्रति उसकी भूमिका को हनुमान की शक्तियों की तरह याद दिलाना साहित्य अपनी जिम्मेवारी समझता हैऔर नमिता सिंह का कथा साहित्य यही कार्य पूरी निष्ठा से करता है।

आमजन को लालफीताशाही, अफसरशाही, बाबूगिरी जैसे हथकंडों से अभय प्रदान करने के उद्देश्य से राजनीति की संकल्पना सामने आई लेकिन राजनीति का जो स्वरूप आज हम सभी के सामने है, वह उसकी मूल अवधारणा में कहीं शामिल नहीं था। राजनीति को उसके भ्रष्ट स्वरूप तक पहुँचाने में मीडिया की नकारात्मक भूमिका के संदर्भ में सुधीश पचौरी कहते हैं–"राजनीति का जन से जैसा 'तुरंत' और 'लालच भरा' संबंध इन दिनों मीडिया बना रहा है, वह राजनीति के लिए तो ठीक है ही नहीं, मीडिया के स्वास्थ्य के लिए भी ठीक नहीं लगता। इन दिनों दोनों हल्के हुए हैं, मीडिया पर अनावश्यक दबाव बढ़ रहे हैं। उनकी स्वतंत्रता, स्वायत्तता पर उसकी आलोचनात्मक क्षमता कमजोर पड़ती जा रही है। विज्ञापन की छोड़िये, अब तो खबरों तक में ये दबाब छिप नहीं पाते हैं।"[4] इससे ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में मीडिया राजनीतिक प्रभुता संपन्न वर्ग की इस उपभोक्तावादी व्यवस्था के हाथों की कठपुतली बन कर रह गया है। उसके मूल अस्तित्व पर यह दाग सवाल बन कर खड़ा होता है कि मीडिया के लोग सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए किसी के मान–सम्मान को तार–तार करने

के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं।

मनुष्य स्वभाव से ही जिज्ञासु रहा है। उसकी उत्कट जिज्ञासा का ही परिणाम है कि उसने अकल्पनीय तथ्यों को साकार कर एक उन्नत समाज को विकसित किया है। वह आदिम अवस्था में अपने विचारों के संप्रेषण के लिए पारंपरिक तौर–तरीकों का प्रयोग करता था। आज प्रौद्योगिकी के युग में नित नवीन सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए मीडिया के कई रूप हैं। मीडिया समाज का आईना होता है और उसकी प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त करता है। किसी समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और पारंपरिक छवि का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि मीडिया अपने कर्तव्य का निर्वहण सम्पूर्ण निष्ठा के साथ कर रहा है या नहीं। नमिता सिंह के कथासाहित्य में मीडिया के विविध आयाम अलग–अलग रूप में सामने आते हैं। 'हां! मैंने कहा' में नमिता सिंह कहती हैं, "मूलतः मीडिया जो लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है, अब मुख्य रूप से वह व्यापार कर रहा है और व्यापारी की भूमिका में है। व्यापार संवेदनहीन होता है। अब निर्भर करता है कि व्यापार किसी की जिंदगी से फलेगा या मौत पर केंद्रित करने से लाभ होगा। इसलिये नितांत संवेदनहीनता के साथ जब स्त्री केंद्रित कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं तो वह व्यापार है। व्यापार का कोई धर्म नहीं होता, उसमें संवेदना और भावुकता के लिए जगह नहीं होती।"[5]

मीडिया बाजारवाद का प्रमुख स्रोत होने के कारण ही मानव के संवेदनशील जीवन के इर्द–गिर्द घूमता है और उसे प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा अपने व्यापार में लाभ को बढ़ावा देने के लिए संवेदनशील मुद्दों को बढ़ा–चढ़ाकर पेश करनायईमानदारी, नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा और साहस से संबंधित मुद्दों को नजरंदाज करना सामान्य बात हो गयी है। उसमें आम जनमानस का नफा–नुकसान हो न हो, अपना उल्लू सीधा करना उसका मुख्य मकसद होता है। मीडिया के इस व्यवहार से समाज में अव्यवस्था और असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है। वर्तमान समय में मीडिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति से प्रभावित रहा है। उसका प्रयोग सत्ताधारी दल सत्ता में अपनी साख बनाने और काबिज रहने के लिए व्यक्तिगत तौर पर करते हैं। कई मीडिया घरानों में तो राजनीतिक रसूख रखने वालों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हिस्सेदारी होती है। इसलिए मीडिया भी उनके स्वार्थ सिद्धि के लिए जिस मुद्दे को उठाना चाहते हैं,उन्हीं के मनमुताबिक वह जनता के समक्ष लाता है। 'लेडीज क्लब' उपन्यास में टी.वी. के पर्दे पर एक भगवाधारी नेता बयान दे रहे हैं–'वह मेडिकल कॉलेज नहीं, कत्लगाह है वह। वहाँ हमारे मरीज सुरक्षित नहीं हैं।'

'हमारे मतलब'

'हमारे समुदाय के मरीज। उन्हें मार डाला गया है।'

'यह तो नरसंहार हुआ– जीनोसाइड'

"हाँ? नरसंहार हो रहा है। दलदल पट गया है लाशों में।"[6]

अतः समाज में स्थित विषमता की परिसीमा जितनी विशाल होगी, सत्तागत प्रतिष्ठानों की तस्वीर उतनी ही अधिक निरंकुश और विकराल होगी। वैषम्य की इस दीवार की मजबूती को बरकरार रखने के लिए सत्ता में पैर रखने वाले लोग सदैव हाशिये की आवाजों को दबाने का कार्य करते आये हैं। लोकतंत्र की वास्तविक अर्थवत्ता व्यक्ति के गरिमापूर्ण जीवन, अवसरों और संसाधनों में विद्यमान रहती है। किसी भी समाज में मौजूद विषमता, उसमें निर्धारित समता और न्याय की वस्तुस्थिति उसके ढांचे पर निर्भर रहती है। चुनाव लोकतंत्र में

राजनीति का आरंभिक सोपान है। राजनीति तो राजनीति है, वह चाहे दिल्ली के लाल किले की हो, किसी सूबे की हो या फिर वह छात्र–चुनाव की, उसमें हथकंडे तो एक समान ही अपनाये जाते हैं अर्थात् लोगों को एक–दूसरों के खिलाफ भड़काया जाता है। लेखिका 'लेडीज क्लब' उपन्यास में यूनिवर्सिटी में स्टूडेंट यूनियन के चुनाव के बारे में बताते हुए लिखती हैं, "अचानक एक दिन अखबार में छपी खबर से पता चला कि शहर की घनी आबादी वाले काजीपाडे में किसी धर्मग्रंथ का एक पन्ना जला हुआ मिला है। यह इलाका मिलीजुली आबादी का है। काजीपाड़ा के चौराहे के पास छतरी वाली मस्जिद के बाहर, सुना गया कि ऐसा हुआ। अब धर्मग्रंथ किस समुदाय का था, इसे बिना कहे सब जान गए थे। अखबार की खबरों का यही तो चमत्कार है।"[7] इसलिए कहा जाता है कि मीडिया द्वारा खघ्बरों को किस प्रकार बड़ी चतुराई तथा नमक–मिर्च के साथ जनसामान्य के समक्ष परोसा जाता है। मीडिया में खबर तो एक बार ही छापी जाती है परन्तु उसकी परत–दर–परत उघाड़ने का काम अरसे तक चलाया जाता है और कई बार तो खबर को मूल से ही भटका दिया जाता है। दूसरी तरफ देखा जाये तो मीडिया ही एक ऐसा हथियार है जो सरकार को कटघरे में खड़ा कर जनता के समक्ष जवाबदेह होने मजबूर करता है। तकनीक की सफलता ने मीडिया को एक अकल्पनीय जगत में ला कर खड़ा किया है।

ऐसा नहीं है कि मीडिया मात्र सामाजिक परिदृश्य के पन्नों को मानव के समक्ष लाता है बल्कि वह उसकी आय का स्रोत भी होता है। इसके अतिरिक्त वह उसकी सुख–समृद्धि को सबके सम्मुख लाने में सहायक होता है। समाज के प्रति उसके विचार को स्पष्ट करने में अहम भूमिका निभाता है। 'एक पैर वाला शेर' कहानी में दूरदर्शन पर प्रसारित किए जाने वाले झूठ को सत्य मानकर कैसे लोग उसे अपने जीवन में उसका अंगीकरण करते हैं, इसका संकेत है, "यही दर्शन है दूरदर्शन के पर्दे पर धूम मचाने वाले साबुन, तेल या ब्लेड का...... तभी तो खरीददारी के समय बरबस उसी साबुन, उसी तेल का नाम ले बैठते हैं। यही दर्शन हिटलर का था...... जो झूठ को बार–बार दुहराकर उसे सौ फीसदी सच बनाने का दावा करता था।"[8] अतः मानव के मानस पटल पर मीडिया का दबदबा आए दिन स्पष्ट नजर आता है। उसके द्वारा बड़ी चतुराई से सत्य को लाग–लपेट के साथ अनोखे तरीके से पेश किया जाता है। हम भी अपने दैनिक जीवन में मात्र उन्हीं वस्तुओं को अपने जीवन में अंगीकार कर लेते हैं जिन विज्ञापनों के भ्रम का आवरण हमारी आँखों पर चढ़ा होता है। 'ये बेटियां' कहानी के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि मीडिया की भूमिका का आम लोगों के जीवन में कितना योगदान रहता है। अखबार पढ़ते हुए लल्ली कहती है– "एक दिन उसने अखबार के पीछे वाले चिकने रंगीन पेज पर पढ़ा। एक डिजाइनर का कहना है कि वे बहुत कम कीमत वाली पोशाकें बना रहे हैं...... अफोर्डेबल! ताकि सब लोग खरीद सकें। हम चाहते हैं कि सब तरफ हमारे ही ब्रांड की पोशाकों में लोग दिखें। छा जाय गली कूचों में हमारा ब्रांड– इट बिल बी अ रिवल्यूशन........अ सोशल रिवल्यूशन........।"[9]

मीडिया का दायरा समाज में बहुत विस्तृत है, यह न सिर्फ समाज को सच्चाई का आईना दिखाकर सत्य के लिए लड़ने को प्रोत्साहित करता है बल्कि इसके माध्यम से सुप्तप्रायः चेतना को जागृत करने में सक्षम होता है। समाज में विज्ञापनों के माध्यम से निजी संस्थानों की स्थिति परिवर्तन जैसे नेक काम की दिशा में अपना वर्चस्व प्रदर्शित करता है। मीडिया दोधारी अस्त्र के समान है। आज वह विनाशक और हितैषी दोनों भूमिकाओं में सामने आया है। 'सरबजीत' कहानी में आभा अपने पारिवारिक माहौल द्वारा मानवीय जीवन के अभिन्न अंग मीडिया का वर्णन करते हुए कहती है, "हमारे घर का माहौल बड़ा एडवांस और प्रगतिशील समझा जाता था।

हमारी माँ रेडियो सिंगर रही थी। शादी के बाद भी कुछ समय तक उन्होंने रेडियो में प्रोग्राम दिए थे लेकिन फिर घर–गृहस्थी के झंझटों ने उन्हें बांध दिया था।"[10] अतः आधुनिक युग में वक्त के बदलते स्वरूप के साथ पत्रकारिता की विषयवस्तु तथा प्रस्तुति की शैली में व्यापक अंतर आया। जिस प्रकार परिवार एकाकीपन की ओर बढ़ रहा है, ठीक उसी प्रकार मीडिया भी मात्र निजी संस्थानों की छत्र छाया में पल–बढ़ रहा है। हम आधुनिकता का लबादा कितना ही क्यों न ओढ़ लें, हम रूढ़िवादी विचारधारा से बाहर नहीं निकल सकते।

आज मीडिया के सामर्थ्य के समक्ष बड़े से बड़ा उद्योगपति, राजनेता आदि भी सर नवाये खड़े रहते हैं क्योंकि उसका जनसाधारण में काफी योगदान होता है। सोशल मीडिया आज हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी का हिस्सा बन गया है। युवाओं को तो अपनी एक विशेष पहचान दिलवाने के लिये मानो अवसरों के किवाड़ बड़ी ही सहजता से खोल दिए हैं और दुनियादारी की भीड़ में गुम जीवन यापन कर रहे व्यक्ति को एक अलग पहचान दिलाने में भी मीडिया अहम भूमिका निभाता है। 'किरचों पर सजा इंद्रधनुष' कहानी में रिचा, रूपा को अखबार में छपे इंटरव्यू के बारे में बताते हुए कहती है, "आंटी, आपने अखबार देखा? अंकल का इंटरव्यू छपा है।'

'सच! तो पेपर लेकर नीचे आओ न। तुम तो ऊपर से ही चीखे जा रही हो।'

"कुछ भी कहो रिचा, लाख इंटरव्यू आये, तस्वीर छपे रहेंगे तो मास्टर के मास्टर।"[11]

वास्तव में देखा जाए तो हुनरमंद व्यक्ति को किसी विशेष प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं होती। परिवार में वह एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। वह चाहे देश का सबसे बड़ा प्रतिनिधि क्यों न हो अर्थात् प्रत्यक्ष को साक्ष्य की जरूरत नहीं पड़ती। मीडिया में उसकी छवि को जिस प्रकार तैयार किया जाता है, जनसाधारण में उसके प्रति वैसी ही धारणा बन जाती है। 'ममी' कहानी में अक्षय के अभिनय की कारगुजारियों और सफलताओं से विदेशी अखबार भरे पड़े हैं और रीता पत्र में भेजी हुई कतरनों को पढ़ते हुए कहती है, "कुछ अखबारों की कतरनें भेजी हैं जिनमें रोम, बर्लिन और पेरिस में खेले गए नाटकों पर विस्तृत रिपोर्ट है, बर्लिन के ही एक और अखबार में अक्षय का एक इंटरव्यू– भारतीय रंगमंच और नाटकों के बारे में छपा है। इसके बाद उसका प्रोग्राम लंदन में है।"[12] कहा जा सकता है कि मीडिया मानव के मान–सम्मान की वृद्धि में अहम भूमिका निभाने वाले प्रमुख स्रोतों में से एक है, वह उसे फर्श से अर्श तक पहुंचाने में भी मदद करता है। आधुनिक संदर्भ में उसके विकृत रूप ने समाज को विपरीत राह की ओर उन्मुख कर दिया है।

समाज की वास्तविकता लोगों के सामने अखबारों के जरिये ही आती है। राजनीति के गलियारे में चुनावी रणभेरी जब बजती है तो राजनेता एक–दूसरे के नकाबी खोल उतारने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ते। मीडिया के प्रत्येक प्रसाधन चुनावी मैदान–ए–जंग से कम नहीं लगते। 'उत्सव के रंग' कहानी में अभयकांत अपनी पत्नी विनीता के इंतजार में मैगजीन पर बड़े मनोयोग से नजरें टिका कर पढ़ते हुए, "अभयकांत की नजरें चुपचाप उसी तरह मैगजीन के पन्ने पर बिखरी काली महीन कंकड़ियों पर उछलती–कूदती रहीं। कुछ ध्यान आया तो निगाहें स्थिर कर दी। चुनाव विश्लेषण का गंभीर विषय था।......एक क्षण दरवाजे की ओर देखा और फिर से नजरें मैगजीन पर स्थिर कर पेज पलटने लगे। चुनावी विश्लेषण पूरा हो गया था। दूसरे पेज पर रूस की बदलती विदेश नीति पर एक महत्त्वपूर्ण लेख था। उनका तन्मय होना स्वभाविक था।"[13] सामयिक परिदृश्य में राजनीति का सम्पूर्ण अस्तित्व मूल्यहीन हो गया है। आज हर स्तर पर राजनीति की मूल्यहीनता चुनाव के समय स्पष्ट नजर आती है। राजनीति और मीडिया के चेहरे परस्पर इतने घुल–मिल जाते हैं कि इनके मध्य विभाजक रेखा खींचना

बहुत मुश्किल हो जाता है। वर्तमान समय में राजनीति की वस्तुस्थिति इतनी विकट है कि उसमें प्रवेश करने से भी डर लगता है। राजनीति का नाम जुबां पर आते ही राजनेताओं के भ्रष्टाचारी, स्वार्थी और लोलुपतापूर्ण चेहरे सामने आते हैं। सत्ता के लोभ में वे आमजन के हित–अहित का ध्यान नहीं रखते और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी भी प्रकार का समझौता करने से संकोच नहीं करते। सत्ता का मोह अपराध–जगत से होकर गुजरता है और यही लालच उनके व्यक्तित्व के स्तर को और नीचे गिरा देता है।

'अपनी सलीबें' उपन्यास में ईशू को गोली लगने से चारों ओर के माहौल में मची अफरा–तफरी का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती हैं, "इस पूरी घटना से हड़कम्प मच गया। अपराधी, उनके अलग–अलग गिरोहों और ऊँचे स्तर पर उन्हें मिलने वाले राजनीतिक संरक्षण पर चर्चाएं होने लगीं। मुख्यमंत्री ने इसे एक गम्भीर मुद्दा बनाकर गृहमंत्री के विरुद्ध अपनी राजनीतिक पैंतरेबाजी तेज कर दी। उन्होंने सार्वजनिक रूप से अखबारों में बयान देकर ईशू की कर्तव्यपरायणता और कार्यकुशलता की प्रशंसा की। ईशू की जान को खतरे ने मुख्यमंत्री को अपने विरोधियों के खिलाफ कार्यवाही के लिए एक मजबूत आधार दे दिया था।"[14] अतः झूठ और बेईमानी की इस दुनिया में ईमानदारी और सच्चाई अपना मुँह छुपाती नजर आती है। मीडिया के द्वारा राजनीति में सत्ता का लालच भरा क्रूर और अमानवीय चेहरा जनता के सामने लाया जाता है। सत्ता की भूख में राजनीतिक दल के नेता अप्राकृतिक कार्य करने से कोई गुरेज नहीं करते, सदैव अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए आम आदमी का इस्तेमाल अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकने के लिए करते आये हैं। 'अपनी सलीबें' उपन्यास में चित्रित घटना के अनुसार मीना के बलात्कार के पश्चात नुचा–कटा शरीर मिलता है। मीडिया की दखलअंदाजी के कारण अपराध ी पकड़े भी जाते हैं परन्तु न जाने ऐसा क्या हुआ जो वे छूट जाते हैं, "पुलिस ने उन लड़कों को बहुत मुश्किल से पकड़ा। इतनी अखबारबाजी अगर न हुई होती और जनजागरण समिति ने इतना शोर न मचाया होता, तो वे लड़के पकड़े भी न जाते। फिर न जाने क्या घपला हुआ कि उन्हें जमानत पर छोड़ दिया गया और मुकदमा चलाने में इतनी देर की मुकदमा भी क्या था, लगता कि जैसे घिसट रहा है। जन जागरण समिति के लोग मुकदमें की तारीखों में जाते रहना कि घर के लोगों और गाँव में उनके समर्थकों की हिम्मत बनी रहे।"[15] व्यक्ति प्रशासन और राजनीति के मध्य की सांठ–गांठ के कारण अपराधी होते हुए भी अपने इल्जामों से बरी हो जाते हैं, जो अमानवीय अपराध उन्होंने किये हैं। एक तरफ मीडिया उनके घिनौने चेहरे को जनसामान्य के सामने लाता है तो अपनी राजनीतिक व प्रशासनिक पहुँच के चलते आसानी से छूटते हैं और भयमुक्त होकर समाज में घूमते हैं। पीड़ित न्याय की आस में दर–दर की खाक छानता रहता है परन्तु न्याय नहीं मिलता।

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि राजनीति और मीडिया का आपस में चोली दामन का संबंध है। मीडिया विचारों की मुक्त चर्चा को बढ़ावा देता है जो व्यक्ति को राजनीतिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने, निर्णय लेने की अनुमति देता और परिणामस्वरूप समाज को सशक्त बनाता है। नमिता सिंह के कथासाहित्य में न केवल राजनीतिक व सामाजिक जीवन के अनछुए पहलुओं से पर्दा उठाया जाता है बल्कि राजनीति के साथ मीडिया की साँठ–गाँठ की तस्वीर भी स्पष्ट नजर आती है। तत्कालीन परिस्थियों में व्याप्त कमजोरियों को उजागर करने के साथ ही उनके मूल स्रोतों के चेहरे को भी पाठक के समक्ष लाने का उनका अथक प्रयास सफल होता है।

संदर्भ संकेत :–

1. रविंद्र जाधव, मीडिया और हिन्दी की बदलती प्रवृत्तियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.128
2. पंडित बन्ने, मीडिया और हिन्दी, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2011, पृ.117
3. स्मिता मिश्र व अमरनाथ 'अमर', इलेक्ट्रानिक मीडिया : बदलते आयाम, भारत पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 2010, पृ. 223
4. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 100
5. नमिता सिंह, हाँ! मैंने कहा, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2017, पृ. 19
6. नमिता सिंह, लेडीज क्लब, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 147
7. वही, पृ. 79
8. नमिता सिंह, निकम्मा लड़का, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 114
9. नमिता सिंह, मिशन जंगल और गिनीपिग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 62
10. नमिता सिंह, नीलगाय की आँखें, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 56
11. नमिता सिंह, खुले आकाश के नीचे, नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ. 62
12. नमिता सिंह, नीलगाय की आँखें, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 44
13. नमिता सिंह, उत्सव के रंग, साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृ. 6
14. नमिता सिंह, अपनी सलीबें, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 225
15. वही, पृ. 155

मो. 9418306391
ईमेल– phoola.kullu@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 10-11
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 147-150

Teachers' Perspective On Inclusive Education

Dr Anurag Mishra
Principal, Kids Craze Secondry School, Sardarshahr

Abstract :

In this article, we have to base on exhaustive guideline as the commitment of the regular school and the educator to make for every child the opportunity to be a bit of the class and school as well. An essential factor for the achievement of complete guideline is the ability of instructors and their disposition towards consolidation. Various teachers don't feel organized the alterations in their preparation in that they fear extra work and the support with parents and distinctive adults. The new troubles can lead towards low feelings of self-sufficiency. In this manner, teachers don't know how to respond and don't act in authentic way. We will examine around few steps taken by Indian Government for the readiness of educators that can work in Inclusive schools.

For over a century, Special schools offered the main instruction accessible to kids with disabilities as a result of the broad conviction that kids with uncommon requirements couldn't be instructed close by others. This permitted few children to approach education however did not help these kids to enter the standard Group subsequent to finishing their training. There is confirmation to propose that numerous Teachers don't feel prepared to show children with disabilities and gripe that they require more opportunity to teach these students. A compelling teacher must have an uplifting state of mind towards a wide range of kids. An educator with the correct state of mind has an enduring effect on the students ' enrolment and their learning. A solitary enlivened educator, regardless of whether school , school or college leaves an enduring impact on the psyches of students, not just as far as the information and preparing bestowed yet in addition the benefits of educating learning and expert pride, and moves a couple students to imitate their instructor and take educating as a calling. Remembering to evaluate the disposition of the instructors in respects of consideration of special students into standard, an examination has been directed on school and college Teachers.

Inclusion is difficult to characterize, the focus ought not be on what inclusion implies, yet rather on the implications of inclusion. Inclusion is likewise contended to be a troublesome and

multifaceted. India is one of the few countries world over where the education of children with special needs doesn't fall within the purview of human resource development ministry. The prime focus of HRD is rehabilitation, not education. In fact, till today it does not have education as part of its agenda and the issue of education of children with disabilities remains imperceptible. But the segregation of children with challenging needs from school surroundings is morally unjustifiable and a violation of human rights. Indeed over 36 million disabled children need special education which will ensure 'equalization of educational opportunity'-a prime objective taken by the Kothari Commission. It is perfectly observed that Seventy-eight percent of Indian population lives in rural areas without provision for special schools.

There are no all inclusive arrangements. Each child and each circumstance has extraordinary needs. Instructors should open up for the not-yet-known. They are rehearsing in managing a quality shortcoming investigation and this opens entryways in the learning procedure of the disable kid, his/her associates and the teacher. Therefore, steps from all concerned need to be taken to make main stream schools inclusive and the central and state governments have to train their teachers to manage inclusive classrooms. In India teacher training in special education is imparted through both face-to-face and distance mode.

Few steps taken in this field are :

I) **Pre-Service Training :** In India, there is arrangement for pre-benefit educator preparing in special Education, yet it is for the most part amassed in optional level preparing. There are 159 organizations of optional educator preparing in Special Education while there are just eleven establishments in the nation that grants pre-benefit preparing at basic or essential level in Special Education. The Rehabilitation Council of India (RCI) is the summit expert to create, perceive and direct the course educational programs of Special Education . The Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal is the single college in the nation, bestowing B. Ed. (SE) through separation learning mode. As of late, it has propelled Post Graduate Professional Diploma in Special Education Course for general B.Ed. understudies. The fruitful competitor of this program winds up comparable to B.Ed.- SEDE degree holder with specialization in picked inability zone. A MOU has been marked between the National Council for Teacher Educations (NCTE) and the Rehabilitation Council of India (RCI) driving towards a meeting in order to sharpen all instructors and asset people. The NCERT (2000) has set up a gathering under the National Curriculum Framework Review to look at the educational data sources and classroom revamping. Indeed, UGC National Educational Testing Bureau has effectively included "specialized curriculum", in educational modules of its Educational train. It incorporates insights about a specialized curriculum, coordinated instruction, training of mentally retarded (MR), visually im-

paired (VI), hearing impaired (HI), orthopaedically handicapped (OH), gifted and creative children, learning disabled children and education of Juvenile delinquents.. The Postgraduate Departments of Education in India is on approach to fortify the inability component in their individual educational modules. Private Bridge Courses for CWSN in A.P., U.P. and Rajasthan: Andhra Pradesh, Uttar Pradesh and Rajasthan have built up a guide to execute private Bridge Courses to create abilities of preparation for fruitful joining in customary schools.

II) Alternate targets of the course are : (I) furnish with required aptitudes among understudies with serious inabilities to use special equipment independently, (ii) create satisfactory 3R's abilities and scholarly skills required for quick incorporation in the standard classroom suitable to the child's review level and (iii) create feeling of freedom, fearlessness and inspiration for self-improvement, to situate the kids with different conditions, for school consideration, as well as group and social incorporation. II) In-Service Training: Different sorts of teacher preparing programs are being actualized under SSA to arrange rudimentary instructors towards Inclusive Education (IE). The segment IE has been joined as a piece of 20 days obligatory preparing of in-benefit teachers under SSA. This goes for arranging each educator to the idea, which means and significance of consideration.

Teachers need to deal with the obscure and the vulnerabilities. They need to leave their protected and commonplace circumstance and make put for what they don't know. The space to try (and incidentally come up short) must be obviously conveyed to Teacher. Every one of the Teacher in the exploration figured out how to move forward with their vulnerabilities and ascribe their advance to the accompanying methodologies :

- Teachers should fall back on their aptitudes as an educator. The inquiries furthermore, questions can be handled by the acknowledgment that the work a educator every day improves the situation every one of the kids likewise works for this specific children.
- The underlying vulnerability will diminish bit by bit by working with the children and working up positive encounters. Time and correspondence are of significant significance in this procedure. Teachers don't remain solitary. They can depend on help of other individuals who have listening ears and assistance.
- Teachers will find that the Child has capacities as well. There are not just the challenges which figure out who the child is and what he/she is prepared to do. Teachers ought not think about execution of the kid with that of their companions in class, yet center around perceiving what they share in like manner.

The teachers appear accepting and positive of inclusionary programs, there remains some concern about implementing Inclusive Education in the mainstream classroom. As attitudes are based

on beliefs, they can be changed when presented with new information such as inclusion success stories of children with disabilities. Therefore teacher training institutions should also make scrupulous efforts to equip the future teachers not only with teaching skills but also promotion of positive attitude towards the children with special needs

References :

1. Deviji, Q.(2018) How Teachers Can Help Students Achieve Big Ideas.TED Talk on youtube, Retrieved through https://www.youtube.com/watch?v=pdeGLYbE9hU
2. Inge,V.P. & Elisabeth,D.S.(2018)"Becoming a Different Teacher…" Teachers' Perspective on Inclusive Education. An Article Retrieved from https://biblio.ugent.be/publication/4249081/file/6807993.pd
3. Kumar,A.(2016) Exploring the Teachers' Attitudes Towards Inclusive Education System: A Study of Indian Teachers. Journal of Education and Practice.7(34), 2016 Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1126676.pdf
4. Patra,G.(2017) Inclusive Education in India and Its Present Perspectives. Blog Retrieved from http://gtmpatra.blogspot.com/2017/11/inclusive-education-in-india-and-its.html
5. Tehsildar,S.(2018) Inclusive Education: A Different Perspective. Age of Awareness. Retrieved through https://medium.com/age-of-awareness/inclusive-education-a-different-perspective-fd42a92d59
6. UNITED NATIONS (2008). Convention on the Rights of Persons with Disabilities. Retrieved from http://www.un.org/disabilities/convention/conventionfull.shtml.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 10-11
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 151-159

हेनरी लुईस विवियन डिरोजियो के विचारों का शैक्षिक प्रभाव

सरिता, शोध छात्रा,
अपर्णा वत्स (एसोसिएट प्रोफेसर)
इतिहास विभाग, रघुनाथ गर्ल्स डिग्री कॉलिज, मेरठ।

महज 17 वर्ष की उम्र में हेनरी डिरोजियो हिन्दू कॉलेज में सन् 1826 में बतौर एक शिक्षक नियुक्त हुए। उनकी नियुक्ति में प्रमुख योगदान डॉ० होरे सहायमन विलसन का था जो उस समय हिन्दू कॉलेज की प्रबन्धक समिति में पर्यवेक्षक थे। डिरोजियो को द्वितीय व तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों के अध्ययन हेतू नियुक्त किया गया था। सम्भवतः इसके–पीछे प्रमुख कारण यह था कि प्रथम वर्ष के विद्यार्थी व शिक्षक की आयु लगभग समान थी यदि अंग्रेजी का कोई प्राध्यापक इंग्लैण्ड से बुलाया जाता इसलिए डॉ० विल्सन ने डिरोजियो को चुना क्योंकि विल्सन ने यह सोचते थे कि डिरोजियो अंग्रेजी भाषा साहित्य व इतिहास के सर्वोत्तम प्राध्यापक होंगे।

जब विल्सन सन् 1826 में हिन्दू कॉलेज के सरकारी पर्यवेक्षक बनकर आए, तब प्रथम वर्ष के छात्र 'टेग" की 'बुक ऑफनोलेजव 'एनफील्ड' की स्पीकर एण्डबेलयर एक्सर साइज' पढ़ रहे थे। यही किताबें ऊपरी कक्षा के लिए भीथी।हालांकि येकिताबेंउपयोगीवमूल्यवान थी तथा अंग्रेजी साहित्य की धरोहर थी लेकिन यह धारणा व्यक्त नहीं की जा सकती थी कि ये इसके मूल्य की सटीक धारणा व्यक्त करती थी।[1]

उन्होंने यह भी निरीक्षण किया कि ऊपरी वर्ग की कक्षाओं में अधिक उत्तम कवियों की पद्य व गद्य की कृतियों का अध्यापन कराया जाना चाहिए। इसलिए डॉ0 विल्सन जो कि हिन्दू कॉलेज के पर्यवेक्षक थे ने डिरोजियो के इस सुझाव को हरी झण्डी प्रदान की कि विद्यार्थियों को अंग्रेजी साहित्य की शिक्षा के साथ–साथ इतिहास, भूगोल और यहाँ तक कि विज्ञान की भी शिक्षा प्रदान की जाए। इसलिए पाठयक्रम में स्नातक के तीनों वर्षों के लिए अलग–अलग पाठ्य पुस्तकों को जोड़ा गया जो इस प्रकार था :–

"**प्रथम वर्ष**– (4) इंग्लैण्ड का इतिहास (गोल्डस्मिथ) स्कॉट कृत–प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ।
"दार्शनिक के विषयों के व्याख्यान"
"म्यूर कृतव्याकरण"

द्वितीय वर्ष– "जॉयस के व्याख्यान"
"रोम का इतिहास"
अंग्रेजी ज्ञान हेतु "व्याकरण" जिसके लेखक म्यूर थे।

तृतीय वर्ष – जॉयस के व्याख्यान गोल्डस्मिथ का भौगोलिक विवरण इत्यादि।[2]

लेकिन डिरोजियो जोकि एक उत्तम अध्यापक थे घ्न पाठ्यक्रम को और विस्तृत वगहन बनाया ताकि उनके विद्यार्थियों की समझ बढ़े एवं तार्किक शक्ति का विकास हो। विल्सन महोदय ने डिरोजियों की मदद से पाठ्यक्रम में बदलाव किए जो इस प्रकार थे :–

प्रथम वर्ष – आधुनिक यूरोप का इतिहास– "रसेल"

–होमर की जप व ओडिसी

–मिल्टन की 'पैराडाइज लॉस्ट'

–शेक्सपियर के दुखद नाटक जैसे–

"'मिकबेथ' 'ओथेलो', 'टमपेस्ट'

द्वितीय वर्ष– "रसेल के पत्र"

"होमर काव्य यथा ओडिसी'

म्यूर की व्याकरण।

तृतीय वर्ष – गोल्डस्मिथ कृत यूनान का इतिहास।

गोल्डस्मिथ का भूगोल

डब्ल्यूबी. यीट्स का नैसर्गिक दार्शनिक कविताएँ

ब्लेयर का काव्य इत्यादि।

इस प्रकार डिरोजियो की सहायता से पाठ्यक्रम में आमूल चूल परिवर्तन किए गए। अब मानसिक विकास व तर्कणा विकास के लिए साहित्य, इतिहास, गणित, भूगोल, प्राकृतिक दर्शन का समावेशन किया गया।

इसी तरह शेक्सपियर, मिल्टन, थॉमसन, ग्रे, हॉमर इत्यादि की रचनाओं ने पाठयक्रम को विस्तार किया। न्यूटन के सिद्धान्त, ऑप्टिक्स, मशीन, खगोल ज्यामिति के समावेश से विज्ञान के क्षेत्र में छात्रों की रूचि जाग्रत हुई।

इतिहास में विभिन्न देशों का इतिहास यथा–यूरोप का इतिहास, यूनान व रोम का इतिहास का अध्ययन कराने से तुलनात्मक समझ विकसित हुई। तार्किक विकास हेतु मिल व व्हीटले की रचनाओं को पाठयक्रम में जोड़ा गया, हालांकि डेरोजियो महज पाँच वर्ष ही कॉलेज में अध्यापक रह सकें। उनका कार्यकाल सन् 1826–1831 के बीच रहा। इतने कम समय में ही डेरोजियो ने महान बौद्धिक व शैक्षणिक क्षमताओं का प्रदर्शन किया। छात्रों को उन्होंने विस्तृत पाठयक्रम के माध्यम से यह शिक्षा दी कि किस प्रकार यूरोप में ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में साहित्य का विकास हुआ। इतिहास को दर्शनसे सम्बद्ध करते हुए मध्यकालीन यूरोप के उदारवादी व परिवर्तनवादी विचारों का विकास किस प्रकार हुआ यह समझाया।

डिरोजियों अब एक प्रबुद्ध शिक्षक के रूप में उभरे। डेरोजियों छात्रों से कक्षा, कक्षेत्तर यहाँ तक अपने घर पर भी वाद–विवाद करते, इस वाद से उभरे प्रश्न छात्रों के मानस पटल पर अमिट छाप छोड़ते थे। उन्होंने छात्रों को हयूम, डेविड, बेकन की रचनाओं के माध्यम से आधुनिक तर्कणावाद की जो शिक्षा दी वह अतुलनीय थी। उन्होंने शिष्यों को सभी रूढ़िवादी बन्धनों को तोड़ने की प्रेरणा दी। उन्होंने सुकरात की भांति छात्रों को प्रत्येक विषय पर प्रश्न चिहन लगाने की प्रेरणा प्रदान की। पाश्चात्य विचारकों की रचनाओं के अध्यापन ने इस दिशा

में विशेष योगदान प्रदान किया।

"वाल्टेयर', रूसी, दिदरो, की रचनाओं से राष्ट्रवाद की भावना का उत्तरोत्तर विकास होता गया। आधुनिक भारतीय शिक्षा के विकास के इतिहास में पाश्चात्य साहित्य, दर्शन, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व कूटनीतिक परिवर्तनवादी विचारों का अध्यापन कराया जा रहा था। आधुनिक विज्ञान व गणित का अध्यापन से छात्रों की मांनसिक क्षमता का विकास हुआ।

निःसन्देह डिरोजियों एक महान शिक्षक के रूप में उभर रहे थे। 'एपीस्टीन' ने उनके लिए कहा–

"सभी महान शिक्षकों में एक चीज सामान्य है और वह है विषय के प्रति प्रेम, "और सभी छात्रों को यह समझाने मे समर्थ होते कि जो कुछ भी उनको पढ़ाया जा रहा है वह अति आवश्यक व उपयोगी है।"[3]

एक महान व कुशल शिक्षक की विशेषताएँ जैसा कि मुखोपाध्याय बताते हैं;

1. विषय कौशल – यह एक अति आवश्यक गुण है उन शिक्षकों के लिए जो महान व कुशल है।
2. शिक्षण – प्रशिक्षण प्रविधियाँ मुख्य रूप से बाल मनोविज्ञान, कक्षा–शिक्षण, छात्र–शिक्षक संबंध एवं वार्तालाप में शिक्षक कुशल है।
3. महान शिक्षक में मानवता के प्रति विशेष लगाव होना चाहिए। साथ ही वह छात्रों के अभिभावकों के रूप में भी कार्य करें ताकि जब उसके शिष्य भटके वे उन्हें उचित मार्ग दिखा सके।
4. एक कुशल शिक्षक सदैव अपने छात्रों के कल्याण के विषय में सोचता है। वे छात्रों के व्यवहार, शैक्षणिक गतिविधियों व यहाँ तक कि शिक्षणत्तर व्यवहार को भी प्रभावित करते हैं।[4]

डिरोजियों की शिक्षा प्रणाली में एक आदर्श शिक्षक के सभी गुण विद्यमान ये जिनका विवरण दिया गया है। हिन्दू कॉलेज की पांडुलिपि से जो अप्रकाशित थी हमें एक पत्र प्राप्त होता है। इस पत्र में डिरोजियों के कार्य की प्रशंसा की गई–

"प्रथम, द्वितीय व तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों को डिरोजियों जी की कक्षा में उपस्थित होकर अत्यन्त लाभ प्राप्त होता है जहाँ काव्य, गद्य, साहित्य व दर्शन का अध्ययन कराया जाता है। वे हर रोज कक्षा समाप्ति पर छात्रों से वार्तालाप करते यद्यपि वे वार्तालाप अनौपचारिक थे। किसी भी कॉलेज कमेटी से इनका अनुमोदन ना था। फिर भी डिरोजियों अपने छात्रों के प्रति वर्ष समर्पण व उत्साह से प्रतिबद्ध रहे। बदले में छात्र भी उन्हें प्रेम करते और सदैव उनका मार्गदर्शन प्राप्त करने को लालायित रहते। छात्र अपने गुरू का अनुकरण करते थे। वास्तव में डिरोजियों महोदय का अपने छात्रों के मानस पटल पर ऐसा गहरा प्रभाव था, कि वे अपने निजी सरोकारों में भी अपने गुरू की सलाह व आज्ञा के बिना आगे नहीं बढ़ते थे। वास्तव में डिरोजियों महोदय ने छात्रों में साहित्य में रूचि पैदा की।

उनके निर्देशन का यह प्रभाव हुआ कि कॉलेज से उत्तीर्ण छात्र समाज के सबसे अनुकरणीय व्यक्तित्व बने। साथ ही इन छात्रों ने सम्पूर्ण संसार में प्रशंसा प्राप्त कि ना केवल साहित्य के क्षेत्र में अपितु विज्ञान के क्षेत्र में भी और इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि कॉलेज के छात्र सत्य की प्रतिमूर्ति थे। वास्तव में कॉलेज के छात्र सत्य का पर्यायवाची बन गए थेऔर यह एक सामान्य विश्वास था कि ऐसा लड़का झूठ नहीं बोल सकता क्योंकि वहएक कॉलेज (हिन्दू कॉलेज) का छात्र है।[5] यही डिरोजियों की एक शिक्षक के रूप में मुख्य उद्देश्य था।

"प्यारे चंद मित्र' जो डिरोजियों के प्रमुख छात्र थे जो आगे चलकर बंगाली साहित्य में पुरोधा भी थे, ने

डिरोजियों के विषय में कहा; "सभी अध्यापकों में डिरोजियों महोदय ने स्वतंत्र वार्तालाप व चिंतन पर सबसे गहरा प्रभाव छोड़ा। उनका यह प्रभाव सभी विषयों जैसे, सामाजिक, नैतिक व धार्मिक विषय पर पड़ावे स्वयं भी स्वतंत्र विचारक थे। उन्होंने छात्रों को अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। हिन्दू कॉलेज के प्रबुद्ध छात्र अक्सर चाय के समय एक–दूसरे से वार्तालाप करते थे और कॉलेज के बाद वे डिरोजियों के घर पर वार्तालाप करते थे। इससे विचारों का उन्नमुकत प्रवाह सम्पन्न हुआ। इससे उन पुस्तकों को पढ़ा जाने लगा जो कि संभवतः पढ़ी नहीं जाती। ये पुस्तकें साहित्यिक, आध्यात्मिक और धार्मिक थी।"[6]

प्यारे चंद मित्र के भाई किशोरी चंद्र मित्र हिन्दू कॉलेज के छात्र थे उन्होंने डेविड हेयर की पुण्य तिथि 2 जून 1864 को हिन्दू कॉलेज में व्याख्यान देते हुए कहा;

"सन् 1827 में हेनरी विवियन डिरोजियों हिन्दू कॉलेज के वरिष्ठ विभाग में अध्यापक नियुक्त हुए। मैंने तभी उनकी नियुक्ति को प्रमुखता से देखा क्योंकि यहाँ से कॉलेज के इतिहास में यह एक नये युग की शुरूआत हुई। बतौर एक अध्यापक उनका व्यवसाय प्रतिष्ठित हो रहा था। अच्य प्राध्यापकों एवं शिक्षकों की तुलना में उनके कार्य कही अधिक प्रशंसनीय एवंसत्य थे। वे केवल शब्दों का ज्ञान नहीं कराते थे अपितु वस्तु के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान देना वे अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे। वे मस्तिष्क को स्पर्श नहीं करते थे अपितु हृदय को स्पर्श करते थे। वे रटने पर बल नहीं देते थे अपितु नये विस्तृत व स्वतंत्र विचारों से छात्रों को अवगत कराते थे। उन्होंने छात्रों को चिंतन करने के लिए प्रोत्साहित किया और पुरातन कट्टरपंथी विचारों को त्यागने के लिए प्रेरित किया। ये विचार अब भी उनके देशवासियों के मस्तिष्क में छाये हुए थे। उनके पास मानसिक और नैतिक दर्शन का गहन ज्ञान था। उन्होंने अपने छात्रों को लॉक और रीड स्टीवर्ट और ब्राउन की रचनाओं से परिचित कराया।

अपने व्याख्यानों के माध्यम से उन्होंने छात्रों में अवलोकन व तर्कणा शक्ति विकसित की। लेकिन अपने छात्रों की रूचि के लिए वे केवल कक्षा में ठी परिश्रम नहीं करते थे अपितु वे अपने घर पर भी इस प्रकार का वार्तालाप करते थे। डिबेटिंग क्लब में और अन्य जगह परभी वे वार्तलाप में संलग्न रहते थे जिससे कि वे अपने सधे हुए विचार अपने शिष्यों को समझा सके। डिरोजियो एक प्रभावशाली वक्ता थे। उन्होंने जो कहा वह विचारोत्पादक और प्रभावोत्पादक था।[7]'' (मित्रा 1877)

गुरू–छात्र संबंध को डिरोजियों ने अमर बना दिया। जैसा कि हम उनके द्वारा रचित एक कविता "शिष्यों के लिए" में उनके विचार देखते हैं :–

"युवा फूलों की पंखुड़ियों की तरह विस्तार,
मैं आपके नवजात शिशुओं के कोमल उद्धारन को देखता हूँ,
और बांधने वाले मंत्र का मधुर ढीलापन
आपकी बौद्धिक ऊर्जा और शक्तियाँ,
वह खिंचवा, जैसे नरम गर्मी के घंटों में युवा पक्षी,
उनके पंख, अपनी ताकत आजमाने के लिए हे! हवाएँ कैसी
परिस्थितियों की, और कोमल अप्रैल की बारिश
प्रारम्भिक ज्ञान और अनावश्यक प्रकार के,
नई धारणाओं ने अपना प्रभाव छोड़ा;

और आप कैसे सत्य की सर्वव्यापकता की पूजा करते हैं।
जब मैं देखता हूँ तो मुझ पर क्या खुशी बरसती है
भविष्य के दर्पण में, प्रसिद्धि
अभी भी तुम्हें पुष्पमाला (ज्ञानरूपी) बुननी है और प्राप्त करनी है,
तब मुझे महसूस होगा कि मैं व्यर्थ नहीं जिया।"[8]

इस कविता के माध्यम से डेरोजियो के उत्तम विचार प्रकट होते हैं। वे अपने शिष्यों कोलगातार भावात्मक व तार्किक रूप से सुदृढ़ करना चाहते थे। हिन्दू कॉलेज में जो पुनर्जागरण का कार्य राजा राम मोहन रॉय ने शुरू किया था। उसे डेरोजियो ने चरम सीमा पर पहुँचा दिया। डेरोजियो के प्रमुख शिष्यों में कृष्णमोहन बनर्जी, रसिक कृष्ण मलिक, दक्ष निरंजन मुखर्जी, रामगोपाल घोष, रामतनु लाहिणी, महेश चन्द्र घोष, हरचंद्र घोष, प्यारेचंद्र मित्र, ताराचंद्र चकवर्ती, रविन्द्रनाथ, सिकदार आदि थे। ये हिन्दू कॉलेज के प्रमुख प्रबुद्ध विद्यार्थी थे जिनका विवरण आगे किया जाएगा।

एच०एच० विल्सन जो हिन्दू कॉलेज के भ्रमणकर्ता थे ने जब डिरोजियों की शिक्षण प्रणालियों को देखा तो स्तब्ध रह गए। वे लिखते है, "डिरोजियों इतिहास को ऐसे पढ़ाते हैं जैसे कोई दार्शनिक का मस्तिष्क हो। डिरोजियों के पास अन्य विषय से संबंद्ध करते हुए अपने विषय को पढ़ाने की विलक्षण प्रतिभा थी।[9]

राधानाथ सिकदार जिनका नाम बंगाल पुनर्जागरण में सम्मान के साथ लिया जाता है, डेरोजियों के छात्र थे। उन्होंने डेरोजियों के विषय में लिखा;

"मिस्टर डिरोजियो बहुत दयालु व परिश्रमी अध्यापक थे। सबसे पहले उन्होंने हमें विषय की गहराई समझने में मदद की। मेरे जहन में उन्होंने साहित्यिक महत्वकांक्षा जाग्रत की। इसतथ्य को स्वीकार करने में मुझे अत्यन्त हर्ष होता है।''[10]

प्यारे चेन्द मित्र जो हिन्दू कॉलेज एक :अन्य छात्र थे उन्होंने श्री छिरोजियो की कार्यप्रणाली का निरीक्षण किया वे कहते हैं–

"डिरोजियों का अपने छात्रों पर गहन प्रभाव था। उनके छात्र अनवरत अपने शिक्षक सेवाद–विवाद करते थे। डिरोजियो अपने छात्रों को अपने घर पर भी पढ़ाते थे। चिंतन करने की प्रवृत्ति का विकास उन्होंने अपने छात्रों में किया।....उन्होंने छात्रों को सिखाया कि किस प्रकार प्रत्येक अच्छे गुण को आत्मसात किया जाए और किस प्रकार प्रत्येक रूप में बुराई का अंत किया जाए। इस कार्य के लिए उन्होंने प्राचीन इतिहास का आलम्ब लिया जिससे छात्रों में न्याय के प्रति सम्मान, राष्ट्रभक्ति, मानवतावाद की भावना विकसित हुई।"[11]

इस प्रकार उनके छात्रों के विचारों के द्वारा हमें ज्ञात होता है डिरोजियो कितने महान अध्यापक थे। उनके शिक्षण के विषय में कुछ अन्य विचार।

शिवनाथ शास्त्री ने उन्नीसवीं शताब्दी में एक प्रपत्र लिखा जिसका शीर्षक था, "रामतुन लाहिड़ी और तत्कालीन "बंग समाज"। रामतुन डिरोजियो के अनुयायी थे। उन्हें तीन वर्ष तक डिरोजियों के संपर्क में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

शिवनाथ शास्त्री आगे लिखते हैं, "डिरोजियो साहित्य व इतिहास के चतुर्थ वर्ष के अध्यापक थे। लेकिन अन्य कक्षाओं के छात्र भी उनकी कक्षा के प्रति आकर्षित रहते थे, जिस प्रकार चुंबक लौहे को आकर्षित करती

है। जैसे ही वे स्कूल परिसर से बाहर आते छात्र उन्हें घेर लेते थे वे अध्यायवार वार्ता छात्रों के साथ करते थे और विभिन्न विषयों पर उनसे चर्चा करते थे। वे स्वतंत्र वाद–विवाद के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करते थे। इस तरह से उन्होंने छात्रों में उन्मुक्त चिंतन का विकास किया। वे छात्रों को अपने घर पर बुलाते थे और उनकी माता जी व बहन एमीलिया वार्मले उनका स्वागत करती थी।[12]

डिरोजियो के जीवनी लेखन थॉमस एडवर्ड ने डिरोजियो के शिक्षण के विषय में लिखा है (यह तथ्य उन्होंने हरमोहन चर्डर्जी से प्राप्त किए। कि "कोई भी अन्य अध्यापक इतने उत्साह से नहीं पढ़ाता। छात्रों व शिक्षक के बीच एक अदूट संबंध था। हिन्दू कॉलेज में डिरोजियो की अल्पावधि में यह तथ्य सबसे अतुलनीय थी ना तो पहले ना ही बाद में कोई भी शिक्षक भारतवर्ष में स्थापित किसी शिक्षण संस्थान में नहीं हुआ जिसने अपने छात्रों के ऊपर इतना गहरा प्रभाव छोड़ा हो जितना कि डिरोजियो ने। यह केवल शिक्षण घण्टों, शिक्षण कक्ष तक सीमित नही था जबकि उन्नत व्यवहार, दृढ़ इच्छा शक्ति, ज्ञान प्रदान करने की अथाह शक्ति, धैर्य एवं सम्मानपूर्ण दृष्टि ने डिरोजियों के छात्रों को प्रभावित किया हो। व्याख्यान के पश्चात् मध्य अंतराल में वे वाद–विवाद के लिए सदैव तत्पर रहते थे और अपने छात्रों की रवाध्याय में सहायता करते थे जिससे उनके छात्र अपनी विचारधारा को स्वतंत्रता पूर्वक व्यक्तकर सके और उन विषयों पर भी विचार व्यक्त कर सकें जो उन्होंने कक्षा–कक्ष में पढ़े हैं। कक्षा के पश्चात् भी डिरोजियो छात्रों को सिखाते थे जिससे छात्रों की इंग्लैण्ड के साहित्य और विज्ञान में गहनतम और व्यापक रूचि जाग्रत हो सके।[13]

सी०जे० मॉण्टेग्यू. जो कलकत्ता के स्कूल मास्टर थे ने डिरोजियो के विषय में लिखा "बतौर एक शिक्षक डिरोजियो का जीवन एक महान सफलता है। उन्होंने अपने छात्रों की समझ को विस्तृत किया। उन्होंने छात्रों को तर्क करना सिखाया और साहित्य व काव्य के द्वार विचाराभिव्यक्ति करना सिखाया। नैतिक दर्शन में उनके विचार महान थे। उन्होंने अथक प्रयास से छात्रों को लॉक, रीड, स्टीबर्ट के विचारों से अवगत कराया।"[14]

डिरोजियों क्रमबद्ध शिक्षण के प्रति सतर्क नहीं थे। हिन्दू कॉलेज के प्रधान शिक्षक डी. एनस्लेम और डिरोजियों के बीच एक घटना घटित हुई। हिन्दू कॉलेज में प्रत्येक अध्यापक को मासिक प्रगति–पत्र प्रस्तुत करना था। डिरोजियों ने भी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, डेविड हेयर भी वहाँ उपस्थित थे। इस रिपोर्ट में यह नहीं बताया गया कि उन्होंने पाठ्यक्रम से क्या पढ़ाया।

इसके अतिरिक्त डिरोजियो ने अपने छात्रों को स्वतंत्र चिंतन की विरासत दी उत्तकी वजह से ब्राह्मणवाद को चुनौती मिली। सामाजिक बंधन, रीति–रिवाज, सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली परम्पराओं को चुनौती दी जा रही थी। रूढ़िवाद व आधुनिकतावाद के बीच द्वन्द छिड़ रहा था। स्त्री शिक्षा के लिए कार्य किए जा रहे थे उनके अधिकारों के लिए आवाज बुलन्द की जा रही थी। स्त्री शिक्षा के लिए कार्य किए जा रहे थे। इस प्रकार समाज इन परिवर्तन को सहज स्वीकार करने की स्थिति में नहीं था। जैसा कि 'मदहब मलिक' ने कॉलेज पत्रिका में लिखा; "अगर कुछ ऐसा है जिससे हमें अपने हृदय से घृणा करनी चाहिए वह है–हिन्दुत्व।''[15]

रूढ़िवादी हिन्दू समाज अब इस नयी चेतना के विरूद्ध हो गया। हिन्दू धर्म के नियम के संरक्षण के लिए धर्म सभा' (1930) का गठन किया गया। इसके अध्यक्ष थे राधाकांत देव। धीरे–धीरे इस सभा की शाखाएँ सम्पूर्ण बंगाल में स्थपित हुई। यहाँ तक कि धर्म को बचाने केनाम पर सती प्रथा का समर्थन किया जाने लगा।

विरोध के स्वर कॉलेज प्रबंधक समिति तक पहुँचने लगे। डिरोजियो एवं उनके अनुयायियों के विरूद्ध

प्रस्ताव पारित किए गए प्रबंध समिति के अध्यक्ष डी. एस्लेम थे।

हालांकि इस प्रस्ताव ने कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ा। कॉलेज छात्रों ने हिन्दुत्व को चुनौती देते रहना जारी रखा। परिणामस्वरूप बहुत से अभिभावकों ने अपने बच्चों का कॉलेज से नामांकन हटवा लिया। सन् 1830 में पुनः एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें कॉलेज में होने वाले वाद–विवाद (खासतौर पर धार्मिक मामलों में) पर प्रतिबंध लगाया किसी भी प्रकार का गैर शैक्षणिक कार्य की सूचना तुरन्त कॉलेज प्रशासन को सूचित किया जाए और यदि कोई भी शिक्षक दोषी पाया गया तो उसे कॉलेज से त्यागपत्र देने का प्रावधान किया। ये सभी प्रस्ताव वास्तव में डिरोजियों के विरूद्ध ही बनाए गए थे।

ऐसे समय में जबकि युवा अपने धर्म पर विश्वास खो चुके थे। एलेक्जेंडर डफ कॉलेज आए। डफ एक स्कॉटिश मिश्नरी थे। उन्होंने कॉलेज में इसाई धर्म का व्याख्यान देना शुरू किया जिससे डिरोजियो की मुसीबतें और बढ़ गई।

23 अप्रैल सन् 1834, हिन्दू कॉलेज के प्रबंधकों की एक बैठक हुई जिसमें कॉलेज में व्याप्त अतिवादी विचारों के विरूद्ध 49 बिन्दुओं का ज्ञापन जारी किया गया।

ज्ञापन :–

1. मिस्टर डिरोजियो कॉलेज में व्याप्त सभी विरोधी के लिए उत्तरादायी है। उनके व छात्रों के मध्य सभी संचार को निषिद्ध किया गया।
2. उच्च शिक्षा के वे छात्र जो अपनी आदतों के लिए कुख्यात थे कॉलेज के भोज से हटा दिए जाए।
3. वे छात्र जिन्होंने सामाजिक रूप से हिन्दू धर्म व रीतियों का विरोध किया, उन्हें निष्कासित किया जाए।
4. कॉलेज में प्रवेश व अध्ययन के लिए आयु 10 से 42 व 48 से 20 निश्चित की गई।
5. शारीरिक अपराधों के लिए कॉलेज के छात्रों के लिए दण्ड प्रावधान किया व अन्य तथ्य प्रधान शिक्षक के. विवेक के निर्णय पर छोड़े दिए गए।
6. छात्रों के पूर्व चरित्र का ध्यान में रखते हुए ही अब कॉलेज में प्रवेश मिलने लगा।
7. नियुक्तियों में यूरोपियों को प्राथमिकता दी जाएगी।
8. शाम के व्याख्यान प्रतिबंधित किए गए।
9. छात्र कॉलेज के समय के बाद कॉलेज परिसर में ना रूके।
10. निजी व्याख्यानों को सुनने वाले छात्रों को कॉलेज से निष्कासित किया जाए।
11. पुस्तकें एवं अध्ययन समय निश्चित किया गया।
12. विवादित पुस्तकें प्रतिबंधित की गई।
13. फारसी व बांग्ला सीखने पर छात्रों को अधिक समय देना होगा।
14. संस्कृत अध्ययन को बढ़ावा दिया गया।
15. मासिक खर्च केवल अच्छे चरित्र के और जिन छात्रों से भविष्य में कॉलेज लाभान्वित होगा उन्हें ही दी जाएगी।
16. छात्र जो कॉलेज में प्रवेश चाहते हैं उन्हें संस्कृत या अरबी का ज्ञान हो।
17. बन्द कमरे में अध्ययन निषिद्ध किया गया।

18. छात्र–शिक्षक के भोज एक साथ प्रतिबंधित किए गए।

19. अनुशासन का पालन कठोर किया गया।"[16]

ये सभी नियम डिरोजियो को केन्द्र में रखकर ही बनाए गए थे। ऐसा ही बाबू चन्द्रो कुमार का कहना कि यदि रिपोर्ट को न देखे तो डिरोजियो की शिक्षा में कोई बुराई ना थी।

डिरोजियो के विषय में कमेटी के सदस्यों के भिन्न–भिन्न मत थे। मिस्टर हेयर तो उन्हें एक उत्तम शिक्षक मानते थे एवं उनकी शिक्षा को लाभकारी मानते थे।

राधाकांत देव उन्हें अनुचित व्यक्ति मानते थे।

मिस्टर विल्सन का मानना था कि डिरोजियो ने कुछ भी वैसा नहीं किया जो बुद्धिसम्मत ना हो।

बाबू रूजमॉय दत्त भी कहते हैं कि डिरोजियों के विषय में यदि रिपोर्ट को ध्यान में नारखा जाए तो डिरोजियों में कुछ भी अनुचित ना था।

बाबू प्रसून कुमार ठाकूर डिरोजियो को सभी दोषों से मुक्त मानते थे।

बाबू रामकोमल सेन राधाकांत देव की भांति उन्हें युवाओं के लिए सबसे अनुचित व्यक्ति मानते थे। श्री कृष्ण सिंह का मत था कि डिरोजियों सभी दोषों से दूर है।

लेकिन कलकत्ता का हिन्दू समुदाय डिरोजियों का कॉलेज से त्याग पत्र चाहता था।

बाबू चुन्द्र कुमार, राधाकांत देव, रामकोमल सेन ने डिरोजियो के विरूद्ध मतदान किया।

जबकि मिस्टर विलसन व मिस्टर हेयर केवल जनमत को ध्यानगत रखते हुए डिरोजियों को निष्कासित करने के पक्ष में नहीं थे।

इन सब विवादों के चलते डिरोजियों ने त्यागपत्र दिया :–

डिरोजियों का त्यागपत्र

सेवा में,

प्रबंधक समिति

हिन्दू कॉलेज — कलकत्ता 25 अप्रैल 1831

महोदय,

गत शनिवार को सम्पन्न हुई गुप्त समिति में जो संवाद हुआ उसका मुझे ज्ञान हुआ कि प्रस्ताव पारित किया गया कि हिन्दू कॉलेज में मेरी सेवाएँ समाप्त होने जा रही है। मैं अपना त्यागपत्र आपको सौंपता हूँ। ताकि मैं इस मानहानि से स्वयं को बचा पाऊँ कि कॉलेज मुझे निष्कासित करे।

हालांकि मेरी साख के प्रति यह अन्यायपूर्ण है जिसका मूल्य मेरे लिए अत्यन्त है। क्योंकि मैं इस संचार की रिकॉर्डिंग से कुछ तथ्य, जो मुझे लगता है, कार्यवाही के दौरान प्रकट नहीं होंगे, उनका व्यक्त कर दूँ।

प्रथम तथा द्वितीय–मेरे विरूद्ध कोई आरोप नहीं लगाया गया।

अगर कोई आरोप अरोपित किया गया तो मुझे सूचित नहीं किया गया।

तृतीय–मुझे बुलाया नहीं गया ताकि मैं अपने आरोपों का सामना कर सकँ।

चतुर्थ–मेरे विरूद्ध कोई साक्षी किसी भी पक्ष से नहीं प्रस्तुत किया गया।

पंचम–मेरे आचरण व चरित्र का कोई भी अनवीक्षण नहीं किया गया, अपने बचाव के लिए कोई अवसर

मुझे नहीं दिया गया।

षष्ठम्–जैसा कि मुझे ज्ञात है कि समिति के अधिकांश सदस्य मुझे कॉलेज से सम्बद्ध रहने पर अनुचित नहीं मानते। इसके बावजूद मुझे कॉलेज से हटाया जा रहा है। यह कितना निष्पक्ष, अपरीक्षित, अनसुना है कि बिना कार्यवाही का उपहास किए मुझे कॉलेज से हटाया जा रहा है।

ये सभी तथ्य हैं। मैं कोई भी टिप्पणी नहीं कर रहा हूँ।

मुझे भी अवसर मिलना चाहिए था कि मैं भी विल्सन, श्री हेयर व बाबू श्री कृष्ण सिंह को धन्यवाद दे सकता, उनके प्रतिभाग के लिए जो गत शनिवार हुई बैठक में उन्होंने प्रस्तुत किया।''

आपकी आज्ञाकारी सेवक

एच०एल०वी० डिरोजियो

डॉ० विल्सन ने डिरोजियों के साथ वार्तालाप किया।

डिरोजियों ने डॉ० विल्सन द्वारा पूछे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपने पत्रों के माध्यम से प्रदान किया।

डिरोजियों का त्यागपत्र स्वीकार किया गया। अब डिरोजियों ईस्ट इण्डिया पत्र के लिए लिखने लगे, स्वतंत्र चिन्तन व तर्क की मशाल अभी भी उनके लेखन के माध्यम से प्रज्जवलित रही।

सन्दर्भ सूची :–

शैक्षिक प्रभाव

1. Wilson's Report, 1825 to G.C.P.I.
2. विल्सन रिपोर्ट, 1826 जी०सी०पी०आई०
3. एपीस्टीन (1981) महान शिक्षकों का व्यक्ति चित्र न्यू चाई पृष्ठ सं0 78।
4. मुखोपाध्याय एम० "Total Quality Management 2001 in Education, New Delhi National Institute of Eductation Planning and Administration.
5. हिन्दू कॉलेज के क्लर्क हरमोहन चटर्जी का पत्र, एडवर्ड द्वारा उद्त (1864)
6. मित्र प्यारे चंद, 1860 ऑन दसालय इट्स नेचर एण्ड डेवलपमेंट, कलकत्ता पेज नं0 258।
7. मित्रा पी. 1877 ए बायोग्रफिकल स्केच ऑफ डेविड हेयर कलकत्ता स्टेनहॉप प्रैस पृष्ठ सं0 96।
8. डिरोजियो पोयट ऑफ इण्डिया, रोसिका चौधरी पृष्ठ सं० 85।
9. मुखोपाध्याय एस०एस० नाइनटीन्थ सेंचुरी बंगाल पृष्ठ संख्या (53–57) कोलकाता : पारूल प्रकाशिनी प्राइवेट लि०
10. वहीं
11. वहीं
12. लेथब्रिन, 1972
13. मुखोपाध्याय एस०एस० नाइनटीन्थ सेंचुरी बंगाल पृष्ठ संख्या (53–57) कोलकाता : पारूल प्रकाशिनी प्राइवेट लि०
14. वही
15. द इण्डियन अवेकलिंग एण्ड बंगाल, यंग बंगाल (पृष्ठ 69–82)
16. मुखोपाध्याय दत्त, ए. कुमार (2001) सांग ऑल स्ट्रॉमी पेटेल, कम्पलीट वर्क ऑल हेनरी लुईस विवियन डिरोजियो, कॉरसपोनडेन्स रिलेटिड विद रिमूवल ऑफ डिरोजियो पृष्ठ संख्या (326–340)

Email-Id : saritabuddhist@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 10-11
पृष्ठ : 160-165

हिंदी सिनेमा में हरियाणवी बोलियों का प्रयोग : एक मात्रात्मक अंतर्वस्तु विश्लेषण

विकास बेरवाल, शोधार्थी
डॉ. सुनयना, शोध निर्देशिका एवं सहायक प्राध्यापिका
संचार एवं प्रबंधन विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय हिसार।

परिचय :-

किसी भी समाज की संस्कृति और सभ्यता की पहचान के लिए बहुत सारे तत्व अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाज में व्यावहारिक दृष्टि से देखे तो हम पाते हैं कि बोली और भाषा समाज के लिए एक महत्वपूर्ण योजन का काम करती है। जो समाज को जोड़े रखता है। वह अपने शिष्टाचार, परंपरा और प्रतिष्ठा के बारे में हमें अवगत कराता है। "भाषा हमारे समाज के निर्माण, विकास, अस्मिता, सामाजिक व सांस्कृतिक पहचान का भी महत्वपूर्ण साधन है।" किसी भी समाज की संस्कृति की संरचना रातों–रात नहीं होती यह धीरे–धीरे बनती और संवरती रहती है। "संस्कृति को विकसित कर पाना, शायद रातों–रात ऐसा करने का कोई जादू फार्मूला नहीं है।" यह बहुत सारे तत्वों को प्रभावित करती है तो कहीं यह स्वयं भी प्रभावित होती है। भारतीय समाज में हरियाणा अपनी एक अलग पहचान रखता है। हरियाणा पुरातन इकाई है जो अपनी पक्षधरता को अपनी परंपराओं और सांस्कृतिक विरासत जैसे खेलों के माध्यम से, देश सेवा के माध्यम से दर्शाता आया है। "हरियाणा में हिसार जिले के बानावाली और राखीगढ़ी जो सिंधु घाटी सभ्यता का हिस्सा रहे हैं और 5000 साल से भी अधिक पुराने हैं।"[1]

जनसंचार के संसाधनों में बहुत सारे आयाम अपनी अपनी भूमिका निभाते हैं। जिसमें प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, इंटरनेट, रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा सबका अपना एक खास योगदान है। ऐसे में प्रभाव की दृष्टि से जब देखा जाता है तो सिनेमा समाज को प्रभावित करने वाले सबसे प्रभावी संसाधन के रूप में उजागर होता है। "कला के सभी रूपों में फिल्मों का प्रभाव सबसे अधिक है। फिल्म निर्माण सिर्फ एक उद्योग नहीं बल्कि हमारी मूल्य प्रणाली की कलात्मक अभिव्यक्ति का एक माध्यम भी है और यह राष्ट्र निर्माण के लिए सिनेमा एक प्रभावी उपकरण है।"[4]

भारतीय समाज और उसको प्रभावित करने वाले तत्वों पर जब विचार किया जाता है तो हिंदी सिनेमा हमारे सामने आवश्यक और महत्वपूर्ण भाग के रूप में उभर कर आता है। जिसके प्रभाव में व्यक्ति अपने आप आ जाता है। "मेरा मानना है कि व्यावसायिक सिनेमा बहुत शक्तिशाली है क्योंकि यह जनता तक पहुंचने में मदद करता है। यदि आप जनता को प्रेरित करना चाहते हैं तो आपको व्यावसायिक सिनेमा का रास्ता अपनाना

होगा।"[5] ऐसे में यह भी अध्ययन करना भी जरूरी हो जाता है कि हरियाणवी संस्कृति और हिंदी सिनेमा भी एक दूसरे से प्रभावित होते होंगे। गत दशक 2010 से 2020 में हिंदी सिनेमा की विभिन्न फिल्मों का अध्ययन करते हैं तो हरियाणा किसी ने किसी रूप में हमें विद्यमान मिला है। हरियाणवी संस्कृति और बोली की भी अलग विशिष्ठता है। फिल्मों में प्रयोग होने वाले हरियाणवी बोली के स्वरूपों का अध्ययन भी नितांत आवश्यक है।

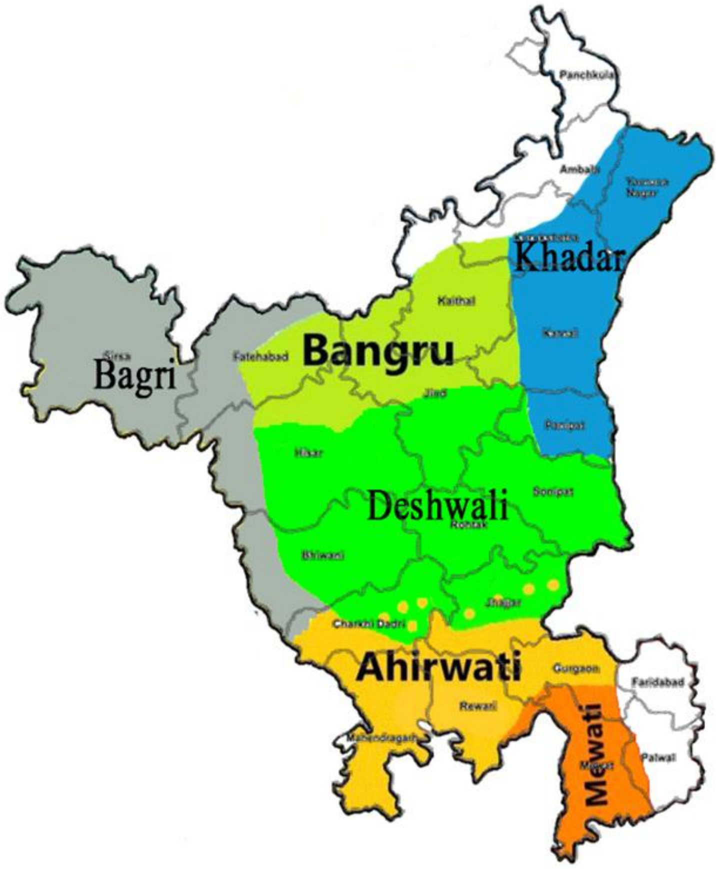

हरियाणा प्रदेश में हरियाणवी बोली के विभिन्न स्वरूप हैं। हरियाणा की लोक प्रचलित कहावत भी है कि 'कोस कोस पर पाणी बदले, चार कोस पर वाणी'। हरियाणा के उत्तरी क्षेत्र में हरियाणवी पोधी बोली प्रयोग की जाती है। यमुना किनारे कोरवी (अंबालवी) जो हरियाणा के अंबाला, कुरुक्षेत्र में प्रयोग की जाती है। पूर्वी हरियाणा में खादर (जाटू) का प्रयोग मिलता है। पश्चिम हरियाणा में राजस्थान से मिलती जुलती बागड़ी, मुल्तानी (फतेहाबाद, सिरसा) दक्षिण हरियाणा में अहीरवाटी का प्रयोग होता है। नूंह, सोहना, गुड़गांव में मेवाती का प्रयोग होता है। फरीदाबाद, पलवल में ब्रज, मध्य हरियाणा में देशवाली और मध्य उत्तरी हरियाणा में बांगरू का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार से देखें तो 4 बोलियाँ देशवाली, बांगर, खादर, बागड़ी मुख्य रूप में प्रयोग की जाती हैं। 6 बोलियाँ अहीरवाटी, पोधी, मुल्तानी, मेवाती, ब्रज और कोरवी का क्षेत्र थोड़ा छोटा है। 10 प्रकार की पूरे हरियाणा में बोलियाँ प्रयोग की जाती हैं। इनसे मिलते जुलते अन्य प्रकार की बोलियों के सामाजिक और जातिगत आधार पर भी विभिन्न रूप पाए जाते हैं। "संपूर्ण हरियाणा में हरियाणवी भाषा बोली जाती है लेकिन हरियाणवी भाषा में उसकी कुछ प्रमुख बोलियां भी हैं जिस प्रकार से हिंदी के बोलने के ढंग अलग–अलग होते हैं, उसी प्रकार हरियाणवी भी अलग–अलग बदलाव के साथ बोली जाती है जिसे हम हरियाणवी बोलियां कहते हैं।"[6]

हरियाणा में विभिन्न प्रकार की बोलियां बोली जाती हैं और हिंदी सिनेमा में प्रयोग की जाने वाली बलियों के अध्ययन पर समग्र दृष्टि डालना अनिवार्य सा प्रतीत होता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यही है कि हिंदी सिनेमा की इन फिल्मों में हरियाणवी बोली के किस स्वरूप को प्रमुखता दी गई है का अध्ययन करना है।

साहित्य समीक्षा :–

प्रेम चौधरी (2022) के लेख "शहरीकरण, उपभोक्तावाद और संस्कृति दो बॉलीवुड फिल्मों में हरियाणा का प्रतिनिधित्व" में बताते हैं कि सिल्वर स्क्रीन पर उनकी अनुपस्थिति से हरियाणवी संवेदनाएं स्पष्ट हो गई हैं। पहली बार, उन्हें दो फिल्मों– गुड़गांव (2015) और एनएच 10 (2015) के माध्यम से बॉलीवुड सिनेमा में एक

विश्वसनीय स्थान दिया गया है। ये दोनों फिल्में हरियाणा के स्थानीय इलाकों, निवासियों और संस्कृति का बड़े पैमाने पर चित्रण करती हैं। यह पेपर वर्तमान हरियाणा के संदर्भ में इन दोनों फिल्मों का विश्लेषण करता है ताकि यह दिखाया जा सके कि वे इस राज्य के संक्रमणकालीन चरण और कठिनाइयों को उजागर करने में कैसे सफल होते हैं।[7]

प्रदीप कुमार, सोनिया सोनी (2016) "रीजनल सिनेमा चैलेंज एंड स्कोप स्टडी इन कांटेक्स्ट ऑफ हरियाणवी सिनेमा" नामक शोध का उद्देश्य यह देखना था कि प्रतिभा होते हुए भी हरियाणा में क्षेत्रीय सिनेमा की कमी क्यों है? और इस की विफलता के क्या कारण है? अध्ययन में सामने आया कि समस्याएं कई है जैसे स्क्रीन की कम संख्या, फिल्म नीति का अभाव, बुनियादी सुविधा की कमी जैसे स्टूडियो, फिल्म लैब, खराब गुणवत्ता वाली प्रोडक्शन। इनके सुधार के साथ निर्माताओं के लिए शूटिंग को प्रोत्साहन देने पर भी काम हो तो हरियाणवी सिनेमा को ऊंचाइयां दी जा सकती हैं।[8]

सीमा राणा (2018) ने "रिप्रेजेंटेशन ऑफ़ हरियाणवी कल्चर इन बॉलीवुड विद स्पेशल रेफरेंस टू विशाल भारद्वाज मूवी मटरू की बिजली का मंडोला" नामक शोध अध्ययन में फिल्म का गहन व सूक्ष्म अध्ययन किया गया कि किस प्रकार मंडोला के लोग अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उनके रहन–सहन, परंपराओं, संस्कृति आदि का सुंदर प्रस्तुतीकरण किया गया। फिल्म के टाइटल में मंडोला गांव के नाम का समावेशन निर्माता की समझ कहानी को वास्तविकता के नजदीक रखने का अच्छा प्रयास है। फिल्म के माध्यम से एक उद्योगपति की लूट और लालच से लड़ते लोगों को दिखाया गया है। विशाल भारद्वाज का यह प्रशंसनीय कदम रहा कि हरियाणा की संस्कृति और सामाजिक स्थिति को बड़े पर्दे पर उन्होंने सकारात्मक रूप से दिखाने का प्रयास किया।[9]

आकांक्षा शर्मा (2011) के "100 इयर्स ऑफ प्रेजेंट और अब्सेंस हिंदी वर्सेस हरियाणवी सिनेमा" शोध का उद्देश्य यह पता करना था कि मुंबई के मुकाबले हरियाणवी सिनेमा की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति कैसी है। परिणाम सामने आया कि हिंदी सिनेमा में हरियाणा की स्टीरियोटाइप छवि दिखाई जाती है। हरियाणवी सिनेमा के सामने कई समस्याएं हैं जैसे प्रांत की फिल्म पॉलिसी का अभाव, अनुभवी फिल्म निर्माताओं की कमी और उनको मिलने वाली सहयोग राशि की कमी, अच्छे सिनेमा के माहौल की कमी, शूटिंग और तकनीकी सुविधाओं का अभाव व सिनेमा के व्यवसायीकरण की कमी। इसकी विफलता का एक बड़ा कारण रहा है लेकिन फिर भी हरियाणा अपनी संस्कृति उद्योग को पुनर्जीवित करने व एक कला अनुकूल वातावरण बनाने की कोशिश कर रहा है, और हरियाणवी फिल्में इन सभी को एक अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। हरियाणा बॉलीवुड में काफी हंसी–मजाक का विषय रहा है। हरियाणवी की छवि एक असभ्य, देहाती और परिष्कार से रहित व्यक्ति की है। हरियाणा की संस्कृति का परिचय सार्वजनिक मंचों पर लोक नृत्यों या खराब कोरियोग्राफी और अति–शीर्ष संगीत के साथ बेस्वाद, दिखावटी और बुरी तरह से निर्मित संगीत एल्बमों के माध्यम से किया गया है। परिणामस्वरूप, हरियाणवी संगीत और स्क्रीन पर हरियाणा की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को अन्य राज्यों के लोग हेय दृष्टि से देखने लगे हैं।

शोध उद्देश्य :-

1. हिंदी सिनेमा में प्रयोग की जाने वाली बोली के स्वरूप की पहचान करना।
2. प्रमुखता से प्रयोग होने वाली बोली को अंकित करना।

विधि :-

गत दशक 2010 से 2020 तक की हरियाणवी संस्कृति को केंद्र में रखकर बनाई गई फिल्मों का चयन किया गया। खाप, तेरे नाल लव हो गया, जलपरी, बॉस, मटरू की बिजली का मंडोला, हीरोपंती, एनएच 10, तनु वेड्स मनु रिटर्न, गुड्डू रंगीला, लाल रंग, सुल्तान, दंगल, गुड़गांव, सुरमा, एसपी चौहान, छलांग। इस अध्ययन के लिए अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग कर मात्रात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन हेतु विभिन्न फिल्मों को बार–बार देखा गया और प्रयोग होने वाली बोली को पहचान कर आंकड़ा इकट्ठा किया गया। यह पता लगाने का प्रयास भी किया कि कितने पात्रों द्वारा कौन से स्वरूप की हरियाणवी बोली का प्रयोग अधिकतम और न्यूनतम किया गया है।

आंकड़ा प्रस्तुति :-

तालिका 1 फिल्मों में हरियाणवी बोली का प्रयोग करते पात्र

	खाप	तेरे नाळ लव हो गया	जलपरी	बॉस	मटरू की बिजली का मंडोला	हीरोपंथी	एनएच 10	तनु वेड्स मनु रिटर्न	गुड्डू रंगीला
हिंदी	5	6	2	8	5	5	2	0	3
देशवाली	8	7	2	6	6	6	8	6	12
बागड़ी	0	0	8	0	0	0	0	0	0
बांगरू	0	0	0	0	0	0	0	0	0
खादर	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अन्य	0	0	0	0	0	0	0	0	0

	लाल रंग	सुल्तान	दंगल	गुडगाँव	सूरमा	एस पी चौहान	छलांग
हिंदी	2	0	0	0	7	0	0
देशवाली	8	7	8	9	0	8	11
बागड़ी	0	0	0	0	0	0	0
बांगरू	0	0	0	0	0	0	0
खादर	0	0	0	0	0	0	0
अन्य	0	0	0	0	0	0	0

तालिका 1 अध्ययन के लिए चयन की गई सभी फिल्मों में प्रयोग की गई हरियाणवी बोली के पात्रों का सांख्यिकीय अध्ययन भी करवाता है।

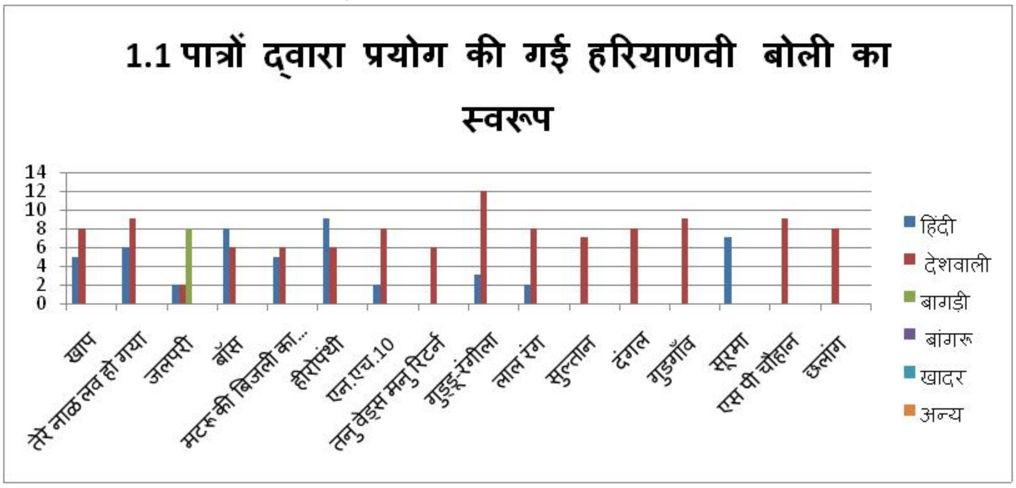

ग्राफ 1.1 हमें हरियाणा में प्रयोग होने वाली हरियाणवी बोली के विभिन्न स्वरूपों (देशवाली, खादर, बांगर, अहिरवाल और अन्य) के प्रयोग का अध्ययन करवाता है।

उपरोक्त ग्राफ हमें यह बताता है कि गुड्डू–रंगीला में सर्वाधिक 12 पात्रों द्वारा हरियाणवी बोली के देशवाली स्वरूप का प्रयोग किया गया। जिसके बाद क्रमशः छलांग (11), गुड़गांव (9), एनएच 10 (8), लाल रंग (8) के पात्रों ने भी हरियाणवी बोली के देशवाली स्वरूप को प्रमुखता दी। फिल्म जलपरी में 8 पात्रों द्वारा बागड़ी और 2 पात्रों द्वारा देशवाली बोली का प्रयोग किया गया। अध्ययन के लिए चयन की गई सभी फिल्मों में एकमात्र जलपरी फिल्म में हरियाणवी बोली के दो स्वरूपों (देशवाली और बागड़ी) का प्रयोग किया गया। ग्राफ बताता है कि हरियाणवी बोली के खादर, बांगरू, अहीरवालस्वरूप और अन्य स्वरूप अनछुए रहे।

परिणाम :–

उपरोक्त ग्राफ 1.1 और तालिका 1 के अध्ययन से यह परिणाम सामने आता है कि 16 फिल्मों में 112 पात्रों द्वारा प्रयोग की जाने वाली हरियाणवी बोली का केंद्र केवल मध्य हरियाणा की देशवाली बोली के रूप में रहा। जो कि संपूर्ण हरियाणा का मात्र (28) प्रतिशत हिस्सा है। हरियाणा के अन्य (72) प्रतिशत भू–भाग पर खादर, बांगरू, बागड़ी, अहीरवाल और अन्य का प्रभुत्व है परंतु फिल्मों में उसकी उपस्थिति गौण ही पाई गई। यह स्पष्ट है कि बहुत सारी बोलियों से भरे हरियाणा की बोलियों में से केवल देशवाली का ही प्रमुखता से प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए चयन की गई फिल्मों में मात्र दो प्रकार की देशवाली और बागड़ी स्वरूप को ही प्रयोग किया गया अन्य क्षेत्र अछूते रहे हैं।

सारांश :–

यह अध्ययन हिंदी सिनेमा की दशक 2010 से 2020 के बीच आई केवल ऐसी फिल्मों का अध्ययन करवाता है जिनकी पृष्ठभूमि पूरी तरह से हरियाणा की रही है। इस अध्ययन में यह परिणाम भी सामने आता है कि हरियाणवी बोली के केवल देशवाली स्वरूप का प्रयोग ही फिल्म में मुख्य रुप से किया जाता है। हरियाणवी बोली की वर्तनी संबंधी अशुद्धियों का अध्ययन नहीं किया गया। अलग प्रकार के चर निर्धारित कर अध्ययन करने से प्रणाम भिन्न हो सकते हैं। हरियाणा की पृष्ठभूमि को केंद्र में रखकर बनी फिल्मों का अध्ययन यह भी इंगित

करता है कि केवल इन फिल्मों के सहारे संपूर्ण समाज की वास्तविकता की कल्पना कर अपना संभव नहीं है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ रजनी रानी शंखधर. (2017). भाषा ही है विकास की सारथी दैनिक जागरण, 6 अक्टूबर 2017.
2. बालचंद अडकोली. (2020). संस्कृति हम इसे कैसे विकसित करें. बी वी लेंस, इंडिया टाइम्स आफ इंडिया, 20 दिसंबर 2020.
3. भारत के बारे में जाने. भारत का राष्ट्रीय पोर्टल, संघ राज्य क्षेत्र, हरियाणा. 2 अगस्त 2021.
4. दिव्या ए. (2022). सिनेमा एन इफेक्टिव टूल फॉर नेशन बिल्डिंग रू मुर्मू. इंडियन एक्सप्रेस न्यूज़, इंडिया. 1 अक्टूबर 2022.
5. पोथीनेनी राम. (2016). कमर्शियल सिनेमा फॉर्मेट इफेक्टिव इन इंस्पायरिंग मासेज. आई ए एन एस, एंटरटेनमेंट. 29 सितंबर 2016.
6. रेणुका सिंह. (2022). हरियाणवी भाषा की प्रमुख बोलियां. दिल से स्टडी, हिंदी साहित्य. 1 जून 2022.
7. प्रेम चौधरी. (2022). शहरीकरण, उपभोक्तावाद और संस्कृति दो बॉलीवुड फिल्मों में हरियाणा का प्रतिनिधित्व, वॉल्यूम. 57, अंक संख्या 3, 15 जनवरी, 2022
8. प्रदीप कुमार. सोनिया सोनी. (2016). रीजनल सिनेमारू चौलेंज एंड स्कोप स्टडी इन कॉन्टेक्स्ट ऑफ हरियाणवी सिनेमा. एकेडमिक डिस्कोर्स. 5(1). 93–99.
9. सीमा राणा. (2018). रिप्रेजेंटेशन ऑफ़ हरियाणवी कल्चर इन बॉलीवुड विद स्पेशल रेफरेंस टू विशाल भारद्वाज मूवी–मटरू की बिजली का मंडोला. इंटरनेशनल जर्नल आफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजी एंड इन्नोवेटिव रिसर्च. 5(9). 33–36.
10. आकांक्षा शर्मा. (2011).100 ईयर ऑफ प्रेसेंस और एब्सेंस? हिंदी वर्सेस हरियाणवी सिनेमा. जर्नल ऑफ क्रिएटिव कम्युनिकेशन. 6. 163–178 -doi :10.1177/0973258613499097.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 10-11
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 166-169

योगिता यादव के कथा साहित्य में चित्रित समाजमें पारिवारिक संबंध

प्रोमिला, शोधार्थी,
राजेन्द्र सिंह, शोध निर्देशक
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय रोहतक।

शोध सार :–

सामाजिक व्यवस्था उस स्थिति को प्रकट करती है, जिसमें समाज की निर्णायक सभी इकाइयाँ क्रियाशील रहते हुए परस्पर संपूर्ण रचना के साथ अर्थपूर्ण रूप से संबद्ध रहती हैं। सामाजिक व्यवस्था का अर्थ है किसी विशेष प्रकार के सामाजिक संबंधों, मूल्यों को बना कर रखना। सामाजिक व्यवस्था परस्पर सामाजिक क्रियाओं का एक सुव्यवस्थित रूप है। साधारण शब्दों में हम समाज शब्द का जो अर्थ लेते हैं, लगभग वही अर्थ समाजशास्त्री 'सामाजिक व्यवस्था' शब्द से लेते हैं। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध में बंधे हो, यही किसी सामाजिक व्यवस्था का सार है। जिस परिवार में पुरूष बुद्धिमान, विचार सम्पन्न, विद्वान हो... पर स्त्री अनपढ़, पिछड़ी एवं गंवार हो तो उस परिवार की शांति नष्ट हो जाती है। परिवार को सुचारू रूप से चलाने के लिए स्त्री एवं पुरूष दोनों का सहयोग जरूरी है। स्त्री एवं पुरूष दोनों समान रूप से शिक्षित, गुण, सम्पन्न, समझदार होना जरूरी है।

शब्द कुंजी :– चरित्र, संगठन, साहित्य, नवजात, बछड़ा, हृदयसंगम, कडवाहाट।

एक समाज का निर्माण मनुष्य से होता है, अगर मनुष्य का चरित्र व्यवहार रहन–सहन स्तर ऊंचा होगा तो हम उस समाज को अच्छा और आदर्श समाज का ओहदा दे सकते हैं। हर एक समाज का अपना एक परिचय होता है, जैसा उसका समाज होगा, वैसा ही उसका परिचय होने के साथ–साथ उस समाज के व्यक्ति का व्यवहार करने का स्वभाव रहता है। जिस समाज में हम रह रहे हैं उस समाज में और भी लोग हैं। जो अलग–अलग स्थिति में रह रहे हैं। पर हम यकीनन कह सकते हैं कि भाई जो हम कर रहे हैं अपने–अपने लिए कर रहे हैं अपने परिवार के लिए कर रहे हैं और केवल अपने समाज के लिए कर रहे हैं।

समाज जीवन को तथा उसकी समस्याओं को समझने के लिए साहित्य सर्वप्रमुख साधन है। पहले हमें यह देखना अत्यंत आवश्यक है कि 'समाज' क्या है? उसकी परिभाषा क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? वैसे तो समाज को परिभाषित करने का प्रयास कई विद्वानों ने किया है। सामूहिक संगठन समाज के नाम ज्ञापित होता है। 'डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के अनुसार, ''जब अनेक मानव एक साथ रहते हैं तब उनके पारस्परिक संबंधों से

समाज बनता है। मानव समाज की इकाई है और समाज के बिना वह पूरा विकसित मनुष्य नहीं हो सकता।''[1]

परिवार : अर्थ और परिभाषा :–

परिवार व्यक्ति का अकेलापन दूर करने वाली संस्था है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति पूर्णता प्राप्त करता है। परिवार पति, पत्नी और बच्चों से पूर्ण होता है। आम्बर्न और निमकॉफ के अनुसार,''बच्चों या बिना बच्चों वाले एक पति–पत्नी के या एक पुरुष या एक स्त्री के अकेले ही अपने बच्चों सहित रहने वाले एक स्थायी संघ को परिवार कहते हैं।''[2] जन्म लेने वाला छोटा–सा नवजात असहाय होता है। एक गाय का बछड़ा कुछ समय तक ही अपनी मां पर निर्भर रहता है परन्तु एक नवजात शिशु को कई साल तक अपने माता–पिता पर निर्भर रहना पड़ता है। ''हम सभी एक परिवार की उपज या पैदाइश हैं। हम चाहें या न चाहें हमारी जो कुछ पहचान है, अपने परिवार के नाम पर ही है। जन्म से मृत्यु तक हम अपने परिवार के साथ जुड़े रहते हैं।"[3]

पारिवारिक जीवन मनुष्य के विकास एवं सुविधा के लिए आवश्यक है। हमें पुरातन काल में लगभग संयुक्त परिवार के दर्शन होते हैं पर... आज के इस आधुनिक युग में हम परिवारों का विघटन यानी टूटे बिखरे... परिवार के दर्शन होते हैं। जिसमें कलह, द्वेष, ईर्ष्या, छल, कपट दिखाई देता है। आज परिवारों में अलगाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। लेखिका योगिता यादव ने अपने कथा साहित्य क्षेत्र में पारिवारिक टूटते बिखरते, कुछ जुड़ते रिश्तों की इंद्रधनुषी झलक बड़े ही कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त की है। भाई–बहन, माँ–बाप, पति–पत्नी, प्रेमी–प्रेमिका, सास–बहू आदि पारिवारिक संबंधों का बड़ा ही मार्मिक, हृदयसंगम अनूठा वर्णन किया है।

पति पत्नी संबंध :–

स्त्री–पुरुष जब वैवाहिक बन्धन में बंध जाते हैं, तब उनमें परस्पर पति–पत्नी का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। दोनों मिलकर परिवार का निर्माण करते हैं। एक–दूसरे के सहयोग से ही यह दाम्पत्य जीवन संचालित होता है। यदि पति–पत्नी में आपसी सहयोग या समझ न होगी, तो वह सम्बन्ध व परिवार शीघ्र ही टूट जाएगा। वर्तमान युग में बदलती परिस्थितियों के साथ पति–पत्नी के सम्बन्धों में भी बदलाव परिलक्षित होता है। यहाँ एक तरफ उनमें प्रेम, स्नेह, समर्पण दिखाई देता है वहीं अहम् से ओत–प्रोत तकरार भी होती है। योगिता यादव ने इन संबंधों में ऐसे पति–पुरुष का चित्रण किया है जो घर परिवार के चलते हुए भी पत्नी की सामाजिक मर्यादा का ध्यान नही रखता। 'कांच का जोडा' कहानी में पति पत्नी के संबंधो में जब कडवाहाट आती है तो घर परिवार की स्थिति का चित्रण है : ''अब तो गुस्सैल भी हो गया है पिछले दो एक साल में, पर उसका गुस्सा भी अब मुझे विचलित नहीं करता। बेडरूम की तस्वीर का वह टूटा हुआ फ्रेम, स्टडी टेबल की खिंची हुई ड्रॉर और झड़ा हुआ कोना, टेबल क्लॉक का निकला हुआ शीशा बता रहा था कि इस घर को भी उसके गुस्से की आदत हो गई है। इन सबका होना इस घर में उसका होना है।''[4]

सास बहु संबंध :–

योगिता यादव ने 'दो बिंदिया' कहानी में सास–बहू और ननद के इस कटु व मधुर संबंध की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार की है,'' आप ही बताओ मुझमें क्या कमी है? मुझे किसी चीज का लालच नहीं है। अपने पास रखें अपनी जमीन जायदाद। इनकी माँ की करतूतें क्या सुनाऊँ! पिछली दफा जब दो दिन के लिए घर गयी थी तो आते वक्त मेरे लिफाफे की तलाशी ले रही थी। सोचती है हमने अपने घर में कुछ देखा ही नहीं है। और वो उसकी बहन की बेटी कह रही थी –

''बड़ी खुशी हुई हमें तो सुनकर। हमारे भाई का घर फिर से बस गया। पर एक बात पूछू बुरा न मानना, तेरा पहला पति मर गया या उसने तुझे छोड़ दिया? देखा दुहाजू से शादी करने का इल्जाम। कहते–कहते वो फिर बहने लगी।''[5]

पिता पुत्र संबंध :–

प्राचीन काल से ही ऐसा माना जाता है कि माता–पिता की सेवा करना सन्तान का धर्म होता है। आधुनिक समाज में आधुनिक शिक्षा और औद्योगिक सभ्यता के विकास के कारण युवा पीढी पीढ़ी माता–पिता के प्रति अपने कर्त्तव्यों को स्वीकार नहीं करती। पिता–पुत्र के मध्य रिश्ता एक मित्र की तरह होता है। जहाँ पिता उसका मार्गदर्शन करता है, वहीं पुत्र भी एक मित्र की भांति अपनी सब बातें पिता से सांझी करता है। यदि पुत्र पिता द्वारा बताये गये मार्ग का अनुसरण करे तो संबंध अच्छा निभता है, अन्यथा दोनों में टकराहट संभव है। योगिता यादव ने अपने कथा–साहित्य में पिता–पुत्र सम्बन्धों का तनावपूर्ण चित्रण किया है। आधुनिक समाज में पिता–पुत्र बिगड़ते हुए दृष्टिकोण होते हैं। 'झीनी झीनी बिनी रे चदरिया' कहानी में योगिता यादव ने पिता पुत्र के तनावपूर्ण संबंध को इस प्रकार चित्रित किया है,'' ग्रामीण माहौल से चादर उकता गयी और उड़ चली महानगर की ओर। जज यहाँ शहर के सबसे बढ़िया स्कूल के बाहर कुल्फी बेचनेवाला ऊँचा–लम्बा बाबा नन्दराम अपने घुटनों तक की धोती में मुँह दबाए सिकुड़ा बैठा था, उस दिन जिस दिन उसके बेटे ने उसे मारा तो नहीं पर हाथ लगभग उठा ही दिया था। उसकी माँ को गाली देने के आरोप में।

पूरे मोहल्ले ने नीची जात कहकर उस परिवार की खूब थू–थू की।

पर बाबा नन्दराम शाम ढलने के बाद भी अपना मुँह घुटनों से उठा नहीं पाया।

एक ढलती उम्र के आदमी को रोता देख कौशल्या से रहा न गया और उसने प्यार–भरी झिड़की देते हुए बाबा को उठने को कहा, "अब उठिए बाबा, जो होना था सो हो गया। घर की बात है इस तरह बाहर बैठकर रोना ठीक नहीं लगता, बच्चे देख रहे हैं।''

पहले से भले ही बेटे के हाथों बेइज्जत हुए बाबा को होश न रहा हो, पर इस बार जब उसे पता चला कि रोज कुल्फी के लिए उसे घेरे रहने वाले बच्चे आज उसे दयाभाव से देख रहे हैं तो उसे कुछ शर्मिन्दगी महसूस हुई। बाबा शर्मिन्दा हुए तो चादर उड़कर बाबा के घुटनों पर जा गिरी। लज्जित से बाबा ने चादर के एक छोर से नाक साफ की और दूसरे छोर से आँसू पोंछे।''[6]

माँ–पुत्री संबंध :–

स्त्री अपने जीवन में अनेक रूपों का निर्वाह करती है। पुत्री, पत्नी, माता, दादी आदि रूपों में स्त्री का माँ रूप सर्वोपरि है। माँ को जन्मदात्री कहकर भी सम्बोधित किया जाता है। वात्सल्य भाव नारी का एक प्राकृतिक गुण है। माता और पुत्री का संबंध भी मित्रवत् होता है। बहुत–सी ऐसी बातें होती हैं जो पुत्री केवल अपनी माँ को बताती है। माता भी पुत्री अतिरिक्त प्रेम भाव रखती है क्योंकि उसे स्वयं बोध है कि पुत्री कल अपने ससुराल चली जाएगी। इसे लेकर माँ चिन्तित भी होती है कि उसे ससुराल में स्नेह व अपनापन मिलेगा या नहीं। इस स्थिति की अभिव्यक्ति 'ख्वाहिशो के खांडववन' उपन्यास में हुई है। सुनिता की माँ अपनी बेटियों के लिए चिंतित रहती है। जहां सुनिता को लेकर वो चितित है वही दूसरी ओर अपनी छोटी बेटी श्वेता के लिए भी चिंता करती रहती है मंझली बेटी सोनू की और से निश्चिंत हैं क्योकि उसका पति/परिवार शिक्षित और सहयोगी वह इस

तरह यहाँ माँ को पुत्री के प्रति चिन्तित दिखाया गया है।'ख्वाहिशो के खांडववन' उपन्यास में सुनिता पिता के मृत्यु के बाद अपनी माँ के प्रति पूरी तरह समर्पित होकर सोचती है, ''मां, जो बाबूजी के रहते मेरे फैसलों पर बैरियर लगाए खड़ी रहती थी, अब हर बात में मुझसे सलाह करती।.........''आंसुओं की तरावट में सोनू को विदा करते हुए मां बरबस ही कह बैठी, ''रूप रोवे, भाग टोवे।" श्वेता रूपवती होते हुए भी दरिद्री काट रही थी और सोनू ने सामान्य शक्ल–सूरत के बावजूद अपने भाग्य के बूते अपनी दुनिया हरियाली कर ली थी।''[7]

जिसका बाप नहीं होता, उसके सत्तर बाप बन जाते हैं। ये पूरा गांव ही अब मेरा बाप बनने पर आमादा था। अन्धेरा हो चुका था। इस अन्धेरे के साथ ही मैं अपने गांव में दाखिल हो रहीं थी। ओढ़नी में मुंह दबाए झुंड में खड़ी औरतें बातें कर रहीं थी–

''आ गयी मैडम।''

''इस टेम, कहां से आ रही है?''

"भाई हमने के बैरा, सबेरे सज–धज के जा है और देखो इस बखत आ रही है।''

"ऐ मां कुछ नहीं कहती इसकी।''

''हम्बै कहेगी के, कती नकटी हो री है। छोरी कमा के देन लगरी। उसके हजम भी हो रेया है।''

"उसकी भी आंखों में कती सूअर का बाल हो रेया है। भाई हमने न भावे छोरियां की कमाई। छोरियां तो अपने टेम से ब्याह के अपने घर जाएं, यही बढ़िया है।''

इन सब बातों को सुनकर भी अनसुना करके मैं चुपचाप गांव की संकरी होती जा रही दुनिया में दाखिल हो रही थी। मैं भी टेम से ब्याह करके अपने घर चली जाती तो मेरी मां कहां जाती। क्या उसे चाचा, ताऊओं के टुकड़ों पर छोड़ जाऊं।''[8]

निष्कर्ष :–

योगिता यादव के कथा साहित्य में समाज का चित्रण विस्तृत रूप से हुआ है। योगिता यादव के कथा साहित्य के अध्ययन व विश्लेषण करने पर पाया कि सामाजिक जीवन से जुडे विभिन्न पक्षो की विस्तार से अभिव्यक्ति हुई हैं। परिवार, दाम्पत्य जीवन, पारिवारिक संबंध में आए बदलाव, नारी जीवन, युवा वर्ग का बदलता दृष्टिकोण, बुर्जुगो का जीवन, शिक्षा, यौन शोषण, वर्ण व्यवस्था, भ्रुण हत्या और समाज पर मीडिया का प्रभाव जिस प्रकार सामाजिक वातावरण को प्रभावित करते हैं, उसका पूरा चित्र योगिता यादव के कथा साहित्य से व्यक्त हो जाता है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, राजनीति और दर्शन, पृ 107
2. डॉ0 महेन्द्र कुमार जैन, हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण, पृ0 6
3. एम0 एल0 दोषी, समकालीन मानव शास्त्र, पृ0 253
4. योगिता यादव, गलत पते की चिठिया' पृ0 111
5. योगिता यादव, क्लीन चिट' पृ0 68
6. योगिता यादव, क्लीन चिट' पृ0 102
7. योगिता यादव, ख्वाहिशो के खांडव वन' पृ0 46
8. योगिता यादव, ख्वाहिशो के खांडव वन' पृ0 78

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal Vol. 11, Issue 10-11
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक पृष्ठ : 170-176

भारत में नगरीयकरण की दशा एवं दिशा

डॉ. रजनी वरूण
सहायक आचार्य, (भूगोल), स. ध. राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर।

नगरीयकरण बीसवीं शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण परिघटना है। नगरीयकरण का आशय उस प्रक्रिया से है जो अधिवासित प्रारूप में गत्यात्मक परिवर्तन करती है। यह परिवर्तन मूलतः जनसंख्या आकार, संरचना और कार्यिक क्षेत्र में होता है। कार्यिक दृष्टि से नगरीय क्षेत्रों में गैर–प्राथमिक कार्यों की प्रधानता होती है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में होने वाली औद्योगिक क्रान्ति और तकनीकी विकास नगरीयकरण की प्रक्रिया के लिए मुख्य उत्तरदायी कारक है।

नगरीयकरण का अर्थ :– नगरीयकरण आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण सार्वभौमिक प्रक्रिया है जिसका अर्थ ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों के शहर में आने से माना जाता है। दूसरे शब्दों में ग्राम से नगर बनने की प्रक्रिया को नगरीयकरण कहा जाता है। नगरीयकरण से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित है।

टिवार्था के अनुसार, "नगरीयकरण एक चक्रीय प्रक्रिया है जिससे गुजकर एक राष्ट्र कृषि परक से औद्योगिक समाजों में विकसित होता है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ की परिभाषा के अनुसार, "ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों का शहरों में जाकर रहना और काम करना भी नगरीयकरण है।"

निष्कर्षतः जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में जाना, उनके आचार–विचारों में परिवर्तन होना आदि की प्रक्रिया नगरीयकरण कहलाती है।

भारत में नगरीयकरण :– नगरीयकरण भारत सहित पूरे विश्व में होने वाला एक वैश्विक परिवर्तन है। भारत में किसी क्षेत्र को नगर बनने के लिए उसमें निम्नलिखित शर्तों का समावेश होना आवश्यक है :–

1. उस क्षेत्र की न्यूनतम जनसंख्या 5,000 होनी चाहिए।
2. पुरूष कार्यकारी जनसंख्या का कम से कम 75 प्रतिशत भाग गैर कृषि कार्यों में संलग्न होना चाहिए।
3. उस क्षेत्र का जनसंख्या धनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. होना चाहिए।

विगत वर्षों में भारत में नगरीयकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आई है। भारत में जनसंख्या के आधार पर नगरों को 6 श्रेणियों में विभाजित किया गया है जो निम्नवत है :–

क्र. सं.	प्रकार	जनसंख्या
1	छोटे कस्बे	5,000—10,000
2	कस्बे	10,000—20,000
3	विशाल कस्बे	20,000—50,000
4	नगर	50,000—1,00,000
5	महानगर	1,00,000—10,00,000
6	मेट्रोपॉलियन नगर	10,00,000—1,00,00,000

भारत में नगरीयकरण की प्रमुख विशेषताएँ :–

1. भारत में नगरीयकरण की दीर्घ परम्परा 2500 ई.पू. से चली आ रही है, जब सिन्धु घाटी में अनेक नगर स्थापित हुए।
2. भारत प्राचीनकाल और मध्यकाल के दौरान नगरीयकरण प्रशासन तथा व्यापार केन्द्रों से सम्बद्ध रहा है।
3. भारत में ब्रिटिश शासन काल में औद्योगीकरण के कारण नगरीयकरण की दर में वृद्धि हुई।
4. बीसवीं शताब्दी के दौरान भारत में नगरीयकरण प्रत्येक दशक में एक विशेष विषय से सम्बद्ध रहा है जैसे 1901—11 में अकाल तथा प्लेग, 1911—21 में इन्फ्लुएन्जा की महामारी, 1921—31 में कृषि मन्दी, 1931—41 में द्वितीय विश्व युद्ध, 1941—51 में देश विभाजन, 1951—61 में नियोजित विकास, 1961—71 बड़े नगरों के निकट नये—नगरों का विकास, 1971—81 में विकेन्द्रित नगरीय विकास एवं 1981—91 में ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर प्रवास में कमी तथा प्राकृतिक वृद्धि दर में गिरावट।
5. भारत में बीसवीं शताब्दी में कुल जनसंख्या में हुई चार गुना वृद्धि की तुलना में नगरीय जनसंख्या में ग्यारह गुना वृद्धि हुई।
6. भारत में बड़े नगरों में जनंसख्या विस्फोट की स्थिति है, जबकि छोटे नगर गतिशून्य है।
7. भारतीय नगर द्वितीयक क्षेत्रों की अपेक्षा तृतीयक क्षेत्रों के आधार पर विकसित हो रहे है।
8. नगरीयकरण तीव्र होने के कारण गाँवों से शहरों की ओर लोग अधिक प्रवास कर रहे है जिससे नगरों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।
9. भारतीय नगरों में सामाजिक दृष्टि से लोगों के जाति, धर्म एवं भाषा के अनुसार संकेन्द्रण के कारण विभिन्न जन—समूह पाए जाते है।
10. भारत में नगरीयकरण की दृष्टि से क्षेत्रीय असन्तुलन दिखाई देता है पूर्वी भाग की तुलना में पश्चिमी भाग में तथा उत्तरी भाग की तुलना में दक्षिणी भाग में नगरीयकरण अधिक हुआ है। इन प्रदेशों में भी आन्तरिक असमानता पायी जाती है।
11. भारत में नगरीयकरण के स्तर के ऊँचा होने का जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ा है। जहाँ पश्चिमी जगत में नगरीयकरण की प्रगति के साथ—साथ प्राथमिक क्षेत्रों में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात निरन्तर घटता चला गया वहीं भारत में यह प्रतिशत लगातार ऊँचा बना रहा है।
12. भारत में औद्योगीकरण एवं नगरीयकरण की क्रियाएँ सहगामी नहीं रही है। पीच के शब्दों में, "भारत के नीति—निर्धारकों का उद्देश्य था नगरीयकरण के बिना औद्योगीकरण, लेकिन प्राप्त हुआ बिना औद्योगीकरण

के नगरीयकरण। कुछ विद्वानों ने इसे 'छद्म नगरीयकरण' भी कहा है।

13. भारतीय नगरीयकरण नियोजित एवं औद्योगीकरण जनित नहीं होने से नगरों में बेरोजगारी, संकुलन, गन्दी बस्तियाँ, प्रदूषण, जन–सुविधाओं का अभाव इत्यादि समस्याएँ निरन्तर बढ़ती जा रही है।

नगरीयकरण की उपनीतियाँ (Trends of Urbanization) :-

उपरोक्त तालिका के आधार पर बीसवीं शताब्दी में भारतीय नगरीयकरण में निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती है :–

1. **मन्द नगरीयकरण (1901–31) :–** इस अवधि में अकाल और महामारी जैसी आपदाओं के कारण मृत्यु दर अधिक रही और नगरों की दशकीय वृद्धि सीमित रही। नगरीय जनसंख्या में 0.90% औसत वार्षिक दर से वृद्धि हुई।
2. **मध्यम नगरीयकरण (1931–61) :–** इस अवधि के दौरान देश में नियोजित विकास के कारण नगरीय जनसंख्या में 135.86% वृद्धि हुई।
3. **तीव्र नगरीयकरण (1961–2011) :–** इस अवधि में नगरीय जनसंख्या में 261% से अधिक वृद्धि हुई। वस्तुतः देश नगरीय विस्फोट की प्रावस्था से गुजर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में विश्व की आधी जनसंख्या नगरों में निवास कर रही है। रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2050 तक भारत की आधी जनसंख्या नगरों तथा महानगरों में रहने लगेगी।

संयुक्त राष्ट्र के ही एक अन्य आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2050 तक भारत में 41.6 करोड़, चीन में 25.5 करोड़ तथा नाइजीरिया में 18.9 करोड़ शहरी आबादी बढ़ जायेगी।

ऑक्सफोर्ड इकोनॉमिक्स के एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2019 से 2035 के बीच सबसे तेजी से नगरीयकरण बढ़ने वाले सभी शीर्ष 10 शहर भारत में है।

भारत में नगरीयकरण के प्रमुख कारण :–

नगरीयकरण औद्योगीकरण और तद्जनित आर्थिक विकास का एक आवश्यक घटक है अतः नगरीयकरण को आधुनिकीकरण के एक सूचकांक के रूप में भी माना जाता है। अतः नगरीयकरण के लिए उत्तरदायी कारणों में निम्नवत कारण प्रमुख है :–

1. **कृषि में क्रान्ति :–** कृषि में आधुनिक उपकरणों और मशीनों के प्रयोग के कारण कृषि कार्यों में संलग्न श्रमिकों की संख्या घटने से ग्रामों में बेकारी बढ़ी है और इन बेरोजगार लोगों के नगरों में प्रवसन के परिणामस्वरूप नगरीयकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है।
2. **जनसंख्या में वृद्धि :–** ग्रामीण क्षेत्रों में तीव्र जनंसख्या वृद्धि के कारण ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर पलायन बढ़ा है जिसके कारण भी नगरीयकरण में वृद्धि हुई है।
3. **उद्योग–धन्धे :–** जिन स्थानों पर मशीनीकरण के कारण उद्योगों का केन्द्रीयकरण हुआ वे स्थान धीरे–धीरे कस्बे, नगर और महानगर में परिवर्तित हो गए। अर्थात् उद्योग–धन्धों ने भी नगरीयकरण को प्रभावित किया है।
4. **व्यापार और वाणिज्य :–** जिन स्थानों पर व्यापार और वाणिज्य का विकास होता है वहाँ जनसंख्या और जन घनत्व बढ़ने से स्वतः ही नगरीयकरण हो जाता है।
5. **अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण :–** जो स्थान भौगोलिक पर्यावरण की दृष्टि से मानव के लिए अनुकूल है

वे धीरे–धीरे नगर का रूप धारण कर लेते है और इस कारण वहाँ तीव्रगति से नगरीयकरण हुआ है।

6. **यातायात एवं संचार के साधन :–** जिन स्थानों पर यातायात एवं संचार के आधुनिक साधनों का विकास हुआ है वहाँ नगरीयकरण तीव्र गति से हुआ है।

7. **सांस्कृतिक कारक :–** सांस्कृतिक कारक (धार्मिक, शैक्षिक एवं खेलकूद) भी नगरों के विकास के लिए उत्तरदायी कारक है। धार्मिक महत्व के स्थलों पर तीर्थयात्रियों के आने से वह स्थान धीरे–धीरे नगर बन जाता है। जैसे :– काशी, गया, पुरी, और अजमेर आदि। शिक्षा के विस्तार ने भी नगरों को विकसित किया जैसे ऑक्सफोर्ड, कोलम्बिया और बनारस आदि। इस प्रकार खेलकूद, संगीत, फिल्म और नाटक इत्यादि ने भी नगरों के विकास में योगदान दिया है।

8. **राजनैतिक कारक :–** राजनैतिक सत्ता वाले स्थानों पर जनसंख्या तेजी से बढ़ती है और यह स्थान तेजी से नगर और महानगर बन जाते है। जैसे दिल्ली, जयपुर, भोपाल और चण्डीगढ़ इत्यादि।

9. **सुरक्षा की भावना :–** नगरों में अनेक प्रकार की सुख–सुविधाएँ जैसे व्यवसाय, चिकित्सा, शिक्षा, पुलिस, न्यायालय, डाक व तार, बैंक एवं ऋण आदि होने के कारण लोग नगरों में निवास करना ज्यादा पसन्द करते है। ये समस्त सुविधाएँ नगरों के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है।

10. **मनोवैज्ञानिक कारक :–** नगरों के विद्यमान कुछ भौतिक सुख–सुविधाएँ, आधुनिक फैशन, नवीन जीवन शैली अत्यआधुनिक मनोरंजन के साधन, होटल क्लब, सिनेमाधर और वस्त्र आभूषण आदि विद्यमान होने के कारण लोग यहाँ बसना चाहते है। अतः मनोवैज्ञानिक कारकों के कारण भी नगरीयकरण में वृद्धि हुई है।

नगरीयकरण की समस्याएँ :–

नगरवासियों के लिए आज की प्रमुख आवश्यकता स्वस्थ और निरापद जीवन की है। व्यक्ति सुखमय एवं खुशहाल जीवन की खोज में गाँव से नगर आता है, लेकिन उसे नगर में मिलती है असंख्य समस्याएँ जैसे असुरक्षा, मानसिक तनाव, आर्थिक विसंगतियाँ, खतरों से पूर्ण कार्य–प्रणालियाँ, धुआँ, धुटन, भीड़, शोर, गन्दगी के ढ़ेर, भीड़ के होते हुए भी अकेलेपन का अहसास, बीमारियाँ, खाने–पीने रहने जैसी समस्याएँ तो किसी भी छोटे–बड़े नगर के लिए सामान्य बाते हैं। इसके अतिरिक्त आज नशीले पदार्थों का व्यसन, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, महिला हिंसा एवं आतंकवाद जैसी समस्याओं के केन्द्र नगर और महानगर बनते जा रहे है। नगरीयकरण की समस्याएँ निम्नवत है :–

1. **स्थान की समस्या :–** नगरीय वृद्धि के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में कॉलोनियाँ बनने से खेतिहर भूमि पर भारी दबाव पड़ता है। बढ़ती जनसंख्या के कारण नगरों में भूमि की कमी तथा उसके मूल्य में वृद्धि की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

2. **निवास के लिए मकानों की अपर्याप्तता :–** नगरीयकरण के कारण नगरों में निवास करने वाले निम्न एवं मध्यम आय वर्ग वाले लोगों के लिए मकानों की कमी हो जाना भी एक बड़ी समस्या है।

3. **मलिन बस्तियों की वृद्धि :–** ऐसी बस्तियाँ जहाँ निवास करने वाले निवासियों को पेयजल, मल–निकासी, अपवाह, शौचालयों, बिजली एवं पक्की–सड़कों आदि की आधारभूत सुविधाएँ तक उपलब्ध नहीं होती है मलिन या गन्दी बस्ती कहा जाता है। नगरीयकरण के कारण ऐसी मलिन बस्तियों में वृद्धि हो रही है ऐसी बस्तियों में अकुशल श्रमिक, ठेले वाले, कुली एवं दैनिक वेतन भोगी आदि निवास करते है। इन बस्तियों में आर्थिक एवं

सामाजिक जीवन शोचनीय दशा में है। मुम्बई में धरावी एशिया की विशालतम मलिन बस्ती है। इन बस्तियों में हिंसा, मादक द्रव्यों तथा शराब का सेवन एवं सामाजिक अपराध जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती है। इस प्रकार से बस्तियाँ असामाजिक तत्वों एवं अपराधियों के अड्डे बन जाती है।

4. **प्रदूषण :-** विगत वर्षों में नगरों में उद्योगों और वाहनों की संख्या में भारी वृद्धि होने के कारण नगरीय पर्यावरण की गुणवत्ता में बहुत गिरावट आयी है। यह गिरावट वायु, जल, ध्वनि, तथा अपशिष्ट पदार्थों के प्रदूषण के कारण उत्पन्न हुई है जिसने नगर–निवासियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

5. **नगरीय अपराध :-** भौतिक संस्कृति, बढ़ता हुआ उपभोक्तावाद, कठोर स्पर्द्धा, आर्थिक–सामाजिक विषमताएँ, बढ़ती हुई बेरोजगारी आदि नगरों में अनके अपराधों को जन्म देती है, जो नगरों की शक्ति को भंग करते है। निर्धन एवं वंचित लोग ही नहीं वरन् धनाढ्य परिवारों के युवा भी आसानी से धन प्राप्त करने के लिए अपराध जगत में उतर जाते है।

6. **जल आपूर्त्ति तथा जल–निकास की समस्या :-** पेयजल और स्वच्छ जल नगरों की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है बढ़ते नगरीयकरण के कारण कुल शहरी आबादी के 80 प्रतिशत आबादी को जल उपलब्ध है परन्तु स्वच्छ जल केवल 40 प्रतिशत आबादी को ही उपलब्ध है। यह दुर्भाग्य ही है कि भारत में एक भी नगर ऐसा नहीं है जहाँ पर पूर्ण रूप से गन्दा पानी एवं मल–विर्सजन हेतु नालों की व्यवस्था हो। आवासीय क्षेत्रों के आस–पास गन्दा पानी एकत्रित होने से मक्खी–मच्छर पनप कर बीमारियाँ फैलातेहै और बस्तियाँ सड़ती है।

7. **अपशिष्ट पदार्थो से उत्पन्न समस्याएँ :-** नगरीयकरण के कारण शहरों में 30 प्रतिशत अपशिष्ट असंगृहीत पड़ा रहता है और इसकी मात्रा में दिन–प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। इस अपशिष्ट से एक ओर अनेक बीमारियाँ फैलती है वही दूसरी और पर्यावरण प्रदूषण भी होता है।

8. **मूलभूत सुविधाओं की कमी :-** नगरीयकरण के कारण नगरों में तीव्र गति से जनसंख्या बढ़ती है परिणामस्वरूप नगरों में मूलभूत सुविधाओं जैसे शिक्षा, चिकित्सा एवं मनोरंजन आदि की कमी होने लगती है।

9. **परिवहन एवं यातायात की समस्या :-** बढ़ते नगरीयकरण के कारण परिवहन एवं यातायात की गम्भीर समस्या नगरों में देखी जा सकती है। इस समस्या के समाधान हेतु सरकार अभी तक उचित व्यवस्था नहीं कर पाई है।

नगरीय समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव

नगरीय समस्याओं के विभिन्न समाधान वैज्ञानिकों तथा 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' द्वारा समय–समय पर सुझाए गए है वे निम्नानुसार हैं–

नगरीय समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव

नगरीय एवं क्षेत्रीय योजनाएँ	उद्योगों को अन्य क्षेत्रों में प्रोत्साहित	वित्तीय साधनों की व्यवस्था	कानूनों में सुधार करना	निजी वाहनों को प्रोत्साहन

1. **नगरीय एवं क्षेत्रीय योजनाएँ :-** नगरों की प्रमुख समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या और जनसंख्या घनत्व में निरन्तर वृद्धि की है इसको रोकने के लिए आवश्यक है कि योजनाएँ दो स्तरों पर बनाई जाएँ :– (1) नगरीय योजनाएँ और (2) क्षेत्रीय योजनाएँ।

नगरीय योजना के माध्यम से नगरों के आवास की समस्या, गन्दे पानी एवं मल के निकास की व्यवस्था एवं कचरे को नष्ट करने आदि कार्यक्रमों द्वारा समाधान करना है। क्षेत्रीय योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण जनसंख्या को घनी आबादी वाले नगरों में जाने से रोकना है इसके साथ ही भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में व्यवसाय उपलब्ध कराया जाएं इससे शहरों पर बढ़ते जनसंख्या के दबाव को रोका जा सकेगा।

2. **उद्योगों को अन्य क्षेत्रों में प्रोत्साहित करना :–** नए उद्योगों को नगरों में एक सीमा के बाद खुलने से रोका जाए तथा अन्य क्षेत्रों में सुविधा देकर खोले जाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करना चाहिए इससे नगरों में ग्रामीणों का आना रूक सकेगा तथा अनेक नगरीय समस्याएँ बढ़ने से रूक जाएँगी।

3. **वित्तीय साधनों की व्यवस्था :–** नगरों में विकास कार्यक्रम जैसे सड़क व्यवस्था, आवास सुविधा, गन्दा पानी एवं मल के निकास के लिए सीवरेज लाइन आदि वित्तीय साधनों के अभाव में नहीं हो पाते है। इसके लिए वित्तीय संसाधन जुटाने चाहिए।

4. **कानूनों में सुधार :–** नगरों में भवन निर्माण कानून, मकान किराया कानून, कृषि भूमि पर मकान बनाने सम्बन्धी कानून, बाल–श्रमिक नियंत्रक कानून, वायु और ध्वनि प्रदूषण कानून को ठीक से लागू नहीं किया जाता है। अतः इस हेतु सरकार को विभिन्न कानूनों में सुधार करना एवं नए कानूनों का निर्माण करना चाहिए ताकि नगरीय समस्याओं का समाधान किया जा सकें।

5. **निजी वाहनों को प्रोत्साहन :–** नगरों में परिवहन राज्य सरकार द्वारा चलाया जाता है जो अधिक खर्चीला तथा घाटे का कार्य होता है। इसलिए सरकार को नगरवासियों की सुविधा के लिए निजी कम्पनियों को परिवहन चलाने की छूट देनी चाहिए जिससे जनता को आने–जाने में सुविधा अधिक मिलेगी।

शहरीकरण की समस्या से निपटने के लिए सरकार द्वारा किये गए उपाय :–

1. स्मार्ट सिटी मिशन।
2. कायाकल्प और शहरी रूपान्तरण के लिए अटल मिशन यानी अमृत योजना।
3. पूर्वोत्तर क्षेत्र के शहरी विकास कार्यक्रम (एनईआरयूडीपी)।
4. सिक्किम सहित पूर्वोत्तर क्षेत्र के लाभार्थ एकमुश्त प्रावधान स्कीम।
5. स्वच्छ भारत अभियान।
6. हेरिटेज सिटी डेवलपमेन्ट एण्ड ऑग्मेटेशन योजना।
7. प्रधानमंत्री आवास योजना।
8. दीन दयाल अंत्योदय योजना (डीएवाई) राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम)।
9. राजीव आवास योजना।
10. जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन (जेएनएनयूआरएम)
11. क्रेडिट रिस्क गारन्टी फंड।

निष्कर्ष :– विश्व बैंक के आंकड़ों के मुताबिक विश्व की 54 फीसदी से अधिक आबादी अब शहरी क्षेत्रों में निवास करती है। शहरीकरण के कारण आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है। रोजगार सृजन के साथ प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने से लोगों का रहन–सहन का स्तर बेहत्तर होता है। नगरीयकरण के कारण अलग–अलग संस्कृतियों और परम्पराओं को एक दूसरों को जानने एवं समझने का अवसर मिलता है।

नगरीयकरण के कारण शिक्षा का विकास होता है जिससे समाज में व्याप्त कुप्रथाओं पर भी अंकुश लगता है। अतः कहा जा सकता है कि नगरीयकरण वर्तमान समय की माँग है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. जोशी, डॉ. रतन, "नगरीय भूगोल" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (2003)
2. बंसल, डॉ. सुरेश चन्द्र, "नगरीय भूगोल" मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ (2000)
3. मामोरिया, डॉ. चतुर्भुज एवं मिश्रा डॉ. जे.पी., "भारत का भूगोल" साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा (2014)
4. बंसल, डॉ. सुरेश चन्द्र, "भारत का वृहत् भूगोल" मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ (2000)
5. चौहान, डॉ. वीरेन्द्र सिंह एवं गौतम अलका, "रस्तोगी पब्लिकेशन्स" मेरठ (1995–96)
6. सिंह, डॉ. रामयज्ञ, "अधिवास भूगोल" प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।
7. मामोरिया, डॉ. चतुर्भुज, "जनसंख्या भूगोल" साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, उत्तर प्रदेश।
8. मौर्य, डॉ. एस.डी., "सामाजिक भूगोल" शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।
9. प्रसाद, डॉ. गायत्री, "सांस्कृतिक भूगोल" शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।
10. खत्री रिया, "भारत में नगरीय समाज" कैलाश पुस्तक भवन, भोपाल, मध्य प्रदेश।
11. सिंह, डॉ. वी.एन, "नगरीय समाजशास्त्र" रावत पब्लिकेशन जयपुर, नई दिल्ली।
12. भारत में नगरीयकरण एडिशन 2022 प्रकाशक नीरज पब्लिकेशन।
13. Mohanty, G.S. "Social and Cultural Geography", New Delhi.
14. Bhagat, R.B. "Components of Urban Growth in India with Reference to Haryana : Findings from Recent censuses" : Nagarlok , Vol. 25 (1992)
15. Boone, C.G., & Fragkias, M. "Urbanization and Sustainability: linking urban ecology, environmental justice and global environmental change" (Vol.3), Springer Science & Business Media. (Eds.) (2012)
16. Childe, V.G. "The Urban revolution. Town Planning Review", 21 (1), 3.(1950)
17. Poerbo, Hasan. "Urban Solid waste management in Bandung : Towards on a Integrated Recovery System." (1991)
18. Pacheco, Margarita "Recycling in Bugota : Developing a Culture for Urban Sustainability" Environment and Urbanization 4(2) : 74-79 (1992)

Email: rajnivarun28@gmail.com

मो. नं. 9460359555, 7976855140

Impact Factor : 2.636
ISSN : 2321-8037
Gina Shodh
SANGAM
Peer Reviewed & Refereed Research Journal
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर सम्पादकीय कार्यालय 6-एच 30, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर, राजस्थान-335001 से वितरित की।

ISSN 2321:8037